जैन विश्वभारती संस्थान

लाडनूं - ३४१३०६ (राज.)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

वाणिज्य स्नातक-तृतीय वर्ष

Bachelor of Commerce (Third Year)

षष्ठ पत्र

Paper-VI

विपणन के सिद्धान्त

Principles of Marketing

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

COPYRIGHT
Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun

Written By :
Dr. S.N. Trivedi (Section-A)
Dr. Dr. B.L. Sain (Section-B)
Dr. Lalita Parihar (Section-C)
Dr. Anshu Leela (Section-D)

Edition : 2013

Printed Copies : 200

Printed By:

	vuØef.kdk (Contents)	
[k.M&v	विपणन–अर्थ, क्षेत्र एवम् महत्व, विपणन विचार, विपणन वातावरण क्रेता व्यवहार एवं क्रय प्रेरणाएं, बाजार विभक्तीकरण	01–43
[k.M&c	उत्पाद एवं अन्य सम्बद्ध शब्द, उत्पाद नियोजन एवं विकास, उत्पाद पहचान–ब्रांडिंग, पैकेजिंग एवं लेबलिंग, उत्पाद जीवन चक्र	44–89
[k.M&l	कीमत नीतियाँ, वितरण वाहिकाएं, थोक वितरण, फुटकर वितरण, भौतिक वितरण	90–173
[k.M&n	विपणन संचार, समिश्र विचारधारा, वैयक्तिक विक्रय, विक्रय सम्बर्द्धन, विज्ञापन	174–195

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

खण्ड–अ
विपणनः प्रकृति, क्षैत्र एवं महत्व
Marketing Nature Scope and Importance

परिचयः Introduction

एक समय था जब मानव अपनी आवष्यकताओं के अनुरूप ही वस्तुओं का उत्पादन करता था। जितना भी उत्पादन होता उसका उपभोग कर लिया जाता था। धीरे–धीरे उत्पादन आधिक्य की स्थिति उत्पन्न हुई। उत्पादन आधिक्य के परिणाम स्वरूप वस्तुओं के विक्रय की समस्या उत्पन्न हुई। विक्रय की समस्या के कारण उपभोक्ता की तरफ ध्यान देना आवष्यक हो गया और यहीं से विपणन कार्य का प्रारंभ हुआ। यहाँ यह समझाना अतिआवष्यक है कि विक्रय कार्य विक्रेता प्रधान होता है यहाँ ग्राहक की आवष्यकता एवं उसकी रूचि की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता बल्कि ग्राहक को उत्पाद बेच कर विक्रेता अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेता है जबकि विपणन में ग्राहक की आवष्यकता रूचि एवं पसन्द को ध्यान में रखकर उत्पादन किया जाता है।

विपणन का अर्थ एवं परिभाषाएं
Meaning and Definitions of Marketing

प्रारंभिक समय में विपणन से तात्पर्य वस्तुओं के क्रय–विक्रय से था। दूसरे षब्दो में माल को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुंचाने वाली सभी क्रियाओं को विपणन में सम्मिलित किया जाता था। उत्पादन बाहुल्य एवं विविधता के फलस्वरूप विपणन के क्षैत्र में आमूल–चूल परिवर्तन हुए तथा विपणन का केन्द्र बिन्दु उपभोक्ता बन गया फलतः विक्रेता का बाजार क्रेता के बाजार के रूप में परिवर्तित होने लगा। विपणन की परिभाषाओं को दो भागों में बांट कर अध्ययन करना सुविधाजनक होगाः–

1. संकचित अर्थ में परिभाषाएं
Definitions in Narrow Sense

विपणन की संकुचित अर्थवाली परिभाषाएँ निम्नलिखित हैः–

A. व्हीलर के अनुसारः–''विपणन उन समस्त साधनों एवं क्रियाओं से सम्बन्धित है जिनसे वस्तुएँ एवं सेवाएँ उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुचती है''

B. पायले के अनुसारः–''विपणन में क्रय एवं विक्रय दोनो ही क्रियाएँ सम्मिलित होती है।''

C. अमेरिकन मार्केटिग एसोसिएशन के अनुसारः–''विपणन उन व्यवसायिक क्रियाओं का निष्पादन करना है जो उत्पादक से उपभोक्ता की बीच वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रवाह का नियमन करती है।''

उपरोक्त परिभाषाएँ उस समय की है जब उत्पादन ही महत्व पूर्ण समझा जाता था, विपणन की कोई गणना नही की जाती थी आज प्रतिस्पर्धा दिनो–दिन बढ़ रही है तथा बाजार की दशाएँ तेजी से बदल रही है। विपणन की उपरोक्त परिभाषाएँ अपना महत्व खो चुकी है। संक्षेप में, उपरोक्त परिभाषाओं में निम्नलिखित कमियां है–

(i) वस्तुओं के उत्पादन से पूर्व की क्रियाएँ एवं विक्रय के पश्चात की क्रियाएँ विपणन में सम्मिलित की जाती है। उदाहरण के लिए उत्पादन नियोजन एवं विक्रय पश्चात सेवायें आदि। ये परिभाषाएँ उस ओर कोई ध्यान नही देती है।

(ii) ग्राहक की आवश्यकता एवं सन्तुष्टि की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(iii) ये विपणन कर्ता के सामाजिक उतरदायित्व की तरफ कोई ध्यान नहीं देती है। अतः विपणन के समग्र विचार को प्रस्तुत नही करती है।

2. विस्तृत अर्थ में परिभाषाएँ

Definitions in Broad Sense

विपणन की विस्तृत अर्थ वाली परिभाषाएँ निम्नलिखित है–

A. फिलिप कोटलर के अनुसार–''विपणन वह मावनीय क्रिया है जो विनिमय प्रकियाओं के द्वारा आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की सन्तुष्टि के लिए की जाती है।

B. प्रो. पाल मजूर के शब्दो में–''समाज को जीवन स्तर प्रदान करना ही विपणन है।''

C. हैन्सन के शब्दो में–''विपणन उपभोक्ता की आवश्यकताओं को खोजने एवं उनको वस्तुओ तथा सेवाओं में परिवर्तित करने की क्रिया है। तदउपरान्त अधिकाधिक उपभोक्ताओं द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं से अधिकाधिक आनन्द प्राप्त करना है।''

D. विलियम जे. स्टेन्टन के शब्दों में:–''विपणन उन समस्त आपसी प्रभावकारी (interacting) व्यवसायिक क्रियाओं की सम्पूर्ण प्रणाली है जो विद्यमान एवं भावी ग्राहकों की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने वाले उत्पादों तथा सेवाओं का नियोजन करने, मूल्यनिर्धारण करने, प्रचार–प्रसार करने तथा वितरण करने के लिए की जाती है।''

F. कण्डिक स्टिल तथा गोवोनी के मतानुसार–''विपणन वह प्रबन्धकीय प्रक्रिया है जिसके द्वारा उत्पादो का बाजारों से मिलान किया जाता है तथा उसी के अनुरूप स्वामित्व का हस्तान्तरण किया जाता है''।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर विपणन में निम्नलिखित बातें सम्मिलित है :–

(i) विपणन का प्रारंभ उपभोक्ताओं की इच्छाओं के साथ होता है।

(ii) विपणन का समापन उपभोक्ताओं की इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के साथ होता है।

(iii) विपणन उपभोक्ता प्रधान हैं।

(iv) ये परिभाषाएँ विपणन का सामाजिक दृष्किोण प्रस्तुत करती है।

(v) ये परिभाषाएँ व्यवसाय को समाजोन्मुखी बनाती है।

(vi) ये परिभाषाएँ उत्पादन, बाजार एवं उपभोक्ता की परस्पर निर्भरता की ओर संकेत करती है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विपणन एक सामाजिक एवं प्रबन्धकीय प्रक्रिया है जो मानवीय आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने वाले उत्पाद व सेवाओं को सृजित करने, मूल्य निर्धारण करने तथा वितरण एवं संवर्द्धन द्वारा संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने में योगदान देती है।

विपणन की विशेषताएँ/प्रकृति

Characteristics/Nature of Marketing

विपणन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार है जो विपणन की प्रकृति की ओर इंगित करती है जिनसे विपणन की प्रकृति का ज्ञान हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **एक मानवीय क्रिया (A Human Activity)-** विपणन को एक मानवीय क्रिया इसलिए कहा गया है कि विपणन का कार्य मनुष्यो द्वारा मनुष्यों के लिए किया जाता है। आज विपणन कार्य में यंत्रो का उपयोग भी किया जाने लगा है लेकिन उनका संचालन मानव द्वारा ही किया जाता है अतः विपणन एक मानवीय क्रिया है।

2. **सामाजिक आर्थिक क्रिया (Socio-economic Activity)-**विपणन एक आर्थिक क्रिया इसलिए है कि यह लाभ के लिए की जाती है लेकिन इसके साथ यह एक सामाजिक क्रिया भी है क्योंकि यह कार्य समाज के भीतर रहकर एवं समाज के लिए ही किया जाता है। अतः विपणन एक सामाजिक–आर्थिक क्रिया है।

3. **विपणन का आधार है विनिमय (Base of Marketing is Exchange)-**विनिमय का अर्थ है लेन–देन। इसके लिए बिना विपणन क्रिया संभव नही है अतःविनिमय को ही विपणन का आधार माना गया है। विपणन उत्पादक एवं उपभोक्ता के मध्य मूल्य के बदले वस्तु या सेवा के आदान प्रदान की एक क्रिया है। फिलिप कोटलर ने लिखा है कि ''विपणन का अस्तित्व तब उत्पन्न होता है जब लोग विनिमय द्वारा अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को संतुष्ट करने का निर्णय लेते है।'' फिलिप कोटलर का मानना है कि विनियम – प्रक्रिया के लिए निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है :–

   (i) कम से कम दो पक्षकारों का होना

   (ii) एक पक्षकार के पास मूल्यवान उत्पाद/सेवा का होना जिसकी दूसरे पक्षकार को आवश्यकता हो।

   (iii) पक्षकार सन्देशों के आदन–प्रदान एवं सुपुर्दगी में सक्षम होने चाहिए।

   (iv) पक्षकार दूसरे पक्षकार के प्रस्ताव को स्वीकार करने या निरस्त करने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए।

   (v) प्रत्येक पक्षकार का यह मानना कि दूसरे पक्षकार के साथ लेन देन करना उचित है।

4. **सृजनात्मक क्रिया (Creative Activity)-**विपणन एक सृजनात्मक क्रिया है। विपणन उत्पादों में विभिन्न प्रकार की उपयोगिताओं का सृजन करता है जिससे उत्पाद मूल्यवान हो जाता है। विपणन द्वारा उत्पादों में निम्न प्रकार की उपयोगिताओं का सृजन किया जाता है :–

क. **रूप उपयोगिता**– उत्पाद के एक रूप में आवश्यक गुणों का समावेश कर उसे रूप उपयोगिता प्रदान की जाती है, जैसे–कपास से कपड़ा, गन्ने से चीनी एवं गुड़ आदि।

ख. **स्थान उपयोगिता**– उत्पाद को आवश्यकता के स्थान पर पहुंचाकर उसमें स्थान उपयोगिता का सृजन किया जाता है जैसे–पत्थर की खानों से पत्थर शहरो तक पहुंचाना आदि।

ग. **समय उपयोगिता**–उत्पादकों द्वारा उत्पाद को समय पर ग्राहकों को पहुंचाकर उसमें समय उपयोगिता को सृजन किया जाता है, जैसे–बरसात के मौसम में छाता एवं बरसाती उपलब्ध कराना आदि।

घ. **स्वामित्व उपयोगिता**– उत्पादों का स्वामित्व हस्तान्तरण कर उनमें स्वामित्व उपयोगिता का सृजन किया जाता है, जैसे–हिन्दुस्तान यूनिलीवर द्वारा अपने उत्पाद ग्राहकों तक पहुंचाना आदि।

ड़ **ज्ञान उपयोगिता**– उत्पादक या वितरक द्वारा उत्पाद को प्रयोग करने की विधि, प्रयोग करते समय सावधानी बरतने की सलाह आदि बातों की जानकारी देकर उत्पाद से ज्ञान उपयोगिता का सृजन किया जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विपणन एक सृजनात्मक क्रिया है।

5. **उपभोक्ता प्रधान प्रक्रिया (Consumer oriented Process)-**उपभोक्ता विपणन का केन्द्र बिन्दु है, अतः विपणन की सारी क्रियाएँ उपभोक्ता की आवश्यकता, रूचि, फैशन आदि को ध्यान में रखकर ही की जाती है इसलिए विपणन को उपभोक्ताप्रधान प्रक्रिया कहा गया है। विपणन का प्रारंभ उपभोक्ता की इच्छा एवं आवश्यकता की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जानकारी से होता है तथा उपभोक्ता की इच्छा एवं आवश्यकता की सन्तुष्टि के साथ विपणन क्रिया सम्पन्न हो जाती है।

6. **सार्वभौमिक क्रिया (Universal Activity)-**चाहे आप किसी भी धर्म या संस्कृति को मानने वाले हो, किसी भी देश या काल में निवास कर रहे हो बिना विपणन के आपका कार्य नही चलेगा क्योकि विपणन कार्य सर्वत्र किया जाता है। यहॉ तक कि बिना विपणन के सम्पूर्ण समाज और सभ्यताओं के कार्य अधुरे रह जायेगें। अतः यह कहा जा सकता है कि विपणन एक सार्वभौमिक क्रिया है।

7. **विपणन विज्ञान एवं कला दोनो है (Marketing is an Art and Seience Both)-**विज्ञान के कुछ निश्चित सिद्धान्त होते है जिनकों खोज एवं अनुभव के आधार पर स्थापित किया जाता है। विपणन एक विज्ञान है क्योंकि विपणन कार्य कुछ निश्चित सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है। कला किसी कार्य को करने का एक सर्वोत्तम ढंग है जिसके लिए निरन्तर अभ्यास एवं चातुर्य की आवश्यकता होती है। इन सिद्धांतों का उपयोग करने के लिए निरन्तर अभ्यास एवं चातुर्थ की आवश्यकता होती है। इसलिए विपणन कला भी है। अतः यह कहा जा सकता है कि विपणन विज्ञान एवं कला दोनों हैं।

8. **विपणन विक्रय से भिन्न है (Marketing is different from sale)-**विक्रय में विक्रेता उपभोक्ता को वस्तु बेचकर संतुष्ट हो जाता है तथा इस बात पर कोई ध्यान नही देता है कि उपभोक्ता को उस वस्तु से संतुष्टि प्राप्त होगी या नही जबकि विपणन में उत्पाद का निर्माण ही उपभोक्ता की आवश्यकता एवं इच्छा को ध्यान में रखकर किया जाता है। अतः यहॉ यह कहा जा सकता है कि विपणन विक्रय से बिल्कुल अलग है।

9 **गतिशील प्रक्रिया (Dynamic Proces):-**विपणन कार्य कभी बन्द नही होता यह सैदेव चलता रहता है। विपणनकर्ता हमेशा बदलती हुई ग्राहक की रूचियों, फैशन, पसंद आदि पर ध्यान देता रहता है जिससे उत्पाद को ग्राहक के लिए ओर अधिक उपयोगी बनाया जा सके। अतः यह कहा जा सकता है कि विपणन एक गतिशील प्रकिया है।

10. **व्यवसाय की सम्पूर्ण प्रणाली (Whole System of Business)-**प्रो. विलियम जे स्टेन्टन के अनुसार–''विपणन पारस्परिक व्यावसायिक क्रियाओं की सम्पूर्ण प्रणाली है जो वर्तमान एवं संभावित ग्राहकों को उनकी आवश्यकता संन्तुष्टि की वस्तुओं तथा सेवाओं के बारे में योजना बनाने, कीमत निर्धारित करने, संवर्द्धन करने एवं वितरण करने के लिए की जाती हैं।'' इस कथन से यह स्पष्ट है कि विपणन व्यावसायिक क्रियाओं की एक सम्पूर्ण प्रणाली है जिसमें एक ओर ये सभी व्यावसायिक क्रियाएँ सम्मिलित है तथा दूसरी ओर ये सभी क्रियाएँ आपस में एक दूसरे से सम्बन्धित है जो एक दूसरे से प्रभावित भी होती है।

11. **विभिन्न कार्यो की प्रकिया (Process of Various Functions)-**विपणन विभिन्न कार्यो की एक प्रक्रिया है जिसमें उत्पाद नियोजन एवं विकास, विपणन अनुसंधान, मूल्यनिर्धारण, माल के भण्डारण एवं वितरण, विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन आदि कार्य सम्पन्न किये जाते है। अतः यहाँ यह कहा जा सकता है कि विपणन विभिन्न कार्यों की प्रक्रिया है।

12. **अन्तर–विषयक विचारधारा (Inter-disciplinary Approach)-**विपणन एक अन्तर–विषयक विचार धारा है क्योंकि अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों का विपणन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रभावी विपणन के लिए इन विषयों का ज्ञान होना परमावश्यक है।

विक्रय तथा विपणन में अंतर

Distinction between Selling and Marketing

जैसा कि हम जान चुके है कि विक्रय में विक्रेता मूल्य के बदले स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को करता है जबकि विपणन में विक्रेता उस माल का विक्रय करता है जिसकी क्रेता को आवश्यकता है। थियोडोर लेविट (Theodore Levitt) के अनुसार – "विक्रय विक्रेता की आवश्यकता पर ध्यान केन्द्रित करता है जबकि विपणन में क्रेता को आधार माना जाता है। विक्रय में विक्रेता की आवश्यकता को पूरा करने अर्थात उत्पादों को नगद में बदलने हेतु प्रयास किये जाते हैं जबकि विपणन उत्पादों के माध्यम से ग्राहक की आवश्यकता को सन्तुष्ट करने का विचार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है जिसमें वस्तुओं के सृजन, उपलब्धि एवं उनका उपयोग भी सम्मिलित है। निम्न बिन्दुओं के आधार पर हम इस बात को अच्छी प्रकार से समझ सकते है।

1. **विपणन का उद्देश्य** ग्राहक की संतुष्टि द्वारा दीर्घकाल में लाभ अर्जित करना है जबकि विक्रय का उद्देश्य वस्तुओं एवं सेवाओं के स्वामित्व का हस्तान्तरण करना है।

2. **विपणन का क्षेत्र व्यापक है** क्योकि इसमें वस्तुओं के उत्पादन से पूर्व की क्रियाओं से लेकर वस्तु के विक्रय पश्चात की सभी क्रियाएँ सम्मिलित की जाती है जबकि विक्रय का क्षेत्र सीमित है क्योकि उत्पादित वस्तुओं के विक्रय पश्चात विक्रय का कार्य समाप्त हो जाता है।

3. **विक्रय विक्रेता प्रधान है** क्योकि यह विक्रेता की आवश्यकता एवं उत्पाद के हस्तान्तरण से सम्बंध रखता है जबकि विपणन ग्राहक की सन्तुष्टि एवं उपयोगिता से संबंध रखता है। अतः विपणन ग्राहक प्रधान है।

4. विक्रय में विक्रेता का लक्ष्य अधिक से अधिक विक्रय कर लाभ कमाना होता है जबकि विपणन में विपणन कर्ता ग्राहक की संतुष्टि को ध्यान में रखकर वस्तु का उत्पादन एवं विपणन करता है।

5. विक्रय कार्य विक्रेता से प्रारंभ होता है और विक्रेता की और केन्द्रित होता है जबकि विपणन कार्य क्रेता से प्रारंभ होता है तथा सम्पूर्ण कार्य में क्रेता की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर ध्यान केन्द्रित होता है।

6. विक्रय में उपलब्ध माल के विक्रय का नियोजन किया जाता है जो अल्पकालीन होता है जबकि विपणन में दीर्घकालीन नियोजन किया जाता है जिसमें भावी बाजारों में माल बेचने की योजना बनायी जाती है।

7. विपणन में ग्राहक की इच्छाओं को माल या सेवाओं में रूपान्तरित किया जाता है। जबकि विक्रय में उत्पादों को नगद राशि में रूपान्तरित किया जाता है।

8. विक्रय में सामाजिक उत्तरदायित्व की और कोई ध्यान नहीं दिया जाता है जबकि विपणन सामाजिक उत्तरदायित्व से प्रेरित होता है।

9. विक्रय कार्य में उत्पाद की लागत ही कीमत निर्धारण का आधार होती है जबकि विपणन में उत्पाद से ग्राहक को प्राप्त होने वाली उपयोगिता एवं सन्तुष्टि ही कीमत का आधार बनती है।

विपणन के कार्य अथवा विपणन का क्षेत्र
Functions/Scope of Marketing

विपणन का क्षैत्र अत्यन्त व्यापक है। विलियम जे. स्टेन्टन ने लिखा है कि "जिस प्रकार विपणन कार्य उत्पादन कार्य सम्पन्न होने के बाद प्रारम्भ नहीं होता है ठीक उसी तरह विक्रय कार्य सम्पन्न करने के बाद भी विपणन कार्य सम्पन्न नहीं होता है।"

कन्वर्स ह्यूजी एवं मिचेल के अनुसार विपणन प्रक्रिया में निम्नलिखित क्रियाएँ सम्मिलित है :–

(1) स्वामित्व हस्तान्तरण की क्रियाएँ –

(iv) क्रय क्रियाएँ

(v) विक्रय क्रियाएँ

(2) वस्तुओं को पहुंचाने वाली क्रियाएँ –

(i) यातायात

(ii) संग्रहण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(iii) श्रेणीयन

(iv) विभक्तिकरण

(v) आदेश प्राप्त करना

(vi) पैकिंग करना

(3) विपणन प्रबन्धन सम्बन्धी क्रियाएँ –

(i) नीति निर्माण

(ii) संगठन स्थापना

(iii) उपकरण प्रदान करना

(iv) वित्त प्रबन्धन

(v) कार्यकलापों का पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण

(vi) जोखिम वहन करना

(vii) सूचना प्राप्ति

कण्डिफ, स्टिल एवं गोवोनी के अनुसार विपणन में निम्नलिखित कार्य सम्मिलित है :–

(1) वाणिज्ययन कार्य –

(i) उत्पाद नियोजन एवं विकास

(ii) प्रमापीकरण एवं श्रेणीयन

(iii) क्रय एवं संकलन

(iv) विक्रयण

(2) भौतिक वितरण कार्य –

(i) भण्डारण

(ii) परिवहन

(3) सहायक कार्य –

(i) विपणन वित्त व्यवस्था

(ii) जोखिम वहन करना

(iii) बाजार सूचना

विपणन कार्य उपभोक्ता से प्रारंभ होता है तथा उपभोक्ता की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के पश्चात समाप्त होता है। दुसरे शब्दो में उत्पादन पूर्व की क्रियाओं से लेकर विक्रय पश्चात तक की जाने वाली क्रियाएँ विपणन में सम्मिलित की जाती है। अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से विपणन के कार्यो को निम्नलिखित भागों में बांट कर अध्ययन किया जा सकता है।

1. **उत्पाद नियोजन एवं विकास (Product Planing and Devlopment)**-उत्पाद नियोजन एवं विकास में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि बनाया जाने वाला उत्पाद ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के अनुरूप हो अन्यथा ग्राहक उस उत्पाद को क्रय नहीं करेंगे। इस हेतु बाजार अनुसंधान एवं विपणन अनुसंधान के कार्य करके यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि ग्राहक किस प्रकार का उत्पाद पंसद करेंगे। इस कार्य मे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्पाद के रंग, रूप, आकार, डिजायन, किस्म, पेकेजिंग, लेबलिंग आदि पर ध्यान दिया जाता है ताकि उत्पाद उपभोक्ता की आवश्यकता एवं पसंद पर खरा उतर सकें।

2. **उत्पाद विविधीकरण कार्य (Product Diversification Funciton)-**उत्पादक के लिए उत्पाद विविधीकरण पर ध्यान देना अतिआवश्यक है क्योंकि जब तक आपका उत्पाद किसी भी दृष्टिकोण से आपके प्रतिस्पर्द्धी के उत्पाद से अच्छा नही होगा तब तक उपभोक्ता का ध्यान आपके उत्पाद की तरफ नही जायेगा। उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करने के लिए संस्था को सदैव अपने उत्पादों में परिवर्तन एवं सुधार करते रहना चाहिए तथा इसके साथ ही अपने प्रतिस्पर्द्धी के उत्पाद की तरफ भी नजर रखनी चाहिए।

3. **बाजार विभक्तिकरण कार्य (Market Segmentation Function)-**बाजार विभक्तिकरण का अर्थ है बाजार को विभिन्न भागों में बांटना। बाजार विभक्तिकरण ग्राहकों की आय, शिक्षा, आयु, परिवार के आकार, लिंग आदि के आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त भौगोलिक आधार पर भी बाजार का विभाजन किया जा सकता है। भौगोलिक आधार पर बाजार के विभाजन से एक क्षैत्र विशेष पर विपणन की सारी क्रियाएँ केन्द्रित की जा सकती है तथा ग्राहकों के आधार पर बाजार के विभाजन से विभिन्न आय वर्ग के ग्राहकों के लिए उनकी आय के अनुरूप उत्पाद प्रस्तुत किये जा सकते है तथा ग्राहकों की शिक्षा, आयु, लिंग तथा परिवार के आकार को ध्यान में रखकर अलग–अलग प्रकार के उत्पाद बनाये जा सकते हैं।

4. **विनिमय कार्य (The Exchange Function)-**विनिमय का अर्थ है लेन–देन। विनिमय एक व्यापक कार्य है जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं –

A. क्रय कार्य– उत्पादको को उत्पादन कार्य हेतु कच्चामाल क्रय करना पड़ता है, मध्यस्थों को छोटे फुटकर व्यापारियोंकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्माताओं से माल क्रय करना होता है।

B. संकलन (Assembling) – संकलन के अन्तर्गत विपणनकर्ता अनेक स्त्रोतो से माल के हिस्से–पुर्जे एकत्र करता है तथा उन्हे आपस में जोड़कर किसी नये उत्पाद का निर्माण करता है। सामान्यतः मोटरसाइकिल निर्माता उसके कुछ आवश्यक हिस्से पुर्जे बाजार से एकत्रित कर मोटरसाइकिल तैयार करते है। इसका कारण यह है कि सभी आवश्यक हिस्सों–पुर्जो का निर्माण एक निर्माता के द्वारा न तो संभव है ओर न ही यह लाभप्रद होता है।

C. विक्रय – इस कार्य में विपणनकर्ता माल ग्राहकों को हस्तान्तरित करता है। इसके लिए मूल्य–सूचियाँ बनाना, विक्रयशर्तें निर्धारित करना, विक्रय–कर्ताओं की नियुक्ति तथा मध्यस्थों की नियुक्ति जैसे कार्य आवश्यक हो जाते है।

5. **मूल्य निर्धारण कार्य (Pricing Function)-**मूल्य निर्धारण विपणन का एक महत्वपूर्ण कार्य है क्योकि मूल्य निर्धारण में ही उपक्रम की सफलता छुपी होती है। यदि उत्पाद का मूल्य ग्राहक की नजर में अधिक है तो उस उत्पाद के स्थान पर ग्राहक किसी अन्य उत्पाद को क्रय कर लेगें। उत्पाद का मूल्य निर्धारित करते समय विपणन कर्ता को उत्पाद की लागत, उसकी मात्रा, प्रतिस्पर्धा तथा मूल्य को प्रभावित करने वाले घटको पर भली भांति विचार कर लेना चाहिए।

6 **भौतिक वितरण कार्य (Physical Distribution Function)-**भौतिक वितरण कार्य में एक विपणन कर्ता को निम्नलिखित कार्य करने पड़ते हैं :–

A. परिवहन (Transportation)-.यह एक ऐसा कार्य है जो उत्पाद को स्थान उपयोगिता प्रदान करता है। यह कार्य जल, थल एवं नभ परिहवन के माध्यम से किया जा सकता है। विपणनकर्ता को इसके लिए उपयुक्त परिवहन माध्यम का चयन, परिवहन मार्ग का निर्धारण, परिवहन बीमा, परिवहन सुरक्षा आदि कार्य करने पड़ते है।

B. भण्डारण या संग्रहण (Warehousing or Storage)-यह कार्य माल को समय उपयोगिता प्रदान करता है इसके अन्तर्गत विपणन कर्ता माल का उस समय संग्रह कर लेते है जब माल की पूर्ति मांग की तुलना में ज्यादा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होती है ताकि बाद में मांग अधिक होने पर मांग को पूरा किया जा सके।

C. स्कन्ध प्रबन्ध (Inventory Management)- बाजार में उत्पाद की पूर्ति बिना किसी बाधा के लगातार की जा सके इसके लिए स्टाक का एक निश्चित स्तर बनाया जाना आवश्यक है। उत्पाद की मांग की स्थिति को देखकर स्टाक स्तर में कमी–वृद्धि की जा सकती है।

7 अन्य कार्य– (Other Functions)-अन्य कार्यों में निम्नलिखित कार्यों को सम्मिलित किया जाता है :–

A. विपणन संचार (Marketing Communication)-विपणनकर्ता इसके लिए विज्ञापन, प्रचार एवं प्रसार, विक्रयकर्ता, विपणन अनुसंधान आदि साधनों का सहारा लेता है एवं अपने वर्तमान एवं भावी ग्राहकों के साथ सम्पर्क स्थापित करता है ताकि अपना संदेश ग्राहकों को पहुंचाने के साथ ही ग्राहकों की शिकायत एवं सुझावों की भी जानकारी ली जा सकें।

B. वित्त व्यवस्था (Financing)-धन व्यवसाय का जीवन रक्त है, धन की आवश्यकता कच्चा माल, यंत्र एवं उपकरण खरीदने एवं आवश्यक खर्चो की पूर्ति के लिए पड़ती है। वित्त की पूर्ति स्वयं के साधनों से, बैकों तथा वित्तीय संस्थानों से ऋण लेकर की जा सकती है।

C. जोखिम उठाना (Risk Bearing)-विपणन कर्ता को माल के विपणन में अनेक जोखिमों का सामना करना पड़ता है जैसे माल के नष्ट होने, मांग के कम होने, माल के अप्रचलित होने जैसी अनेक जोखिम हो सकती है। इनमें से कुछ जोखिमों का बीमा कराकर उन्हे कम किया जा सकता है तथा जिनका बीमा संभव नहीं होता है, उन्हे विपणनकर्ता को वहन करना होता है।

D. पैकेजिंग एवं पैकिंग (Packaging and Packing)-सामान्यतः पैकिंग परिवहन या माल को लाने–ले जाने में सुविधा या सुरक्षा के लिए की जाती है जबकि पैकेजिंग द्वारा वस्तुओं के रंगरूप की सुरक्षा की जाती है। इसके साथ ही वस्तु को आकर्षण बनाने के लिए भी पैकेजिंग का सहारा लिया जाता है। वस्तु को कम मात्रा में उपलब्ध कराने के लिए भी पैकेजिंग का सहारा लिया जाता है।

E. प्रमापीकरण एवं श्रेणीयन (Standardisation and Grading)-प्रमापीकरण के कार्य में वस्तुओं के प्रमाप निश्चित किये जाते है ताकि वस्तु का उत्पादन, उन प्रमापों के आधार पर किया जा सके। श्रेणीयन में उत्पादित वस्तु को वस्तु की किस्म एवं गुणों के आधार पर अलग श्रेणीयों में विभाजित कर दिया जाता है। जिससे वस्तु को पहचानने एवं मूल्य निर्धारण में सुविधा होती है।

F. विक्रय पश्चात सेवा (Affer-Sale Service)-विक्रय पश्चात सेवा में निम्नलिखित सेवायें सम्मिलित हैं :–

1. वस्तु के उपयोग के लिए प्रशिक्षण प्रदान करना
2. वस्तु के खराब होने पर मरम्मत की सुविधा प्रदान करना
3. वारंटी की अवधी में वस्तु के खराब होने पर बदलने की सुविधा प्रदान करना आदि।

विपणन का महत्व (Importance of Marketing)

''उपभोक्ता बाजार का राजा है।'' आज विपणन की सभी कियाएँ उपभोक्ता को ध्यान में रखकर की जाती है। व्यवसाय में अधिकाधिक लाभ उपभोक्ता को संतुष्ट करके ही अर्जित किया जा सकता है। उपभोक्ता को संतुष्ट करने के लिए माल की प्रभावकारी विपणन व्यवस्था अतिआवश्यक है। बाजार में एक ही वस्तु के अनेक विपणनकर्ता होते हैं तथा उनके मध्य निरन्तर प्रतिस्पर्धा बनी रहती है। मालके प्रभावकारी विपणन द्वारा ही प्रतिस्पर्द्धा में विजय प्राप्त की जा सकती है। अध्ययन की सुविधा हेतु विपणन के महत्व को निम्नलिखित भागो में विभाजित किया जा सकता है।

1 व्यवसायियों के लिए महत्व – व्यवसायियों के लिए कुशल विपणन बिना व्यवसाय का संचालन संभव नही है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संक्षेप में, व्यवसायियो के लिए विपणन का महत्व निम्नलिखित है :–

A. अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए– प्रभावी विपणन से माल की मांग बढ़ती है तथा मांग बढ़ने से व्यवसायी के लाभ में वृद्धि होती है। अतः अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए विपणन आवश्यक है।

2. **प्रतिइकाई लागत में कमी के लिए** –विपणन द्वारा जब माल की मांग बढ़ती है तो मांग को पूरा करने के लिए अधिक मात्रा में उत्पादन करना पड़ता है। अधिक उत्पादन से बड़े पैमाने की बचते प्राप्त होती है जिससे प्रतिइकाई लागत में कमी आती है।

3. **नवीन उत्पाद का निर्माण** – बाजार अनुसंधान के माध्यम से बदलती हुई परिस्थितियों में उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है तथा उपभोक्ता की आवश्यकता एवं पसंद का पता लगाया जाता है तथा उपभोक्ता की आवश्यकता एवं पसंद के अनुरूप नवीन उत्पादों का निर्माण किया जाता है। अतः विपणन ही नवीन उत्पादों का जनक हैं।

4. **प्रतिस्पर्धा में विजय प्राप्त करने हेतु** –जैसा कि हम जानते है कि आज एक ही वस्तु के अनेक उत्पादक/विपणनकर्ता है तथा इनके मध्य माल के विपणन के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा विद्यमान होती है। प्रभावी विपणन व्यूह रचना के माध्यम से इन परिस्थितियों में विजय प्राप्त की जा सकती है। अतः प्रतिस्पर्धा में विजय प्राप्त करने हेतु विपणन आवश्यक हैं।

5. **बदलती हुई परिस्थितियों का सामना करने के लिए** –आज उपभोक्ता की रूचि एवं फैशन निरन्तर परिवर्तन का विषय है। इस परिवर्तन के दौर का सामना करने के लिए विपणनकर्ता को सदैव सतर्क रहकर बाजार की स्थितियों को देखना होता है तथा उसी के अनुरूप अपनी विपणन की व्यवस्था करनी होती है। अतः बदलती हुई परिस्थितियों का सामना करने के लिए विपणन आवश्यक है।

6. **व्यवसाय की ख्याति में वृद्धि** –जब ग्राहको को उनकी आवश्यकता एवं पसंद के अनुसार उत्पाद मिलते है तो ग्राहक की नजर में संस्था अच्छी छवि बनती है तथा ग्राहक पुनः उसी संस्था का माल क्रय करता है। इस प्रकार उपभोक्ता की संतुष्टि तथा सामाजिक दायित्व का निर्वाह संस्था की ख्याति में वृद्धि करते है।

7. **सूचनाओं के आदान–प्रदान में सहायक** –प्रभावी विपणन व्यवस्था उपभोक्ता एवं व्यवसायी के मध्य सूचनाओं के आदान–प्रदान का महत्वपूर्ण साधन है। विपणन अनुसंधान, विज्ञापन, प्रचार आदि साधनों से सूचनाओं का आदान प्रदान होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि विपणन सूचनाओं के आदान–प्रदान में सहायक हैं।

8. **उत्पाद की न्यूनतम लागत** –अच्छी विपणन व्यवस्था द्वारा प्रतिइकाई लागत में कमी की जा सकती है तथा इसके साथ ही विपणन लागतों में कमी करके उत्पाद की लागत न्यूनतम रखी जा सकती है।

9. **विदेशी व्यापार में सफलता** –प्रभावी विपणन व्यवस्था संस्था की ख्याति अन्तराष्ट्रीय स्तर तक पहुंचा देती है। जिससे दूसरे देशो में भी माल का विपणन संभव हो जाता है। अतः विदेशी व्यापार में सफलता के लिए विपणन आवश्यक है।

10. **संस्था का विकास**– अच्छी विपणन व्यवस्था संस्था के विकास एवं विस्तार में सहायक होती है जैसा कि आप जानते है प्रभावी विपणन बड़े पैमाने के उत्पादन को संभव बनाता है जिससे प्रतिइकाई लागत में कमी होती है, संस्था का लाभ बढ़ता है तथा स्वतः विकास एवं विस्तार के अवसर प्राप्त होते है। अतः यह कहा जा सकता है कि विपणन संस्था के विकास के द्वार खोलता है।

2. उपभोक्ता के लिए महत्व

विपणन कार्य ग्राहक या उपभोक्ता प्रधानकार्य है अतः उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि ही विपणन का प्रमुख आधार होनी चाहिए। संक्षेप में उपभोक्ताओं के लिए विपणन का महत्व निम्न प्रकार से है :–

1. **उच्च जीवन–स्तर प्रदान करना** –विपणन बहुउपयोगी एवं आरामदायक वस्तुओं एवं सेवाओं की पहुंच

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपभोक्ता तक संभव बनाता है जिससे उपभोक्ता के स्तर में वृद्धि होती है और उसके जीवन स्तर में सुधार होता है।

2. **सूचनात्मक** –विपणन द्वारा विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ उपभोक्ता तक पहुंचायी जाती है, जैसे नवीन उत्पाद की जानकारी, वस्तु के उपयोग के बारे में जानकारी आदि जो उपभोक्ता के लिए महत्वपूर्ण होती है। अतः यह कहना ठीक होगा कि विपणन सूचनात्मक होता है।

3. **वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन** –प्रभावी विपणन व्यवस्था उपभोक्ता को विभिन्न उत्पादकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के तुलनात्मक अध्ययन का अवसर प्रदान करती हैं उपभोक्ता उत्पाद के गुण–दोष, उपयोगिता, कीमत आदि का अध्ययन कर अपने लिए सर्वश्रेष्ट उत्पाद का चयन कर सकता है।

4. **आवश्यकताओं की पूर्ति** –विपणन अनुसंधान द्वारा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाता है तथा उसी के अनुसार उत्पाद का उत्पादन कर ग्राहक की आवश्यकताओं का संतुष्ट करने का प्रयास किया जाता है। आर्थर के अनुसार–'' प्रभावी विपणन व्यवस्था ग्राहकों की आवश्यकताओं का पता लगाती है, उन्हे प्रभावकारी एवं लाभकारी तरीके से संतुष्ट करने का प्रयास करती है।''

5. **उचित मूल्य पर वस्तुओं की उपलब्धि** –आज का युग प्रतियोगिता का युग है। एक ही वस्तु अनेक उत्पादकों द्वारा उत्पादित की जाती है। सभी उत्पादक अपने स्तर पर प्रभावी विपणन व्यवस्था स्थापित करते हैं जिससे उपभोक्ता तक उत्पाद उचित मूल्य पर पहुंचता है।

6. **समय पर वस्तुओं की उपलब्धि** –प्रभावी विपणन व्यवस्था द्वारा वस्तुओं की आपूर्ति हर समय सुनिश्चित की जाती है जिससे उपभोक्ता को समय पर वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती है।

7. **यथास्थान वस्तुओं की उपलब्धि** –प्रभावी विपणन व्यवस्था द्वारा विपणनकर्ता उपभोक्ता के बिलकुल पास जाकर वस्तुओं की उपलब्धि कराने में सक्षम हो गया है। आवश्यक वस्तुएँ उपभोक्ता के घर तक पहुचायी जाती है। अतः यह कहना उचित ही हैं कि यथा स्थान वस्तुओं की उपलब्धि के लिए विपणन आवश्यक है।

8. **विक्रय उपरान्त सेवा** –आज विक्रय पष्चात सेवा का बड़ा महत्व है। प्रभावकारी विपणन में इस सेवा पर बड़ा ध्यान दिया जाता है। टिकाऊ वस्तुओं पर ग्राहकों को एक निष्चित समय के लिए वारंटी प्रदान की जाती है। वस्तुओं की मरम्मत की सुविधा प्रदान की जाती है।

9. **उपभोक्ता के ज्ञान में वृद्धि** –विज्ञापन एवं प्रसार के माध्यम द्वारा विपणनकर्ता उपभोक्ता के ज्ञान में वृद्धि करता है जिससे उपभोक्ता विवेकपूर्ण निर्णय लेने मे सक्षम हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि विपणन उपभोक्ता के ज्ञान में वृद्धि करता हैं।

3. समाज के लिए महत्व –विपणन समाज के लिए महत्पूर्ण है क्योंकि समाज के लोगों की आवष्यकता को ध्यान में रखकर विपणन किया जाता है। संक्षेप में, समाज के लिए विपणन का महत्व निम्नानुसार हैः–

1. **समाज के जीवन स्तर में सुधार** –विपणन समाज को उच्च जीवन स्तर प्रदान करता है। प्रभावी विपणन के माध्यम से उपभोक्ता को आरामदायक और आवष्यकता वाले उत्पाद उपलब्ध कराये जाते है जिससे सम्पूर्ण समाज के जीवन स्तर में सुधार होता है।

2. **रोजगार के अवसरो का सृजन** –प्रभावी विपणन व्यवस्था से बहुत बड़ी संख्या में थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी, विज्ञापन, प्रचार, बाजार अनुसंधान आदि कार्यो में व्यक्तियों की आवष्यकता होती है। उन्हें रोजगार के अवसर उपलब्ध होते है। अतः यह कहना उचित ही हैं कि विपणन रोजगार के अवसरों का सृजन करता है।

3. **मांग एवं पूर्ति में सन्तुलन** –प्रभावी विपणन व्यवस्था द्वारा उत्पाद की मांग के अनुरूप पूर्ति की व्यवस्था की जाती है जिससे मांग एवं पूर्ति में सन्तुलन बना रहता है।

4. **तेजी एवं मंदी से सुरक्षा** –विपणन उत्पाद की मांग का निर्माण करता है तथा उपभोक्ता की जरूरतों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुरूप उत्पादों के उत्पादन को संभव बनाता है जिससे व्यावसायिक चक्रों से समाज के लोगों की सुरक्षा होती है। अतः यह कहना ठीक ही होगा कि विपणन तेजी एवं मन्दी से सुरक्षा प्रदान करता है।

5. **सामाजिक उतरदायित्व की भावना का विकास** –प्रभावी विपणन व्यवस्था उत्पादक एवं विपणनकर्ताओं की सोच में परिवर्तन करती है जिससे उनमें सामाजिक उतरदायित्व प्रति सजगता की भावना बढ़ती है और उत्पादक सामाजिक उत्तरदायित्वों को निभाने की ओर अग्रसर होते हैं।

4 अर्थव्यवस्था के लिए महत्व –

विपणन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विपणन का महत्व निम्नानुसार है–

1. **राष्ट्रीय साधनों का सदुपयोग** –प्रभावी विपणन व्यवस्था इस बात को सुनिश्चित करती है कि उन्ही वस्तुओ का उत्पादन किया जाय जिसकी उपभोक्ताओं को आवश्यकता है। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय साधन व्यर्थ नहीं जाते, उनका सदुपयोग होता है।

2. **सरकारी आय का साधन** –विपणन सरकारी आय का साधन है क्योकि प्रभावी विपणन व्यवस्था से उत्पादकों की आय मे वृद्धि होती है जिससे सरकार को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से राजस्व की प्राप्ति होती है।

3. **कृषि एंव आवश्यक सहायक उद्योगों का विकास** –विपणन के माध्यम से कृषि जन्य प्रदार्थो से अनेक प्रकार के उत्पाद तैयार किये जाते हैं जिससे कृषि एवं सहायक उद्योगों का विकास संभव हो पाता है।

4. **प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि** –प्रभावी विपणन व्यवस्था अधिक उत्पादन एवं उपभोग को संभव बनाती है, रोजगार के अवसरों का सृजन करती है जिससे प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है जो अर्थव्यवस्था के विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

5. **विदेशी मुद्रा का अर्जन** –प्रभावी विपणन व्यवस्था उत्पाद के प्रचलन एवं उसकी ख्याति बढ़ाने में महत्वपूर्ण भुमिका अदा करती है। उत्पाद की बढ़ी हुई ख्याति विदेशो में उत्पाद के विक्रय को संभव बनाती है जिससे बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विपणन सिर्फ व्यवसायियों एवं उपभोक्ताओं के लिए ही महत्व नहीं रखता बल्कि सम्पूर्ण समाज एवं अर्थव्यवस्था के लिए भी महत्वपूर्ण है।

अभ्यास के लिए प्रश्न :–

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. विपणन से आपका क्या आश्य है ?
2. विपणन द्वारा किन–किन उपयोगिताओं का सृजन किया जाता है ?
3. विपणन की संकुचित अर्थ वाली एक परिभाषा दीजिए।
4. विपणन की दो विशेषताओं को समझाइये।
5. विपणन और विक्रय में क्या अन्तर है ।
6. विपणन की आधुनिक परिभाषा दीजिए।
7. विपणन कार्यों के नाम लिखें।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. विपणन क्या है ? विपणन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. विपणन क्या है ? विपणन एवं विक्रयण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. विपणन की परिभाषा दीजिए। विपणन के कार्यों की विवेचना कीजिए।
4. विपणन के क्षैत्र की व्याख्या कीजिए।
5. विपणन की आवश्यकता एवं महत्व का वर्णन कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विपणन अवधारणा (Marketing Concept)

विपणन अवधारणा शब्द विपणन एवं अवधारणा दो शब्दों से मिलकर बना है। विपणन अवधारणा क्या है यह समझने से पूर्व अवधारणा शब्द का अर्थ समझना ठीक होगा। अवधारणा किसी व्यक्ति, वस्तु या कार्य के सम्बंध में वह विचार है जो उस व्यक्ति, वस्तु या कार्य के बारे में सर्वप्रथम किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में जन्म लेता है। विपणन के अर्थ से आप भली–भांति परिचित है। अब हम विपणन अवधारणा का अर्थ समझाने का प्रयास करेगें। विपणन अवधारण से आशय उस विचार से है जो विपणन के बारे में किसी विपणन प्रबंधक या विपणनशास्त्री के मस्तिष्क में आता है। दूसरे शब्दो में विपणन अवधारणा विपणन विशेषज्ञों का वह दर्शन है जो यह समझने में सहायता प्रदान करता है कि विपणन कार्य की प्रकृति क्या है एवं उसका स्वरूप कैसा है।

विभिन्न विद्वानो द्वारा दी गई विपणन अवधारणा की कुछ परिभाषाएँ निम्नानुसार है–

1. **कोटलर के अनुसार** –''विपणन अवधारणा यह कहती है कि संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति इस बात में निहित है कि संस्था अपने प्रतिस्पर्द्धीयों की तुलना में अपने चुनिन्दा लक्ष्य बाजारों में अपने ग्रहको को अधिक अच्छी उपयोगिता या सेवा सृजित करने, उपलब्ध कराने एवं सम्प्रेषित करने में सक्षम है।''

2. **लारेन्स ए. क्लेट** –''विपणन अवधारणा का अर्थ दीर्घकालीन सफलता के उद्देश्य से सम्पूर्ण संस्था में उपभोक्ता–उन्मुखता लाना है।''

3. **स्टेन्टन, एटजेल तथा वाकर** –''विपणन अवधारणा व्यवसाय करने का वह विचार या सोच है जो संस्था के निष्पादन उदेश्यों की प्राप्ति में ग्राहक उन्मुखता एवं विपणन क्रियाओं के समन्वय पर बल देती है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि विपणन अवधारणा एक ग्राहक अभिमुखी दर्शन या विचार है जो उपभोक्तओं की संतुष्टि द्वारा संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने पर बल देती है।

विपणन अवधारणा को प्रकट करने वाले कुछ कथन निम्नानुसार है :–

1. "ग्राहक बाजार का राजा है।"
2. "ग्राहक सदैव सही है।"
3. "हम उत्पादों को नहीं, ग्राहकों को प्यार करते हैं।"
4. "ग्राहक की सन्तुष्टि ही हमारा लक्ष्य है।"
5. "ग्राहक ही हमारे मालिक हैं।"
6. ग्राहक हमारे भागीदार हैं।"

विपणन अवधारणा की प्रक्रति/विशेषताएँ
Nature/Characteristics of Marketing Concept

विपणन अवधारणा की प्रकृति/विशेषताएँ निम्नानुसार है :–

1. विपणन अवधारणा उपभोक्ता अभिमुखी है जो ग्राहक या उपभोक्ता को ''बाजार का राजा'' मानती है। यह ग्राहक को केन्द्र बिन्दु मानकर व्यवसाय के संचालन पर बल देती है।

2. विपणन अवधारणा यह मानती है कि यदि ग्राहक संतुष्ट रहेगा तो विपणन उदेश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति अपने आप हो जायेगी।

3. वस्तुओं का उत्पादन ग्राहक की आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। इसके लिए उत्पाद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नियोजन एवं विकास पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

4. यह अवधारणा विपणन क्रियाओं को संस्थान की सामान्य क्रियाओं के साथ समन्वित एवं एकीकृत करने पर जोर देती है ताकि संस्थान की समस्त क्रियाएँ विपणन अवधारणा को क्रियान्वित करने में योगदान दे सके।

5. यह अवधारणा व्यवसाय को एक नवीन नजरियें से देखने पर बल देती है। इसके अनुसार व्यवसाय का प्रत्येक कार्य इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उससे ग्राहकों को बनाये रखने एवं सृजित करने में योगदान मिल सके।

6. यह अवधारणा विपणन अनुसंधान को एक महत्वपर्ण कार्य मानती है। इसके अनुसार विपणन अनुसंधान को आधार बनाकर ही विपणन व्यूह रचना निर्धारित की जाना चाहिए।

7. यह अवधारणा सामाजिक एवं आर्थिक संतुष्टि के सिद्धांत पर कार्य करती है तथा इस बात पर बल देती है कि सामाजिक संतुष्टि के साथ लाभ कमाया जाना चाहिए।

8. यह अवधारणा इस विस्तृत दर्शन पर आधारित है कि विपणन कार्य सभी व्यवसायिक कार्यों का केन्द्र बिन्दु है। स्टेन्टन के अनुसार–''यह व्यवसाय करने का नवीन एवं व्यापक दर्शन है। इसमें विपणन कार्य को सभी व्यावसायिक क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु माना जाता है।''

9. यह सार्वभौमिक अवधारणा है जो छोटे, बड़े, स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सभी प्रकार के संगठनों पर लागू होती है।

10. यह अवधारणा विक्रय अवधारणा से कही अधिक व्यापक एवं विस्तृत है क्योंकि विक्रय अवधारणा केवल उत्पादों की बिक्री करने पर ही जोर देती है जबकि विपणन अवधारणा ग्राहक संतुष्टि के साथ विक्रय करने पर बल देती है।

महान प्रबन्ध गुरू पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार– "विपणन अवधारणा का सारांश यह है कि सम्पूर्ण व्यवसाय को ग्राहक के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए।"

विपणन की विभिन्न अवधारणाएँ
Various Concepts of Marketing

विपणन की विभिन्न अवधारणाओं को निम्नलिखित भागों में बांटकर अध्ययन किया जा सकता है।

1. **उत्पादन अवधारणा (The Production Concept)**-यह विपणन की प्राचीन अवधारणा है। इस अवधारणा के अनुसार ग्राहक उसी वस्तु को क्रय करेगा जो उत्पादक द्वारा बेची जायेगी। यह विचारधारा उस समय प्रचलित होती है जब बाजार में मांग की तुलना में उत्पादन सीमित होता है तथा "विक्रेता के बाजार" की स्थिति होती है। ग्राहक की आवश्यकता एवं रूचि पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। अतः उत्पादन अवधारणा सिर्फ उत्पादन करने पर ही ध्यान देती है।

2- **उत्पाद अवधारणा (The Product Concept)** -इस अवधारणा के अनुसार उपभोक्ता उन उत्पादों को पसंद करेगा जो अच्छी किस्म के होगे। अतः उत्पादक को अपने उत्पाद में हमेशा सुधार करते रहना चाहिए तथा नये एवं अच्छे उत्पाद बाजार में प्रस्तुत करने चाहिए। इसके साथ ही उत्पादक को बाजार में उपलब्ध अन्य उत्पादकों के उत्पाद पर भी नजर रखनी चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि उत्पाद अवधारणा उत्पादन अवधारणा का एक सुधरा हुआ स्वरूप है।

3. **विक्रय अवधारणा (The Selling Concept)** -इस विचार धारा के अनुसार ग्राहक किसी उत्पाद को तब तक क्रय नही करेगा जब तक कि उस उत्पाद के विक्रय के लिए संगठित प्रयास नहीं किये जायेगे। संक्षेप में, यह विचार धारा विक्रय संवर्द्धन के साधनों को अपनाने पर बल देती है। यह विचार धारा उस समय उपयोगी होती है जब विक्रेता के पास विक्रय हेतु अतिरिक्त माल उपलब्ध होता है। इस विचार धारा का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मानना है कि विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन के साधनों द्वारा जब माल का विक्रय किया जाता है तो ग्राहक उस माल को पसंद कर लेता है। इस विचारधारा के अनुसार विज्ञापन एवं प्रचार साधनों द्वारा उपभोक्ता को किसी भी प्रकार के माल का विक्रय संभव है।

4. **विपणन अवधारणा (The Marketing Concept)-**इसे ग्राहक प्रधान अवधारणा के नाम से भी जाना जाता है। इस विचारधारा के अनुसार सर्वप्रथम ग्राहक की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं का पता लगाना चाहिए तथा इसके बाद उसी के अनुरूप उत्पादन करना चाहिए। यह सम्पूर्ण विचारधारा ग्राहक की संतुष्टि पर आधारित है।

5. **सामाजिक विपणन अवधारणा (The Social Marketing Concept)-** यह एक व्यापक अवधारणा है जो उपभोक्ता की संतुष्टि के साथ समाज के दीर्घकालीन कल्याण पर ध्यान देती है। इस विचारधारा के अनुसार संस्था के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति के साथ समाज के कल्याण में भी वृद्धि होनी चाहिए। इसके साथ ही संस्था द्वारा जिन वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है उन वस्तुओं की उपयोगिता का सामाजिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन भी होना चाहिए।

विपणन की प्राचीन एवं नवीन अवधारणा में अंतर
Distinction between old and New Marketing Concepts

विपणन की नवीन एवं प्राचीन अवधारणा में अंतर निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है :–

1. प्राचीन अवधारणा अधिकतम विक्रय कर लाभ कमाने पर बल देती है जबकि नवीन अवधारणा ग्राहक को संतुष्ट कर लाभ कमानें पर बल देती है।

2. प्राचीन अवधारणा में वस्तुओं के उत्पादन से पूर्व की क्रियाओं को सम्मिलित नहीं किया जाता है। जबकि नवीन अवधारणा में उत्पादन से पूर्व की क्रियाएँ जैसे विपणन अनुसंधान एवं उत्पाद नियोजन को भी सम्मिलित किया जाता है।

3. प्राचीन अवधारणा उत्पादन एवं उत्पाद अभिमुखी है जबकि नवीन विचारधारा उपभोक्ता अभिमुखी है।

4. नवीन विचारधारा का उद्देश्य उपभोक्ता कल्याण एवं उपभोक्ता के जीवन स्तर में सुधार करना भी होता है जबकि प्राचीन अवधारणा में इसके लिए कोई स्थान नहीं है।

5. प्राचीन अवधारणा में उत्पादन लागत ही वस्तु के मूल्य निर्धारण का आधार बनती है जबकि नवीन अवधारणा में ग्राहक की संतुष्टि एवं वस्तु की उपयोगिता भी मूल्य निर्धारण का आधार बनती है।
6. प्राचीन अवधारणा में उत्पादन विभाग की केन्द्रीय भूमिका होती है जबकि नवीन अवधारणा में विपणन विभाग की केन्द्रीय भूमिका होती है।

7. प्राचीन अवधारणा में विपणन मिश्रण विक्रेता की आवश्यकतानुसार निर्धारित होता है जबकि नवीन अवधारणा में विपणन मिश्रण ग्राहक की आवश्यकतानुसार निर्धारित होता है।

8. प्राचीन अवधारणा उत्पादन की नवीन तकनीकों एवं नवाचार को अपनाने में विश्वास नहीं रखती है जबकि नवीन अवधारणा नवीन तकनीक एवं नवाचार को अपनाने पर बल देती है।

9. प्राचीन अवधारणा में संस्था का प्रत्येक विभाग स्वतंत्र रूप से कार्य करता है जबकि नवीन अवधारणा में संस्था के सभी विभाग विपणन विभाग के साथ समन्वित होकर कार्य करते हैं।

10. प्राचीन अवधारणा ''विक्रेता प्रधान'' है जबकि नवीन अवधारणा ''क्रेता प्रधान'' है।

विपणन अवधारणा के आधार स्तम्भ/मान्यताएँ
Pillars/Assumptions of Marketing Concept

विपणन अवधारणा के आधार स्तम्भ/मान्यताएँ निम्नानुसार है :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **ग्राहक–उन्मुखता –** इस अवधारणा के अनुसार व्यवसायी अपने व्यवसाय को उपभोक्ता के दृष्टिकोण से देखे और चलाये। व्यवसाय का एक मात्र उदेश्य ग्राहक सृजन करना होना चाहिए क्योंकि व्यवसाय की समस्त क्रियाओं का केन्द्र ग्राहक होता हैं। पीटर. एफ. ड्रकर के अनुसार– ''प्रत्येक व्यवसाय का उदेश्य ग्राहक सृजन करना है क्योंकि ग्राहक व्यवसाय का भाग्य विद्याता है।''

2. **उपभोक्ता संतुष्टि –** इस अवधारणा के अनुसार व्यवसाय की ख्याति ग्राहक संतुष्टि पर निर्भर है। वस्तु से संतुष्टि मिलने पर ही ग्राहक उस वस्तु को बार–बार क्रय करने के लिए प्रेरित होगा। संस्था को ग्राहक के साथ दीर्घकालीन सम्बंध बनाने पर जोर देना चाहिए ताकि ग्राहक को यह महसूस हो कि संस्था उसकी आवश्यकता को महत्वपूर्ण मानती है।

3. **समन्वित विपणन अवधारणा** –इस अवधारणा के अनुसार संस्था के समस्त विभाग विपणन विभाग के साथ एकीकृत होकर कार्य करें ताकि विपणन लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके। इसके लिए संस्था के समस्त विभागों का इस प्रकार एकीकरण किया जाना चाहिए जिसमें विपणन विभाग की केन्द्रीय भूमिका हो।

4. **ग्राहक संतुष्टि द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति** –इस अवधारणा के अनुसार ग्राहक संतुष्टि द्वारा ही संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है यह अवधारणा कहती है कि संस्था को लाभ लक्ष्य की प्राप्ति ग्राहकों को संतुष्टि प्रदान करके ही करनी चाहिए।

5. **सामाजिक उत्तरदायित्व** –इस अवधारणा के अनुसार व्यवसायी के कार्यो से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से समाज प्रभावित होता है तथा समाज को अनेक कष्टो का सामना करना पड़ता है। प्रदूषण, भीड–भाड़, भीषण प्रतिस्पर्धा, तेजी मंदी आदि प्रमुख समस्याएँ है जिनके निदान एवं निवारण के लिए संस्था को प्रयास करने चाहिए।

विपणन अवधारणा का महत्व
Importance of Marketing Concept

1. **प्रतिस्पर्धा में वृद्धि** –भूमण्डलीकरण के कारण आज सम्पूर्ण विश्व के बाजार एक हो गये है तथा राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय संस्थानों में तीव्र प्रतिस्पर्धा की स्थिति उत्पन्न हो गई है। इस स्थिति का सामना करने के लिए नवीन विपणन अवधारणा को अपनाना आवश्यक हो गया है।

2. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि** –पिछले कुछ दशकों में राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है तथा साथ ही उपभोक्ता की क्रय क्षमता बढ़ी है। परिणाम स्वरूप लोग आरामदायक एवं विलासिता की वस्तुओं पर खर्च करने लगे है। ऐसे में विपणन की नवीन अवधारणा का महत्व अपने आप बढ़ता ही जा रहा है।

3. **धन संग्रह करने की प्रवृति में कमी** –अब लोगों में खर्च करने की प्रवृति बढ़ रही है। इसका प्रमुख कारण लोगों में आपसी होड़ है। इसके अलावा पहले लोगों में धन संग्रह करने की प्रवृति अधिक थी जो अब कम हो रही है। इस कारण विपणन की नवीन अवधारणा को अपनाना आवश्यक हो गया है।

4. **तकनीक में परिवर्तन** –तकनीक में परिवर्तन के कारण पुरानी वस्तुए एवं उत्पाद प्रचलन से बाहर हो गये है। उनके स्थान पर नवीन उत्पाद आवश्यक हो गये है। नवीन उत्पादों के विपणन के लिए नवीन अवधारणा को अपनाना आवश्यक हो गया है

5. **साख एवं ऋण सुविधाएँ** –किसी भी उत्पाद को क्रय करने के लिए आप के पास धन का होना आवश्यक नहीं रहा है। किस्तों पर विक्रय, डेबिटकार्ड, क्रेडिट कार्ड आदि ने ऋण लेने तथा उधार पर माल खरीदने को और आसान बना दिया है। ऐसे उदार वातावरण में विपणन की नवीन अवधारणा को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है।

6. **उपभोक्तावाद** –उपभोक्तावाद के जन्म के साथ ही उपभोक्ता अपने अधिकारो के प्रति अधिक सतर्क हो गया है। ऐसे में विपणन की नवीन अवधारणा को अपनाना प्रत्येक उपक्रम के लिए एक आवश्यकता बन गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. **उपभोक्ता को वैद्यानिक संरक्षण** –उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम उपभोक्ता के विभिन्न अधिकारों को संरक्षण प्रदान करता है। उपभोक्ता को वैधानिक संरक्षण मिलने से विपणन की नवीन अवधारणा को अपनाना संस्थाओं के लिए आवश्यक हो गया है।

8. **वितरण व्यवस्था में बदलाव** –ग्राहक के साथ प्रत्यक्ष एवं निकट संबंध बनाने के लिए नवीन वितरण व्यवस्था अपनायी जाने लगी है। छोटे फुटकर व्यापारियों ओर स्टोरो का महत्व कम हाने लगा है। इन्टरनेट की सुविधा और टेलीमार्केटिंग, वितरण व्यवस्था को नये आयाम दे रही है। ऐसे में नवीन विपणन अवधारणा को अपनाना आवश्यक हो गया है।

9. **संचार माध्यमों का विकास** –संचार माध्यमों के विकास से उपभोक्ता के ज्ञान एवं जानकारी में भारी वृद्धि हुई है। इन साधनों के विकास के कारण नवीन विपणन अवधारणा को अपनाना संस्थाओं के लिए आवश्यक हो गया है।

10. **जनसंख्या में वृद्धि** –जनसंख्या में वृद्धि के कारण आवश्यकताएँ बढ़ रही है। जनसंख्या की मांग को पूरा करने के लिए विदेशी उत्पाद बाजार में आ रहे है फलतः प्रतियोगिता बढ़ रही है, ऐसे में विपणन की नवीन अवधारणा को अपनाना आवश्यक हो गया है।

अभ्यास के लिए प्रश्न :–

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. विपणन अवधारणा से आप क्या समझते है ?
2. सामाजिक विपणन आवधारणा क्या है ?
3. विपणन अवधारणा की दो विशेषताएँ समझाइए ?
4. विक्रय अवधारणा क्या है ?
5. विपणन की प्राचीन अवधारणा क्या है ?
6. विपणन की आधुनिक अवधारणा क्या है ?
7. विपणन की प्राचीन एवं नवीन अवधारणा में अन्तर बताइए ?
8. विपणन अवधारणा की मान्यताओं को समझाइए ?

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. विपणन अवधारणा को परिभाषित कीजिए तथा इसकी प्रकृति का वर्णन कीजिए।
2. विपणन अवधारणा से आप क्या समझते हैं। विपणन की प्राचीन एवं नवीन अवधारणा में अन्तर कीजिए।
3. आधुनिक विपणन अवधारणा की आवश्यकता एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
4. विपणन की विभिन्न अवधारणाओं को समझाइए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विपणन मिश्रण
Marketing Mix

परिचय Introduction

विपणन मिश्रण के चार प्रमुख घटक है जो उत्पाद, मूल्य, स्थान एवं संवर्द्धन नाम से जाने जाते हैं। इन्ही घटकों के समुचित मिश्रण से उपभोक्ताओं की इच्छाओं को सन्तुष्ट कर उपक्रम के विपणन उदेश्यों को प्राप्त किया जाता है। जेम्स कुटलिन को विपणन मिश्रण की अवधारणा का जन्मदाता माना जाता है। किन्तु, जेरोम मेक्कार्थी ने सर्वप्रथम विपणन मिश्रण के सभी घटकों को व्यवस्थित रूप से सबके सामने रखा। उन्होंने चार 'P' बताये जो आज विपणन मिश्रण की अवधारणा के प्रयाय बन चुके है। ये चार 'P' निम्नानुसार है :–

(i) Product उत्पाद

(ii) Place स्थान

(iii) Price मूल्य

(iv) Promotion संवर्द्धन

जेराम मेक्कर्थी के अनुसार – "विपणन मिश्रण चार चल घटकों अर्थात उत्पाद घटकों, मूल्य घटकों, संवर्द्धन घटकों, तथा स्थान घटकों के मिश्रण का पिटारा है।"

विपणन मिश्रण का अर्थ एवं परिभाषा
Meaning and Definition of Marketing Mix.

सरल शब्दों में, विपणन मिश्रण विपणन के विभिन्न घटकों का समुचित मिश्रण है जिसके द्वारा उपभोक्ताओं की इच्छाओं को सन्तुष्ट कर उपक्रम के विपणन उदेश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

1. प्रो. कोटलर के अनुसार –

"विपणन मिश्रण उन विपणन औजारों का समूह है जिन्हें कोई संस्था लक्ष्य बाजार में अपने विपणन उदेश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग करती है"।

2. स्टेन्टन, एटजेल तथा वाकर के अनुसार –

"विपणन मिश्रण चार घटकों– उत्पाद, मूल्य संरचना, वितरण व्यवस्था तथा संवर्द्धनात्मक क्रियाओं का संयोजन है जिनका किसी संस्था के लक्ष्य बाजार की आवश्यकता को सन्तुष्ट करने तथा साथ ही विपणन उदेश्यों को पूरा करने के लिए उपयोग किया जाता है।"

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जाता है कि विपणन मिश्रण का अर्थ उन चार घटकों या क्रियाओं के मिश्रण से हैं जिनकी सहायता से कोई भी संस्था ग्राहकों की आवश्यकता को सन्तुष्ट करते हुए विपणन उदेश्यों को प्राप्त करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विपणन मिश्रण की विशेषताएँ/प्रकृति

Nature/Characteristics of Marketing Mix

1. **चार प्रमुख घटक** – विपणन मिश्रण चार प्रमुख घटकों का मिश्रण है जो उत्पाद, मूल्य, स्थान तथा संवर्द्धन नाम से जाने जाते है। इन्ही चार घटकों के संयोजन से विपणन उदेश्यों को प्राप्त किया जाता है।

2. **सतत् प्रक्रिया** – विपणन मिश्रण का कार्य सदैव करना पड़ता है तथा समय–समय पर विपणन मिश्रण में परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विपणन मिश्रण एक सतत् प्रक्रिया है।

3. **विपणन व्यूह रचना** – प्रत्येक संस्था को अपनी एक विपणन व्यूह रचना तैयार करनी पड़ती है। जिसमें विपणन की विभिन्न क्रियाओं, विधियों, नीतियों आदि का समावेश करना पड़ता है। इस प्रकार यह कहना ठीक होगा कि विपणन मिश्रण एक व्यूह रचना है जिसमें विभिन्न विपणन क्रियाओं का समावेश होता है।

4. **प्रभावशीलता** – विपणन मिश्रण की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर है कि विपणन मिश्रण में प्रत्येक घटक का समावेश उपक्रम की स्थिति एवं वातावरण को ध्यान में रखकर किया जाय। संक्षेप में, विपणन मिश्रण की प्रभावशीलता उसके समुचित मिश्रण पर निर्भर करती है।

5. **विपणन प्रबन्धक का कार्य** – विपणन मिश्रण एक व्यवस्थित अवधारणा है जो विपणन समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करती है। विपणन मिश्रण का कार्य अतिमहत्वपूर्ण है अतः इसे विपणन प्रबन्धक द्वारा सम्पादित किया जाता है।

6. **व्यवस्थित अवधारणा** – विपणन मिश्रण एक व्यवस्थित अवधारणा है जो विपणन समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करनी है।

7. **उदेश्य** – विपणन मिश्रण का उदेश्य उपभोक्तओं की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हुए संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले घटक
Factors Affecting Marketing Mix

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले घटको को दो भागों में बांटकर अध्यन किया जा सकता है :

I. अनियन्त्रण योग्य तत्व/बाजार तत्व

वे तत्व या शक्तियाँ जिन पर किसी भी प्रकार से नियन्त्रण स्थापित नहीं किया जा सकता उन्हें अनियन्त्रण योग्य तत्व या बाजार तत्व या वातवरण तत्व के नाम से जाना जाता है। ऐसे तत्व निम्नलिखित हैं :–

1. **उपभोक्ता व्यवहार** – उपभोक्ता की रूचि, मांग एवं फैशन में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। एक सफल विपणन प्रबन्धन को सदैव इन पर नजर रखनी चाहिए एवं उत्पाद की मांग पर पड़ने वाले उपभोक्ता व्यवहार के प्रभावों का अध्ययन करना चाहिए।

2. **वितरण व्यवस्था** – बाजार में विद्यमान वितरण व्यवस्था संस्था की वितरण व्यवस्था को प्रभावित करती है। अतः एक विपणन प्रबन्धक को बाजार में विद्यमान मध्यस्थ श्रृंखला, परिवहन, भण्डारण आदि का व्यवस्थित रूप से अध्ययन कर अपना विपणन मिश्रण तैयार करना चाहिए।

3. **प्रतियोगी स्थिति** – प्रत्येक विपणन प्रबन्धक को बाजार में विद्यमान प्रतियोगिता की स्थिति का अध्ययन कर अपना विपणन मिश्रण तैयार करना चाहिए। विपणन प्रबन्ध को प्रतियोगी संस्था की विपणन नीतियों, व्यूह रचनाओं, उत्पाद की किस्म, मूल्य आदि का भली प्रकार अध्यन कर लेना चाहिए तथा इसके बाद ही अपना विपणन मिश्रण तैयार करना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **सरकारी नियम एवं नीतियाँ –** देश की व्यापार एवं विपणन नीति, औद्योगिक नीति, कर नीति, उदारीकरण नीति, व्यापारिक एवं औद्योगिक सन्नियम संस्था के विपणन मिश्रण को प्रभावित करते हैं। विपणन मिश्रण तैयार करते समय सरकारी नियम एवं नीतियों का ध्यान रखना चाहिए तथा इसके बाद ही विपणन प्रबन्धक को अपनी संस्था का विपणन मिश्रण तैयार करना चाहिए।

II. नियन्त्रण योग्य तत्व/आन्तरिक तत्व –

ऐसे तत्व जिन पर नियन्त्रण स्थापित करना संस्था के अधीन होता है उन्हें नियन्त्रण योग्य तत्व या आन्तरिक तत्वों के नाम से जाना जाता है। ऐसे तत्व निम्नलिखित हैं :–

1. **उत्पाद से सम्बन्धित तत्व –** जो तत्व सिर्फ उत्पाद से सम्बन्ध रखते हैं उत्पाद सम्बन्धित तत्व कहलाते है जिन पर कुछ सीमा तक संस्था नियन्त्रण स्थापित कर सकती है जैसे उत्पाद का आकार, पेकिंग, रंग–रूप, डिजाइन, किस्म आदि। इसके अलावा उत्पाद का ब्राण्ड, उत्पाद श्रृंखला एवं प्रत्येक उत्पाद श्रृंखला में उत्पादों की संख्या, उत्पाद के सम्बन्ध में उपलब्ध गारन्टी एवं वारन्टी, इनकी अवधि एवं प्रकार तथा उत्पाद के लिए दी जाने वाली विक्रयोपरान्त सेवाएँ आदि ऐसी बातें हैं जिन पर संस्था नियन्त्रण स्थापित कर सकती है और आवश्यकतानुसार इनमें परिवर्तन कर सकती है। अतः उत्पाद से सम्बन्धित तत्व आन्तरिक तत्व है जिन पर संस्था नियन्त्रण स्थापित कर सकती है।

2. **मूल्य से सम्बन्धित तत्व –** जो तत्व उत्पाद के मूल्य से सम्बन्ध रखते हैं मूल्य से सम्बन्धित तत्व कहलाते है तथा कुछ सीमा तक संस्था इन पर नियन्त्रण स्थापित कर सकती है इसमें संस्था की मूल्य नीति, मूल्य से सम्बन्धित व्यूह रचना, संस्था की उधार नीति, प्रदत उधार की अवधि, छूटों एवं बट्टों से सम्बन्धित नीति, मूल्य विभेदीकरण आदि ऐसे तत्व है जो संस्था के विपणन मिश्रण को प्रभावित करते हैं।

3. **स्थान सम्बन्धी तत्व –** स्थान से सम्बन्धित तत्वों में संस्था की वितरण व्यवस्था से सम्बन्धित तत्व आतें है इन तत्वों पर भी कुछ सीमा तक संस्था का नियन्त्रण होता है इनमें संस्था के वितरण माध्यम एवं उनके सम्बन्ध में संस्था की नीति, मध्यस्थों के पारिश्रमिक से सम्बन्धित नीति, उत्पादों के परिवहन, भण्डारण एवं संग्रहण से सम्बन्धित नीति आदि ऐसे तत्व है जो संस्था के विपणन मिश्रण को प्रभावित करते हैं।

4. **संवर्द्धन से सम्बन्धित तत्व –** जो तत्व विपणन संवर्द्धन से सम्बन्ध रखते हैं तथा संस्था के विपणन कार्यक्रम को प्रभावित करते है संवर्द्धन से सम्बन्धित तत्व कहलाते हैं। इन पर भी संस्था कुछ सीमा तक अपना नियन्त्रण स्थापित कर सकती है। इनमें संस्था की विज्ञापन नीति, विज्ञापन के माध्यम, विज्ञापन बजट, विक्रय संवर्द्धन से सम्बन्धित नीति, विक्रय संवर्द्धन के साधन, विक्रय संवर्द्धन का वर्तमान एवं भावी बजट, संस्था की प्रचार एवं प्रसार व्यवस्था आदि ऐसे तत्व है जिनका निरन्तर अध्ययन एवं विश्लेषण विपणन प्रबन्धन को करते रहना चाहिए।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि संस्था को अपना विपणन मिश्रण तैयार करते समय सभी नियन्त्रण योग्य एवं अनियन्त्रण योग्य घटकों का ध्यान रखना चाहिए। एक संस्था इस बात का ध्यान रखकर अपनी संस्था के विपणन मिश्रण को समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप बनाये रख सकती है।

विपणन मिश्रण के घटक/तत्व
Elements/Components of Marketing Mix

प्रो. नील बोर्डन तथा मार्शल के अनुसार विपणन मिश्रण के घटक निम्नलिखित हैं :–

(i) उत्पाद नियोजन – इसमें ब्राण्डिंग तथा पैकेजिंग सम्मिलित है।

(ii) वितरण – इसमें मध्यस्थों एवं उत्पादों के भण्डारण व परिवहन सम्बन्धी तत्व सम्मिलित है।

(iii) संवर्द्धन – इसमें व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन, प्रचार, विक्रय संवर्द्धन सम्मिलित है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(iv) सेवा कार्य –

(v) विपणन शोध –

मेक्कार्थी के अनुसार विपणन मिश्रण चार प्रमुख घटकों का मिश्रण है जो इस प्रकार है :–

1. उत्पाद 2. मूल्य 3. स्थान 4. संवर्द्धन

विपणन मिश्रण के प्रमुख घटक या तत्व निम्नानुसार है :

1. उत्पाद मिश्रण –

उत्पाद मिश्रण उत्पादों का वह समूह है जिसे कोई संस्था विक्रय हेतु बाजार में प्रस्तुत करती है। संस्था के उत्पाद मिश्रण में एक या अनेक उत्पाद रेखाएँ (Product Lines) हो सकती है।

उत्पाद रेखा उत्पादों की एक ऐसी श्रृंखला है जिसके लक्षण लगभग एक समान होते हैं किन्तु ऐसे उत्पादों को अलग–अलग ब्राण्ड नामों से बाजार में बेचा जाता है तथा प्रत्येक उत्पाद का मूल्य अलग होता है। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तान यूनिलीवर कम्पनी द्वारा जितने भी उत्पाद बाजार में बेचे जाते है वे उत्पाद मिश्रण के अन्तर्गत आयेगें। नहाने के साबुन की उत्पाद रेखा में लक्स, रेक्सोना, हमाम, पीयर्स आदि नहाने के साबुन आयेगें।

प्रत्येक संस्था के विपणन प्रबन्धक को अपने उत्पाद मिश्रण से सम्बन्धित नीतियों को निर्धारित करना पड़ता है तथा इसमें शामिल उत्पादों के लक्षणों को निर्धारित करना पड़ता है। उत्पाद के लक्षणों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है :–

(i) उत्पाद की डिजाइन
(ii) उत्पाद का रंग
(iii) उत्पाद की पैकेजिगं
(vi) उत्पाद का ब्राण्ड ओर लेबल
(v) उत्पाद का स्वाद
(vi) विक्रयोपरान्त सेवाएँ
(vii) उत्पाद की ख्याति

2. मूल्य मिश्रण – प्रत्येक विपणन प्रबन्धन को अपने उत्पाद के मूल्य से सम्बन्धित नीतियों एवं व्यूह रचनाओं को निर्धारित करना पड़ता है तथा साथ ही साथ मध्यस्थों को प्रदान किये जाने वाले बट्टे छूटों, उधार की शर्तें, उधार की अवधि तथा उनको दी जाने वाली सुविधाओं को निर्धारित करना पड़ता है। किसी उत्पाद का मूल्य अनेक घटकों से प्रभावित होता है इनमें से कुछ घटक निम्नलिखित हैं :–

(i) वस्तु की बाजार मांग

(ii) विद्यमान प्रतियोगिता की स्थिति एवं स्तर

(iii) मध्यस्थों को दी जाने वाली सुविधाएँ

(vi) उत्पाद की लागत एवं लाभदेयता

(v) संस्था की ख्याति

3. वितरण मिश्रण – वितरण मिश्रण में उन सभी बातों को सम्मलित किया जाता है जिनके द्वारा उत्पाद उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुंचता है। इनमें उन सब नीतियों एवं व्यूह रचानाओं को शामिल किया जाता है जो उत्पाद के भौतिक वितरण एवं परिवहन के लिए आवश्यक होती है। संक्षेप में, वितरण मिश्रण में थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी, उत्पाद के परिवहन, भण्डारण, पैकिंग आदि के सम्बन्ध में विपणन प्रबन्धन को निर्णय लेना होता हैं ताकि न्यूनतम लागत पर उत्पादक से उपभोक्ता तक माल की निर्बाध पहुंच संभव हो सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. संवर्द्धन मिश्रण – संवर्द्धन मिश्रण में उन सभी बातों को सम्मिलित किया जाता है जिसके द्वारा उपभोक्ता को उत्पादों से सम्बन्धित सूचनाएँ दी जाती है तथा उन्हें उत्पाद क्रय हेतु प्रेरित किया जाता है। संवर्द्धनात्मक मिश्रण में निम्नलिखित कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता है :–

(i) विज्ञापन

(ii) विक्रय संवर्द्धन हेतु किये जाने वाले उपाय एवं प्रयास

(iii) उत्पाद का प्रचार एवं प्रसार

(vi) विक्रय दलों का गठन एवं वैयक्तिक विक्रय

(v) टेली मार्केटिंग

विपणन मिश्रण का निर्माण

Formulalion of Marketing Mix

विपणन मिश्रण का निर्माण करते समय विपणन प्रबन्धन को सबसे पहले बाजार से सम्बन्धित उन शक्तियों या तत्वों की पहचान करनी पड़ती है जो विपणन मिश्रण को प्रभावित करती है तथा इसके पश्चात विपणन प्रबन्धक को उन नीतियों, विधियों, क्रियाओं एवं व्यूह रचनाओं को निर्धारित करना पड़ता है जिनका उपयोग कर विपणन कार्यक्रम को प्रभावी तरीके से लागू किया जा सकता है। इसके लिए विपणन प्रबन्धक को विपणन मिश्रण के प्रत्येक घटक के बारे में कई महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं क्योंकि प्रत्येक घटक दूसरे से भिन्न होता है तथा एक घटक दूसरे घटक पर प्रभाव डालता है एवं दूसरे घटक से प्रभावित होता है। ऐसे निर्णयों में कुछ निर्णय निम्न प्रकार के हो सकते हैः

1. संस्था के उत्पाद मिश्रण में कौन–कौन से उत्पाद होगें।
2. संस्था के उत्पाद मिश्रण में सम्मिलित उत्पाद रेखाएँ एवं प्रत्येक उत्पाद रेखा में सम्मिलित उत्पादों की संख्या।
3. उत्पाद रेखा में किसी उत्पाद को जोड़ना या घटाना।
4. मध्यस्थों के सम्बन्ध में निर्णय जैसे मध्यस्थों की संख्या एवं उनके प्रकार।
5. संस्था के उत्पादों के मूल्य सम्बन्धी निर्णय
6. उत्पादो के भण्डारण एवं परिवहन से सम्बन्धित निर्णय।
7. विक्रय संवर्द्धन से सम्बन्धित निर्णय, विज्ञापन एवं विज्ञापन के साधन, उत्पाद के प्रचार एवं प्रसार से सम्बन्धित निर्णय।

विपणन मिश्रण में परिवर्तन

Changes in Marketing Mix

विपणन प्रबन्धक को संस्था के विपणन मिश्रण में निरन्तर परिवर्तन करना पड़ता है क्योंकि संस्था के विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले घटक परिवर्तनशील होते है। किसी भी घटक में परिवर्तन होने पर उसका प्रभाव सम्पूर्ण विपणन मिश्रण पर पड़ता है अतः एक विपणन प्रबन्धक को निम्नलिखित परिवर्तनों का ध्यान रखना चाहिए :–

1. वातावरण के बाह्य घटकों में परिवर्तन :

वातावरण के बाह्य घटकों पर संस्था का नियन्त्रण नहीं होता है इनमें परिवर्तन होने पर विपणन मिश्रण में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए सरकारी नीति एवं नियमों में परिवर्तन, बाजार की प्रतियोगी स्थिति में परिवर्तन, राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन, नवीन प्रोद्योगिकी का विकास, मुद्रा स्फीति आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अतः विपणन प्रबन्धकों को इन परिवर्तनों पर निगाह रखनी चाहिए एवं उसी के अनुरूप अपने विपणन मिश्रण में समायोजन करना चाहिए।

2. ग्राहकों की रूचि एवं पसन्द में परिवर्तन :

यदि किसी उत्पाद में ग्राहक की रूचि नहीं रहती है तो ग्राहक उसे क्रय करना बन्द कर देता है। परिणाम स्वरूप वह उत्पाद अप्रचलित हो जाता है। ग्राहकों की पसन्द और फैशन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता ह। अतः विपणन प्रबन्धक को ग्राहकों की रूचि एवं पसन्द पर ध्यान देना चाहिए तथा उसी के अनुरूप अपने विपणन मिश्रण में परिवर्तन करते रहना चाहिए।

3. संस्था में परिवर्तन :

कभी–कभी संस्था के भीतर होने वाले परिवर्तनों के कारण भी विपणन मिश्रण में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए संस्था की उत्पाद रेखा में किसी उत्पाद को बढ़ानें या घटानें पर संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति में परिवर्तन होता है। अतः प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति को अनुकूल बनाने के लिए विपणन मिश्रण में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

अतः स्पष्ट है कि उक्त परिवर्तनों या इसी प्रकार के किसी अन्य परिवर्तन के परिणाम स्वरूप विपएान मिश्रण में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न :–

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. विपणन मिश्रण की परिभाषा दीजिए।
2. विपणन मिश्रण के घटकों का वर्णन कीजिए।
3. विपणन मिश्रण के चार 'पी' गिनाये।
4. विपणन मिश्रण के जन्मदाता का नाम क्या है।
5. विपणन मिश्रण की दो विशेषताएँ लिखें।
6. अनियन्त्र योग्य घटकों से आप क्या समझते है।
7. नियन्त्रण योग्य घटक कौन–कौन से है।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. विपणन मिश्रण क्या है ? विपणन मिश्रण के प्रमुख घटकों की विवेचना कीजिए।
2. विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन कीजिए।
3. विपणन मिश्रण के निर्माण से आप क्या समझते हैं ? विपणन मिश्रण में परिवर्तन करना क्यों आवश्यक है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विपणन वातावरण
Marketing Environment

विपणन वातावरण दो शब्दों के योग से बना है विपणन एवं वातावरण। विपणन के अर्थ को हम भंली–भांति समझ चुके हैं। अब हम वातावरण शब्द के अर्थ को जानने का प्रयास करेगें। वातावरण से अभिप्राय उन घटकों से है जो किसी इकाई के आसपास होते है तथा जिन पर उस इकाई का कोई नियन्त्रण नहीं होता है। दूसरे शब्दों में किसी संगठन के बाहर विद्यमान वे शक्तियाँ जो संगठन की सफलता को प्रभावित कर सकती है तथा संगठन के नियन्त्रण से बाहर होती है, वातावरण के अन्तर्गत आती है।

वातावरण की परिभाषाएँ अनेक विद्वानों द्वारा दी गई है इनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार है :

राबर्ट अलबानीज – "किसी संगठन का वातावरण संगठन के बाहर की ज्ञात दशाओं, प्रभावों अथवा शक्तियों का समूह है जो उस संगठन के लक्ष्यों एवं कार्यों से सम्बन्ध रखती है।"

राबिन्स – "वातावरण उन संस्थाओं एवं शक्तियों से बना होता है जो किसी संगठन के कार्य निष्पादन को प्रभावित करती है। किन्तु उस संगठन का उन पर बहुत कम नियन्त्रण होता है।"

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि वातावरण से आशय किसी संगठन के आस पास विद्यमान उन घटकों, शक्तियों से हैं जो संगठन को प्रभावित करते है लेकिन संगठन का उन पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता है विपणन वातावरण के अन्तर्गत आती है। विपणन वातावरण की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैः–

1. कोटलर एवं आर्मस्ट्रांग –"एक संस्था के विपणन वातावरण में बाहर के वे सभी कारक एवं शक्तियां सम्मिलित है जो लक्ष्य ग्राहकों के साथ सफल सम्बन्ध बनाने एवं उन्हें बनाये रखने की विपणन प्रबन्धक की योग्यता को प्रभावित करती है।"

2. क्रेवेन्स व अन्य के द्वारा –"विपणन वातावरण वह है जो विपणन प्रबन्ध कार्य के बाहर का है, जो सामान्यतः नियन्त्रण योग्य नहीं है, जो विपणन निर्णय के लिए गर्भित रूप से प्रासंगिक है तथा जो परिवर्तनशील अथवा निरोधक है।"

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि विपणन प्रबन्ध के बाहरी वातावरण में विद्यमान वे शक्तियां या कारक जो विपणन प्रबन्ध की कार्यकुशलता को प्रभावित करती है तथा जिन पर विपणन प्रबन्ध का कोई नियन्त्रण नहीं होता है, विपणन वातावरण के अन्तर्गत आती है।

विपणन प्रबन्ध के वातावरण की प्रकृति
Nature of Environment of Marketing Management

विपणन प्रबन्ध के वातावरण की प्रकृति को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है :

1. **दो प्रकार** – विपणन प्रबन्ध का वातावरण दो प्रकार का होता है, आन्तरिक वातावरण एवं बाहरी वातावरण। आन्तरिक वातावरण में संगठन के अन्दर विद्यमान वे तत्व होते है, जिन पर विपणन प्रबन्धन नियन्त्रण कर लेता है जबकि बाहरी वातावरण के तत्वों पर विपणन प्रबन्धन का कोई नियन्त्रण नहीं होता है।

2. **गतिशील एवं परिवर्तन घटक** – विपणन प्रबन्ध का वातावरण गतिशील घटकों से बना है जो निरन्तर परिवर्तनशील होते है। ये घटक आर्थिक, राजनैतिक, भोगोलिक, धार्मिक एवं तकनीकी प्रकृति के हो सकते हैं।

3. **घटकों की परस्पर निर्भरता** – उपरोक्त सभी घटक एक दुसरे को प्रभावित करते हैं एवं एक दूसरे पर निर्भर होते है। जैसाकि आप जानते हैं कि धार्मिक सिरियल जो टी.वी. पर आते है, कभी–कभी टी.वी. की बिक्री को बढ़ा देते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **सूचनाओं का उपयोग –** विपणन प्रबन्ध बाहरी वातावरण से सूचनाएँ प्राप्त करता है तथा उन सूचनाओं को आधार बना कर बाहरी वातावरण की अनिश्चिताओं का सामना करता है।

5. **द्विमार्गीय संचार –** विपणन प्रबन्ध को आपने बाहरी वातावरण के निरन्तर सम्पर्क में रहना पड़ता है तथा द्विमार्गीय संचार व्यवस्था कायम करनी पड़ती है। इसी संचार व्यवस्था से सूचनाओं का आदान–प्रदान होता है।

6. **वातावरण के घटकों के अनुरूप परिवर्तन –** विपणन प्रबन्धक को वातावरण के घटकों में हो रहे परिवर्तनों का ध्यान रखना चाहिए तथा इन्ही परिवर्तनो के अनुरूप अपनी विपणन नीतियों एवं व्यूह रचनाओ में परिवर्तन करना चाहिए।

7. **संसाधनों की प्राप्ति –** विपणन प्रबन्ध अपने संसाधन जैसे श्रम, पूंजी, कच्चा माल, मशीन आदि बाहरी वातावरण से प्राप्त करता है। इन संसाधनों की प्राप्ति के मार्ग मे विभिन्न प्रकार की समस्याएँ आती है। तथा इनकी निरन्तर आपूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के समझौते करने आवश्यक होते हैं।

8. **सामाजिक उत्तरदायित्व –** विपणन प्रबन्ध अपने बाहरी वातावरण के घटकों के प्रति उत्तरदायी है इन घटकों में नागरीक, कर्मचारी, उपभोक्ता, प्रतिर्स्पद्धी संस्थाए, अंशधारी, सरकार आदि हो सकते हैं जिनके प्रति विपणन प्रबन्ध को अपने सामाजिक दायित्वों की पूर्ति करनी होती है।

9. **कार्यक्षेत्र की सीमा –** विपणन प्रबन्ध के कार्यक्षेत्र की एक भौगोलिक सीमा होती है. जो विपणन प्रबन्ध के कार्यों के अनुरूप विस्तृत एवं संकुचित हो सकती है।

10. **विपणन प्रबन्ध का वातावरण पर प्रभाव –** विपणन प्रबन्ध स्वयं वातावरण से प्रभावित तो होता है लेकिन कभी–कभी अपनी विशेष स्थिति के कारण कुछ सीमा तक वातावरण को भी प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए जब बहुराष्ट्रीय कम्पनीयों के कुछ उत्पाद एकाधिकार की स्थिति में पहुंच जाते हैं तो उपभोक्ता के पास उन उत्पादों को क्रय करने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं होता है। इस प्रकार कुछ बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनीयाँ वातावरण को प्रभावित करने की स्थिति में आ जाती है तथा कुछ सीमा तक वातावरण को प्रभावित करती है।

विपणन वातावरण के अध्ययन की आवश्यकता अथवा महत्व
Needor Importance of Study of Marketing Environment

एक संगठन के लिए विपणन वातावरण का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि विपणन वातावरण के अध्ययन से निष्कर्ष निकाले जाते है और उन्ही निष्कर्षों के अनुरूप विपणन नीतियाँ एवं व्यूह रचनाएँ निर्धारित की जाती है। संक्षेप में, विपणन वातावरण के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व निम्नानुसार है :–

1. **कार्य योजनाओं के निर्माण हेतु –** जब एक संस्था के विपणन वातावरण का ज्ञान कर लिया जाता है तो उसके अनुरूप कार्य योजनाओं का निर्माण आसानी से किया जा सकता है। अतः एक संस्था के लिए विपणन वातावरण का अध्ययन अति आवश्यक हो जाता है।

2. **विपणन वातावरण के घटकों की जानकारी –** संस्था के विपणन वातावरण में अनेक घटक विद्यमान होते है। अनेक घटकों के कारण विपणन वातावरण बहुत अधिक जटिल हो गया है। इन जटिलओं की जानकारी के लिए विपणन वातावरण का अध्ययन अति आवश्यक हो गया है।

3. **परिवर्तन की जानकारी –** विपणन वातावरण अनेक घटको के संयोजन से बना है तथा इन घटको में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इन परिवर्तनों के अनुरूप व्यूह रचनाओं के निर्माण के लिए विपणन वातावरण का अध्ययन करना अति आवश्यक हो गया है।

4. **विपणन योजनाओं का मूल्यांकन –** जिन विपणन योजनाओं का निर्माण किया गया है उन योजनाओं पर विपणन वातावरण के घटकों का प्रभाव पड़ता है। अतः विपणन वातावरण का अध्ययन कर उन विपणन योजनाओं का मूल्यांकन किया जाता है तथा यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि इन योजनाओं से विपणन उदेश्यों को प्राप्त किया जा सकता है या नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. **जोखिम** – विपणन प्रबंधकों को अनेक अनिश्चिताओं या जोखिमों का सामना करना पड़ता है। विपणन वातावरण का अध्ययन कर इन अनिश्चिताओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। जोखिमों का सही मापन कर संस्था पर पड़ने वाले इनके प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है।

6. **घटकों के आपसी प्रभाव का अध्ययन** – विपणन वातावरण के अनेक घटक है इन घटकों का आपस में एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। एक घटक का दूसरे घटक पर क्या एवं कितना प्रभाव पड़ रहा है इसकी जानकारी के लिए विपणन वातावरण का अध्ययन अतिआवश्यक है।

7. **निर्णयन हेतु** – संस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए विपणन प्रबन्ध को अनेक प्रकार के निर्णय लेने पड़ते हैं। विपणन वातावरण का अध्ययन किये बिना प्रभावकारी निर्णयन संभव नही है। अतः विपणन वातावरण का अध्ययन परमावश्यक है।

8. **विपणन अवसरों की खोज** – संस्था के विकास एवं विस्तार के लिए विपणन वातावरण में अनेक अवसर विद्यमान होते है इन अवसरों की जानकारी विपणन वातावरण का अध्ययन किये बिना संभव नही है पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार– ''अधिकाधिक अवसरों की खोज वातावरण के प्रति जागरूकता से ही संभव है।"

9. **नवाचार या नवप्रवर्तन** – संस्था की सफलता के लिए नवीन उत्पादों की खोज एवं नये अविष्कार अतिआवश्यक है। नवाचार या नवप्रर्वतन की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि यें विपणन वातावरण के कितने अनुकूल है। अतः विपणन वातावरण का अध्ययन अतिआवश्यक है।

10. **प्रतियोगिता में सफलता के लिए** – विपणन वातावरण में विद्यमान प्रतियोगिता की स्थिति का सामना करने के लिए प्रतियोगी संस्था के उत्पादों, लागतो, वितरण माध्यमों, विज्ञापन एवं प्रचार के साधनो की सही जानकारी विपणन प्रबंधक को होनी अतिआवश्यक है इसके बिना प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त करना असंभव है। अतः प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त करने के लिए विपणन वातावरण का अध्ययन अतिआवश्यक है।

विपणन वातावरण को प्रभावित करने वाले घटक
Factors Affecting Marketing Environment

विपणन वातावरण को प्रभावित करने वाले घटको को मोटे रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है जो निम्नानुसार है :–

1. आन्तरिक घटक – आन्तरिक घटकों को नियंत्रण योग्य घटक भी कहते है क्योंकि ये घटक सामान्यतया संस्था के विपणन विभाग के नियंत्रण के अन्तर्गत आते है। जैसा कि आप जानते है कि प्रत्येक संस्था का अपना एक संगठन होता है और संगठन में अनेक विभाग होते है उनमें एक विपणन विभाग भी होता है। विपणन विभाग में जो परिवर्तन होते है उन पर विपणन प्रबंधक नियंत्रण स्थापित कर लेता है। विपणन विभाग को विपणन विभाग के परिवर्तन ही प्रभावित नहीं करते वरन सम्पूर्ण संस्था में होने वाले परिवर्तन भी विपणन विभाग को प्रभावित करते है। विपणन विभाग को प्रभावित करने वाले आन्तरिक विपणन वातावरण के प्रमुख घटक निम्नलिखित है –

(i) संस्था के संसाधन – संस्था के संसाधनो में संस्था के कार्मिक एवं श्रम शक्ति, संस्था का प्रबंध, वित्तीय संसाधन, सामग्री एवं कच्चामाल, विचार एवं सूचनाएँ आदि आते है। जो विपणन वातावरण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

(ii) विपणन मिश्रण – संस्था का विपणन मिश्रण भी आन्तरिक वातावरण का एक घटक है जो विपणन लक्ष्यों एवं उदेश्यों को प्रभावित करता है। विपणन मिश्रण के चार प्रमुख घटक है जो उत्पाद, मूल्य, स्थान एवं संवर्द्धन नाम से जाने जाते है इन घटकों में किसी प्रकार का परिवर्तन होने पर आन्तरिक विपणन वातावरण प्रभावित होता है।

2. बाहरी घटक – बाहरी घटकों को अनियन्त्रिण योग्य घटक भी कहते हैं। इन पर विपणन विभाग का कोई नियन्त्रण नहीं होता है। इनमें वे सभी घटक सम्मिलित हैं जो संस्था के कार्यों को प्रभावित करते हे तथा संस्था की सफ़लता और असफलता के लिए जिम्मेदार होते हैं। इनमें सभी आर्थिक, तकनीकी, बाजार, सामाजिक एवं राजनैतिक आदि घटक सम्मिलित है। संक्षेप में, विपणन वातावरण के बाहरी घटकों का अध्ययन निम्नलिखित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है :–

(i) जन सांख्यिकी वातावरण एवं उसके घटक –विपणन प्रबन्धक के लिए जन सांख्यिकी वातावरण एवं उनके घटको का अध्ययन अतिमहत्वपूर्ण है। यह भावी उपभोक्ताओं एवं बाजार संभवनाओं के बारे में जानकारी प्रदान करने में विपणन प्रबन्धकों के लिए मददगार है। इस जानकारी के आधार पर बाजार विभक्तीकरण करने एवं विपणन मिश्रण की व्यूह रचनाओं का निर्माण करने में विपणन प्रबन्धन को आसानी होगी। जन सांख्यिकी वातावरण में जनसंख्या का आकार, घनत्व, जनसंख्या का आयु आधार पर वर्गीकरण, आय, शैक्षिक स्तर, जाति एवं धर्म, रोजगार तथा घरेलु इकाई का आकार आदि बातों को सम्मिलित किया जा सकता है।

(ii) आर्थिक वातावरण –आर्थिक वातावरण से तात्पर्य उन सभी घटको से हैं जो संस्था की कार्यकुशलता को आर्थिक रूप से प्रभावित करते हैं। आर्थिक वातावरण में मुख्य रूप से देश की अर्थ व्यवस्था के विकास की दिशा अर्थात अर्थ व्यवस्था विकसित, अविकसित या विकासशील में से किस दिशा में है। देश में तेजी–मन्दी की स्थिति, राष्ट्रीय आय का स्वरूप एवं श्रोत, आय का वितरण, पूंजी निर्माण की दर, देश का कर ढ़ाँचा, विदेशी मुद्रा भण्डार की स्थिति आदि को सम्मिलित किया जाता है। विपणन प्रबन्धक को इन घटको की स्थिति एवं इनमें होने वाले परिवर्तनों का निरन्तर अध्ययन करते रहना चाहिए। अध्ययन के निष्कर्षों का उपयोग विपणन निर्णयों में करके संस्था को सफलता के मार्ग पर अग्रसर किया जा सकता है।

(iii) सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण –सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण में समाज की जीवन शैली, जीवन–स्तर, परिवर्तनों के प्रति समाज का दृष्टिकोण, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य, सामाजिक रीति–रिवाज एवं परम्पराएँ आदि घटकों को सम्मिलित किया जाता है। इन घटको में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। इन सभी परिवर्तनों को समझकर उपभोक्ताओं की रूचि, पसन्द एवं फैशन आदि का पता लगाया जा सकता है तथा उसी के अनुरूप विपणन निर्णय लिये जा सकते हैं।

(iv) प्राकृतिक वातावरण एवं उसके घटक –प्राकृतिक वातावरण एवं उसके घटको में प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति, देश की जलवायु, प्राकृतिक वातावरण के प्रति जन समुदाय की जागरूकता तथा प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा हेतु बनाये गये सरकारी नियम एवं नीतियाँ आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। प्राकृतिक वातावरण का संरक्षण आज सरकार एवं प्रबन्धकों के सामने चुनौति पूर्ण कार्य है तथा प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा प्रबन्धकों का दायित्व है। किसी भी संस्था के विपणन कार्यक्रम एवं निर्णयों को प्राकृतिक वातावरण एवं उसके घटक सदैव प्रभावित करते रहते है। अतः विपणन प्रबन्धक को प्राकृतिक वातावरण एवं उनके घटकों की ओर सदैव ध्यान देते रहना चाहिए।

(v) राजनीतिक वातावरण एवं उसके घटक –किसी भी देश का राजनीतिक वातावरण व्यावसायिक संस्था के कार्यों को प्रभावित करता है। राजनीतिक वातावरण में देश में राजनीतिक स्थिरता, सरकारी विचारधारा, राष्ट्रीय सुरक्षा एवं रक्षा नीति, विदेशनीति, भ्रष्टाचार की स्थिति, देश की अन्तराष्ट्रीय प्रतिष्ठा आदि घटकों को सम्मिलित किया जा सकता है। देश की आर्थिक नीतीयाँ देश के राजनीतिक वातावरण के अनुरूप ही बनती है। अतः विपणन प्रबन्धक को सदैव राजनीतिक वातावरण एवं उसके घटको का अध्ययन करते रहना चाहिए।

(VI) तकनीकी वातावरण एवं उसके घटक – तकनीकी वातावरण से आशय वातावरण के उन घटकों से है जो किसी व्यवसायिक संस्था के तकनीकी संसाधनो की उपलब्धता को प्रभावित करते है। तकनीकी वातावरण में देश में उपलब्ध तकनीक की स्थिति एवं उसकी लागत, तकनीकों के सम्बंध में सरकारी नीति, तकनीकों के परिवर्तन की गति, तकनीकों के आयात–निर्यात की नीति आदि घटकों को सम्मिलित किया जा सकता है। आज तकनीक में तीव्र परिवर्तन हो रहे है अतः विपणन प्रबंधकों को तकनीकी परिवर्तनों की जानकारी रखनी होगी ताकि परिवर्तनों के अनुरूप शीघ्र विपणन निर्णय लिये जा सके।

(VII) बाजार मांग– विपणन प्रबन्धको को उत्पाद की बाजार मांग का ध्यान पूर्वक परिक्षण करते रहना चाहिए। बाजार मांग में मांग का आकार, मांग में हो रहे परिवर्तन, उत्पाद के स्थानापन्न उत्पादों की उपलब्धता, उत्पाद की भावी मांग आदि बातो को सम्मिलित किया जाता है। विपणन प्रबंधक को इन सब घटकों को ध्यान में रखते हुए विपणन कार्यक्रम बनाने चाहिए एवं विपणन व्यूह रचना तैयार करनी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(VIII) उपभोक्ता –उपभोक्ता अनेक प्रकार के हो सकते है जैसे घरेलू उपभोक्ता, औद्योगिक उपभोक्ता, विदेशी उपभोक्ता आदि। विपणन प्रबंधक को अपने ग्राहक/ उपभोक्ता के सम्बंधों में सभी सूचनाएं एकत्र करनी चाहिए। ग्राहकों की रूचि, आवश्यकता, फैशन, आयु, आय वर्ग आदि की जानकारी करनी चाहिए।

(IX) प्रतियोगी –प्रतियोगी संस्थाओं के बारे में सम्पूर्ण जानकारी रखना विपणन प्रबंधकों के लिए अतिआवश्यक है। प्रतियोगी संस्था के उत्पाद, मूल्यनीति, वितरण एवं मध्यस्थों से सम्बंधित नीति आदि बातों पर ध्यान देकर अपनी संस्था की विपणन व्यूहरचना बनानी चाहिए।

(X) जनसमूह –जनसमूह से तात्पर्य जनता के ऐसे समूहों से है जो किसी संस्था को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करने की स्थिति में होते है। जन समूह निम्न प्रकार के हो सकते है :–

A. किसी संस्था में अंशधारी, ऋणदाता, ऋणपत्रधारी, बैंक एवं निवेशक आदि।

B. सरकारी संस्थाएं एवं सरकारी अधिकारी

C. उपभोक्ता संरक्षण मंच, पर्यावरण संरक्षण मंच

D. किसी संस्था के कर्मचारी, प्रबंधक एवं संचालकों के समूह

E. संचार माध्यमों में टी.वी, समाचार पत्र, रेडियो आदि

ये जनसमूह किसी संस्था की ख्याति बनाने एवं बिगाड़ने की क्षमता रखते है। अतः इनसे सम्पर्क बनाये रखना किसी संस्था के लिए लाभप्रद होता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न :–

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. वातावरण से आपका क्या आशय है ?
2. आन्तरिक वातावरण से क्या आशय है ?
3. बाह्य वातावरण से क्या तात्पर्य है ?
4. विपणन वातावरण का अध्ययन क्यों आवश्यक है ?
5. विपणन वातावरण से आपका क्या आशय है ?
6. विपणन वातावरण की प्रकृति को संक्षेप में समझाइए।
7. आर्थिक वातावरण के घटकों के नाम गिनाइए।
8. सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के घटकों के नाम गिनाइए।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. विपणन वातावरण से आप क्या समझते हैं ? विपणन वातावरण की प्रकृति को स्पष्ट रूप से समझाइए।
2. विपणन वातावरण के अध्ययन की क्या आवश्यकता है ? स्पष्ट कीजिए।
3. विपणन वातावरण के विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिए। ये किस प्रकार विपणन क्रियाओं को प्रभावित करते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बाजार विभक्तिकरण
Market Segmentation

परिचय Introduction -

भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में सम्पूर्ण विश्व एक बड़ा बाजार बन गया है। पूरे विश्व में विभिन्न प्रकार के उपभोक्ता रहते है जिनमें आयु, आय, लिंग, शिक्षा, व्यवसाय एवं पैशा आदि के आधार पर अनेक अन्तर है। किसी भी संस्था के लिए यह लगभग असम्भव है कि वह इन सभी प्रकार के ग्राहको पर ध्यान केन्द्रित कर सके। अतः एक संस्था कुछ विशेष प्रकार के बाजारों एवं ग्राहकों का चयन कर लेती है और उन्ही पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित कर लेती है इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को बाजार विभक्तिकरण का नाम दे सकते है। उदाहरण के लिए एक संस्था सम्पूर्ण भारत में अपना माल नहीं बेच सकती है तो वह संस्था राजस्थान पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकती है। राजस्थान एक बड़ा प्रदेश है इसे भी बाजार के हिसाब से चार भागों में विभाजित कर किसी एक भाग पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है।

बाजार विभक्तिकरण का अर्थ एवं परिभाषा
Meaning and Definition of Market Segmentation

सामान्यतया बाजार विभक्तिकरण का आशय एक बड़े बाजार को कई छोटे–छोटे भागों में बांटना है ताकि प्रत्येक भाग के लिए एक समुचित विपणन कार्यक्रम एवं व्यूहरचना बनाई जा सके। इसके लिए बाजार के ग्राहकों की विशेषताओं, आवश्यकताओं, व्यवहार आदि के अनुसार समूह बनाये जाते है तथा प्रत्येक समूह की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए अलग विपणन कार्यक्रम एवं व्यूहरचना तैयार की जाती है।

बाजार विभक्तिकरण की अनेक विद्वानों द्वारा परिभाषाएँ दी गई है जिनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाए निम्नानुसार है :–

1. फिलिप कोटलर के शब्दों में –"बाजार विभक्तिकरण एक बाजार के सामान प्रकार के ग्राहको को उप समूहों में उपविभाजित करना है ताकि किसी उप समूह का काल्पनिक रूप से ऐसे लक्ष्य बाजार के रूप में चयन किया जा सके जिसमें विशिष्ट विपणन मिश्रण के साथ प्रवेश किया जा सके।"

2. स्टेन्टन के अनुसार –"बाजार विभक्तिकरण किसी उत्पाद के सम्पूर्ण विजातीय बाजार को अनेक उप–बाजार या खण्डों में विभाजित करने की वह प्रक्रिया है ताकि प्रत्येक खण्ड के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं में समजातीयता हो जाय"।

3. कण्डिफ एवं स्टिल –"उपभोक्ताओं का उनकी आय, आयु, नगरीकरण की स्थिति, जाति या जातीय वर्गीकरण, भौगोलिक स्थिति या शिक्षा आदि विशेषताओं के अनुसार समूहीकरण करना ही बाजार विभक्तिकरण है।"

4. अमेरिकन विपणन संघ के अनुसार – "बाजार विभक्तिकरण असमान या विजातीय बाजार को ऐसे छोटे ग्राहक समूहों में विभाजित करना है जिनमें कुछ ऐसी एक समान विशेषताएँ पाई जाती हैं जिन्हें उस संस्था द्वारा सन्तुष्ट किया जा सकता है।"

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि बाजार विभक्तिकरण के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के ग्राहकों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार समूहों में विभाजित किया जाता है ताकि समान विशेषताओं वाले ग्राहकों के लिए एक समान विपणन कार्यक्रम तैयार कर विपणन कार्य में सफलता प्राप्त की जा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बाजार विभक्तिकरण की विशेषताएँ
Characteristics of Market Segmentation

बाजार विभक्तिकरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है :–

1. बाजार विभक्तिकरण एक नवीन अवधारणा है।
2. विभिन्न प्रकार के ग्राहकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न आकृति एवं किस्म की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।
3. बाजार विभक्तिकरण किसी बाजार को छोटे–छोटे भागों में बांटने की रीति–नीति है।
4. बाजार विभक्तिकरण विभिन्न आधारों पर किया जाता है, जैसे – ग्राहकों की आयु, आय, शिक्षा, लिंग आदि।
5. बाजार विभक्तिकरण में वर्तमान एवं भावी ग्राहकों को उनकी आवश्यकताओं, रूचियों एवं पसन्द के आधार पर समजातीय समूहों में विभाजित किया जाता है।
6. बाजार विभक्तिकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बाजार को विभिन्न भागों में बांटा जाता है।

बाजार विभक्तिकरण की मान्यताएँ
Assumptions of Market Segmentation

बाजार विभक्तिकरण की प्रमुख मान्यताएँ निम्नानुसार है :

1. बाजार विभक्तिकरण की प्रथम मान्यता यह है कि बाजार में विभिन्न प्रकार के या विषम ग्राहक विद्यमान होते है।
2. इन विभिन्न प्रकार के ग्राहकों के पृथक–पृथक समूह बनाये जा सकते है।
3. विभिन्न प्रकार के अलग–अलग ग्राहकों के लिए पृथक–पृथक विपणन मिश्रण एवं व्यूह रचनाओं का निर्माण किया जा सकता है।

बाजार विभक्तिकरण के उदेश्य
Objectives of Market Segmentation

बाजार विभक्तिकरण के प्रमुख उदेश्य निम्नलिखित है :

1. समान प्रकार के ग्राहक जिनकी विशेषताएँ एवं आवश्यकताएँ एक प्रकार की है, समूह बनाना।
2. प्रत्येक समूह के ग्राहक की रूचि, पसन्द एवं आवश्यकता की जानकारी करना।
3. संस्था के लिए सर्वश्रेष्ठ ग्राहक वर्ग की जानकारी करना।
4. संभावित ग्राहकों को वास्तविकता में बदलना।
5. संस्था की विपणन नीतियों, कार्यक्रमों को ग्राहकोन्मुखी बनाना।
6. असन्तुष्ट ग्राहक वर्ग की जानकारी कर उन्हें सन्तुष्ट करना।
7. प्रत्येक बाजार खण्ड के लिए अलग विपणन व्यूहरचना तैयार करना।
8. विपणन अवधारणा को व्यवहार में लाना।
9. सर्वोतम बाजार क्षैत्रों का चयन करना एवं उनका विकास करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बाजार विभक्तिकरण का महत्व
Importance of Market Segmentation

बाजार विभक्तिकरण एक संस्था की कार्य प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बाजार विभक्तिकरण से एक संस्था अच्छे उत्पाद प्रस्तुत कर सकती है तथा सर्वोतम वितरण एवं संचार की व्यवस्था कर सकती है।

फिलिप कोटलर के अनुसार – "बाजार विभक्तिकरण से संस्था अधिक अच्छे उत्पाद या अच्छी सेवा उपलब्ध करा सकती है तथा लक्ष्य बाजार के लिए उसका समुचित मूल्य निर्धारित कर सकती है। संस्था सर्वोत्तम वितरण एवं संचार माध्यमों का चयन कर सकती है तथा अपने प्रतिस्पर्धियों की तस्वीर को अधिक स्पष्ट रूप से देख सकती है।"

बाजार विभक्तिकरण के महत्व को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है :–

1. **बाजार खण्डों का तुलनात्मक अध्ययन** – बाजार विभक्तिकरण द्वारा विपणन प्रबन्धन सर्वोत्तम विपणन अवसरों की जानकारी कर सकता है ऐसा बाजार खण्डों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा किया जा सकता है। जिस बाजार खण्ड में तुलनात्मक रूप से अच्छे विपणन अवसर विद्यमान होते हैं, उस खण्ड में विपणन प्रबन्धक अपना विपणन कार्य प्रभावी तरीके से कर सकता है।

2. **सर्वोत्तम लक्ष्य बाजार का चयन** – जब बाजार खण्डों का तुलनात्मक अध्ययन कर लिया जाता है तो विपणनकर्त्ता के सामने सभी बाजारों की स्थिति स्पष्ट रूप से आ जाती है और इनमें से सर्वोत्तम लक्ष्य बाजार का चयन कोई कठिन कार्य नहीं होता है। इस प्रकार एक विपणन प्रबन्धक सर्वोत्तम लक्ष्य बाजार का चयन कर उस बाजार के अनुरूप अपना विपणन कार्यक्रम तैयार कर सकता है।

3. **ग्राहकों की आवश्यकता एवं रूचि की जानकारी** – बाजार विभक्तिकरण द्वारा ग्राहकों की पसन्द एवं आवश्यकता की जानकारी आसानी से हो जाती है। विपणनकर्त्ता ग्राहकों की पसंद एवं आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए विपणन कार्यक्रम एवं व्यूह रचनाओं का निर्धारण कर सकता है। ग्राहकों की आवश्यकता एवं रूचि को ध्यान में रखकर बनाये गये विपणन कार्यक्रम अधिक सफल होते हैं।

4. **मध्यस्थों के चयन में सुविधा** – बाजार खण्डों का निर्धारण हो जाने के बाद मध्यस्थों के चयन में सुविधा होती है। किस बाजार खण्ड के लिए किस प्रकार के मध्यस्थ उपयुक्त रहेंगे इस बात का पता लगाकर मध्यस्थों का चयन किया जा सकता है। इस प्रकार बाजार विभक्तिकरण से विशेष आवश्यकता वाले मध्यस्थों का चयन संभव है।

5. **मूल्य निर्धारण में सहायक** – बाजार विभक्तिकरण मूल्य निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान देता है। ग्राहकों की आय, जीवन–स्तर, व्यवसाय आदि के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है तथा इस जानकारी के आधार पर उत्पाद का मूल्य निर्धारण किया जा सकता है। उपभोक्ताओं की आय को ध्यान में रखते हुए बाजार विभक्तिकरण द्वारा विभेदकारी मूल्य निर्धारण भी किया जा सकता है।

6. **लाभकारी विपणन खण्डों पर ध्यान** – बाजार विभक्तिकरण के माध्यम से विपणनकर्त्ता लाभकारी एवं अलाभकारी विपणन खण्डों की जानकारी कर सकता है तथा उन विपणन खण्डों पर ज्यादा ध्यान दे सकता है जो उसके लिए लाभप्रद हो। इस प्रकार सम्पूर्ण विपणन प्रयास लाभकारी विपणन खण्डों पर केन्द्रित किये जा सकते हैं।

7. **प्रतिर्स्पधा में विजय प्राप्त करना** – बाजार विभक्तिकरण द्वारा प्रत्येक बाजार खण्ड में स्थित प्रतियोगी संस्था के उत्पादों के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है। प्रतियोगी संस्था के उत्पाद की किस्म मूल्य, विपणन माध्यम आदि की जानकारी कर प्रभावकारी विपणन व्यूह रचनाएँ बनाई जा सकती है जो प्रतिर्स्पधा में विजय दिलाने में सहायक होगी।

8. **समय की मांग** – बाजार विभक्तिकरण वर्तमान समय की एक मांग है क्योंकि कोई भी उत्पादक सम्पूर्ण बाजार में विपणन कार्य का संचालन नहीं कर सकता है। अतः कुछ उपयुक्त बाजार खण्डों का चयन कर लिया जाता है, तथा उन बाजार खण्डों में अधिक प्रभावी तरीके से विपणन कार्यों का संचालन किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

फिलिप कोटलर के अनुसार – "कई संस्थाएँ अपने विपणन प्रयासों को फैलाने की अपेक्षा उन्हें उन ग्राहकों पर केन्द्रित करना पसन्द करती है जिनको सन्तुष्ट करने की अधिक संभावना होती है।''

विलियम जे. स्टेन्टन ने लिखा है कि अमेरिका की कई बहुराष्ट्रीय संस्थाएँ जो सम्पूर्ण बाजार के सभी ग्राहकों में विपणन कार्य करती थी वे आज बाजार विभक्तिकरण कर छोटे–छोटे बाजार खण्डों में अपनी पहुंच बना रही है।

9. **ग्राहक के स्तर के अनुरूप संवर्द्धनात्मक प्रयास –** विभिन्न बाजार खण्डों में विभिन्न प्रकार के ग्राहक उपस्थित होते है। इन ग्राहकों की आय, आयु, जीवनस्तर, व्यवसाय एवं पैशा आदि में प्रयाप्त अन्तर होता है। इस अन्तर को ध्यान में रखते हुए ग्राहक के स्तर के अनुरूप संवर्द्धनात्मक प्रयास किये जा सकते हैं।

विलियम जे. स्टेन्टन आदि लेखकों के अनुसार – "बाजार विभक्तिकरण के कारण विपणन भी अधिक प्रभावी हो सकता है क्योंकि संवर्द्धनात्मक सन्देश तथा उसको प्रस्तुत करने हेतु माध्यमों का चयन बाजार खण्ड को केन्द्र बिन्दु मान कर किया जा सकता है।"

10. **असन्तुष्ट बाजार खण्डों पर ध्यान केन्द्रित करना –** बाजार विभक्तिकरण के द्वारा विपणनकर्त्ता किसी विशेष बाजार खण्ड में असन्तुष्ट ग्राहकों की जानकारी कर सकता है और यह पता लगा सकता है कि ग्राहक किन कारणों से असन्तुष्ट हैं। ग्रहको की असन्तुष्टि के कारणों का पता लगाने के बाद उनको सन्तुष्ट करने के प्रयास किये जा सकते है।

बाजार विभक्तिकरण के आधार
Bases For Market Segmentation

बाजार विभक्तिकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है तथा इन आधारों में समय के साथ–साथ परिवर्तन होते रहते है और बाजार विभाजन के नये आधार तैयार होते रहते है। विभिन्न विद्वानों की राय को ध्यान में रखते हुए बाजार विभक्तिकरण के निम्नलिखित आधार बताये जा सकते है :–

1. **भौगोलिक आधार –** भौगोलिक आधार पर विभक्तिकरण से आशय बाजार क्षेत्र को भौगोलिक इकाइयों जैसे देश, राज्य, नगर या गाँव में विभजित करना है। भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर भी यह विभाजन किया जा सकता है। जैसे कि गर्म एवं ठण्डे प्रदेश, जलवायु, पहाड़, मैदानी इलाके, पठार आदि। भारत के विभिन्न राज्यों में जलवायु में काफी अन्तर पाया जाता है। जो स्थान समुद्र के किनारे बसे है जैसे कि मुम्बई यहाँ ठण्डे पेय पदार्थ पूरे साल बेचे जा सकते हैं जबकि उत्तरी भारत के शहरों में सिर्फ ग्रीष्म ऋतु में ही ठण्डे पेय पदार्थों की मांग रहती है। ग्रामीण एवं शहरी बाजारों की विशेषाओं में काफी अन्तर रहता है। विपणन प्रबन्धन को इन बातों को ध्यान में रखते हुए विपणन कार्य करना चाहिए क्योंकि शहरी क्षैत्रों में जिन उत्पादों का विपणन किया जाता है यह जरूरी नही है कि ग्रामीण क्षैत्रो में भी उन उत्पादों की बिक्री हो।

2. **जनांकिकी आधार** – जब किसी बाजार को जनसंख्याा के विभिन्न घटकों के आधार पर विभाजित किया जाता है तो उसे जनांकिकी आधार पर विभाजन करना कहते हैं। प्रमुख जनसंख्या सम्बंधी घटक निम्नानुसार है

A. आयु वर्ग – किसी उत्पाद के प्रति उपभोक्ता की पसन्दगी एवं नापसन्दगी उम्र के अनुसार बदलती रहती है। बचपन में जो उत्पाद पसन्द होते हैं बड़े होने पर उनका महत्व समाप्त हो जाता है। विपणन प्रबंधक को आयु वर्ग को ध्यान रखते हुए विपणन कार्य करना चाहिए।

B. आय – एक व्यक्ति की आय उसकी क्रय करने की शक्ति को निर्धारित करती है आय के अनुसार उपभोक्ता का विभाजन उच्च आय वर्ग, मध्यम आय वर्ग तथा निम्न आय वर्ग में किया जा सकता है।

C. शिक्षा – शिक्षा के आधार पर अलग अलग उपभोक्ता के वर्ग बनाये जा सकते है। उदाहरण के लिए शिक्षित, अशिक्षित एवं कमपढ़े लिखे व्यक्ति।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

D. लिंग – बाजार विभक्तिकरण ग्राहकों के लिंग के आधार पर भी किया जा सकता है। महिलाओं एवं पुरूषों के लिए अलग अलग प्रकार के उत्पादों की आवश्यकता होती है अतः विपणन प्रयास भी अलग–अलग प्रकार के करने की आवश्यकता होती है।

E. व्यवसाय – बाजार में विभक्तिकरण ग्राहकों के व्यवसाय धन्धे के आधार पर भी किया जा सकता है। इनको पैशेवर व्यक्ति, नौकरीपेशा, व्यवसायी आदि आधारों में बांटकर इनके लिए अलग विपणन कार्यक्रम निर्धारित किये जा सकते है।

F. जीवन–चक्र अवस्था – एक समान आयुवर्ग के व्यक्तियों की जीवन–चक्र अवस्था अलग–अलग हो सकती है। एक समान आयु वर्ग के ग्राहक कुंवारे, शादीशुदा, विधुर, तलाकशुदा आदि हो सकते है। यह भिन्नता उनकी क्रय वरीयता एवं उनकी आवश्यकताओं में अन्तर पैदा करती है।

3. मनोवैज्ञानिक आधार –ग्राहकों की मनोदशा या उनकी मनोवैज्ञानिक विशेषताएं ग्राहकों में अंतर उत्पन्न करती है। ग्राहक की ये विशेषताएं उनके व्यक्तिव के कारण होती है। कुछ लोग बहुत खर्चीले होते है जबकि कुछ लोग धन खर्च करना पसंद नही करते है, कुछ स्वभाव से साहसी होते है तो कुछ लोग भीरू प्रवृति के होते है। ग्राहकों की जीवन–शैली या उनके जीवन जीने का ढंग उनकी आवश्यकताओं, क्रय वरीयताओं को निर्धारित करती है। अतः विपणनकर्ता जीवन–शैली के आधार पर भी उपभोक्ताओं का विभाजन करते हैं। इसके अलावा ग्राहकों का व्यक्तित्व भी उनकी पसन्द, नापसन्द एवं क्रय वरीयताओं का निर्धारित करता है।

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन मूल्य उसकी आवश्यकताओं एवं क्रय वरीयताओं का निर्धारण करता है। एक व्यक्ति के अनेक जीवन मूल्य हो सकते है जैसे जीवन में आनन्द, अपनत्व, संतोष, मधुर सम्बंध बनाना, सुरक्षा की भावना आदि। ग्राहकों में विद्यमान ये सभी जीवन मूल्य उसकी आवश्यकताओं का निर्धारण करते हैं।

4. लाभ आधार –जब क्रेता किसी उत्पाद को इस आशा से क्रय करता है कि इस उत्पाद के प्रयोग से उसे लाभ होगा तो इसे लाभ आधार पर बाजार पर विभक्तिकरण कहेंगे। विपणन प्रबंधक को इसके आधार पर विपणन निर्णय लेने चाहिए। जैसे एक उपभोक्ता किसी विशेष ब्रान्ड की चाय के साथ दिये जाने वाले उपहार की वजह से उस ब्रान्ड को पसन्द करता है। इस प्रकार विपणन प्रबंधक को उपभोक्ता के किसी लाभ के प्रति विशेष झुकाव को ध्यान में रखते हुए विपणन कार्य करना चाहिए।

5. विपणन आधार –विपणन आधार पर भी बाजार का विभक्तिकरण किया जा सकता है कुछ ग्राहक अधिक मूल्य वाले उत्पादों की और आंख उठा कर भी नही देखते जबकि कुछ ग्राहक अधिक मूल्य का ब्रान्डेड उत्पाद पसन्द खरीदना करते हैं। कुछ उपभोक्ता वस्तु की किस्म पर ज्यादा ध्यान देने वाले होते है। अतः एक उत्पादक/विपणनकर्त्ता को इन बातों का ध्यान रखते हुए विपणन प्रयास करने चाहिए ताकि उसे अधिक सफलता प्राप्त हो सके।

6. क्रय अवसर –कुछ उपभोक्ता इस प्रकार के होते है जो विभिन्न अवसरों पर उत्पादों का क्रय करते है उदाहरण के लिए जन्मदिन, शादी की वर्षगांठ, वेलैन्टाइन्स डे, आदि अवसरो पर ही कुछ उपभोक्ता द्वारा क्रय निर्णय लिये जाते हैं। कुछ लोगों दीपावली, धनतेरस, आदि दिनों पर किसी उत्पाद को क्रय करने का निर्णय लेते है।

7. ब्रान्डनिष्ठा – बाजार विभक्तिरण ग्राहकों की ब्रान्डनिष्ठा के आधार पर भी किया जा सकता है। कुछ लोग किसी विशेष ब्रान्ड के लिए पूर्ण सर्मपित होते है जबकि कुछ उपभोक्ताओं की निष्ठा बदलती रहती है। कुछ लोग ऐसे भी होते है जिनकी किसी भी ब्रान्ड के प्रति कोई निष्ठा नही होती है।

प्रभावी बाजार विभक्तिकरण के आवश्यक तत्व
Essential Elements of Effective Market Segmentation

बाजार विभक्तिकरण सभी संस्थाओं द्वारा किये जा सकते है किन्तु सभी बाजार विभक्तिकरण प्रभावी नही हो पाते है। अतः बाजार विभक्तिकरण को प्रभावी बनाने के लिए कुछ विशेष बातों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है जो निम्नानुसार हैः–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. मापनयोग्य – बाजार विभक्तिरण के सभी घटक मापन योग्य नहीं हो सकते है लेकिन प्रभावी बाजार विभक्तिकरण के लिए घटकों का मापन योग्य होना चाहिए। उदाहरण के लिए उपभोक्ता की आय का मापन किया जा सकता है लेकिन उसके मनोवैज्ञानिक घटकों का मापन संभव नहीं है।

2. बाजार खण्डों तक सुगम पहुंच – प्रभावी बाजार विभक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि विपणनकर्ता न्यूनतम खर्च पर बाजार खण्डों तक पहुंच सके। वितरण माध्यमों तथा विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन के साधनों की पहुंच भी बाजार खण्डो तक सुगमता पूर्वक हो जानी चाहिए।

3. बाजार खण्डों का उचित आकार – प्रत्येक बाजार खण्ड का आकार न तो इतना बड़ा हो कि उस पर ध्यान न दिया जा सके न इतना छोटा होना चाहिए कि विपणन प्रयास संस्था के लिए लाभ का सौदा न हो। अतः बाजार खण्डों का आकार उचित होना चाहिए।

4. विभेद योग्यता – बाजार खण्ड में विभेद योग्यता होनी चाहिए अर्थात बाजार का प्रत्येक खण्ड दूसरे खण्ड से अलग एवं पहचानने योग्य होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो बाजार विभक्तिकरण प्रभावशील नहीं हो पायेगे तथा बाजार विभक्तिकरण का कोई अर्थ भी नहीं रहेगा।

5. व्यवहारिक – बाजार खण्डों का व्यवहारिक होना इस बात पर निर्भर करता है कि बाजार खण्डों के लिए विपणन कार्यक्रम बनाना और उसकों क्रियान्वित करना संभव होना चाहिए। यदि किसी कारणवश विपणन कार्यक्रम को क्रियान्वित करना संभव नही हो तो बाजार विभक्तिकरण का कोई अर्थ नही होगा।

6. बाजार खण्डों का स्थायी अस्तित्व – बाजार खण्ड ऐसे होने चाहिए जो स्थायी हो यदि बाजार खण्ड अल्पकालीन है तो इनके लिए बनाया गया विपणन कार्यक्रम भी अल्पकालिक होने के कारण अधिक खर्चीला होगा। अतः बाजार खण्ड ऐसे होने चाहिए कि उनके लिए लम्बे समय तक प्रभावी रहने वाला विपणन कार्यक्रम बनाया जा सके।

7. मितव्ययी – विपणन प्रबंधकों द्वारा ऐसे बाजार खण्डों का निर्माण किया जाना चाहिए जिनमें विपणन कार्यक्रम मितव्ययतापूर्ण तरीके से संचालित किया जा सके। बाजार खण्डों का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बाजार खण्ड न बहुत बड़े हो और न ही बहुत छोटे हो अन्यथा बाजार खण्ड का मितव्ययतापूर्ण तरीके से संचालन संभव नहीं होगा।

8. लाभदायी – बाजार खण्डो का बहुत बड़ा होना या छोटा होना इतना महत्व नही रखता है जितना कि बाजार खण्डों का लाभदायी होना। अतः विपणन प्रबंधक द्वारा इस प्रकार के बाजार खण्डो का निर्माण किया जाना चाहिए जो लाभदायी हो।

बाजार विभक्तिकरण की व्यूहरचनाएँ
Stratagies for Market Segmentation

लक्ष्य बाजारों के चयन हेतु सामान्यतया निम्नलिखित विपणन व्यूह रचनाएँ अपनाई जाती है।

1. विभेदविहीन विपणन व्यूह रचना (Undifferntiated Market Strategy)

इस प्रकार की विपणन व्यूह रचना में बाजार के ग्राहकों में कोई भेद नहीं किया जाता है। सभी ग्राहकों को एक समान मानकर विपणनकर्ता विपणन कार्य करने की योजना बनाता है। विपणनकर्ता यह मानकर चलता है कि सम्पूर्ण बाजार में ग्राहकों की आवश्यकताएं, विशेषताएं, पसंद एवं नापसंद एक प्रकार की है। इसमें ग्राहकों में कोई भेद नही किया जाता है इसलिए इसे विभेद विहीन विपणन व्यूहरचना कहते हैं।

विभेदविहीन विपणन व्यूह रचना की प्रमुख मान्यताएं निम्नानुसार है–

1. सभी ग्राहक एक समान है।
2. सभी ग्राहकों की विशेषताएं एक ही प्रकार की है। ग्राहकों की आवश्यकता, रूचियां, पंसद एक ही प्रकार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की है।

3. ग्राहकों की मांग एक ही प्रकार के उत्पाद के लिए है।

4. सभी ग्राहकों के लिए एक समान प्रकार के उत्पाद बनाये जा सकते हैं।

5. सभी ग्राहकों हेतु एक विपणन कार्यक्रम तैयार करना पर्याप्त रहेगा।

6. मूल्य स्तर सभी उत्पादों का एक ही प्रकार का होगा।

7. सम्पूर्ण बाजार में एक ही प्रकार के विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन साधनों का उपयोग किया जा सकता है।

8. सम्पूर्ण बाजार एक खण्ड है।

विभेदविहीन विपणन व्यूह रचना के प्रमुख लाभ निम्नानुसार है :–

1. सम्पूर्ण बाजार को एक ही मानकर चलाने से बड़े पैमाने पर उत्पादन कार्य किया जा सकता है। इससे निम्नलिखित लाभ होगें –

   A. उत्पाद एवं वितरण लागतों में कमी

   B. परिवहन एवं भण्डारण लागतों में कमी

   C. विज्ञापन एवं संवर्द्धनात्मक खर्चों में कमी

   D. स्टाक लागत में कमी

2. बाजार विभक्तिकरण की कोई आवश्यकता नहीं होती है इससे खर्चो में कमी आती है। इस व्यूह रचना के निम्नलिखित दोष/सीमाएँ है :

   1. किसी संस्था के लिए इस प्रकार के उत्पादों का निर्माण संभव नही है जिनकी सभी को आवश्यकता हो।

   2. भीषण प्रतिस्पर्धा होने से संस्था के लोभों में कमी की आंशका बनी रहती है।

3. सभी उपभोक्ता एक समान नहीं होते है। अतः वे एक ही प्रकार के उत्पाद से संतुष्ट नही हो सकते है।

उपयोगिता :– यह विपणन व्यूह रचना निम्नलिखित स्थितियों में उपयोगी हो सकती है :–

1. जब विपणन व्यूह रचना अल्पावधि वाली हो।

2. जब संस्था आधारभूत आवश्यकताओं वाले उत्पादों का विपणन करती हों।

2. विभेदीकृत विपणन व्यूहरचना (Differentiated Marketing Strategy)

जब कोई संस्था अलग–अलग बाजार खण्ड बनाकर प्रत्येक खण्ड में एक अलग विपणन व्यवस्था करती है तथा प्रत्येक खण्ड के लिए अलग विपणन कार्यक्रम एवं विपणन मिश्रण का निर्माण करती है तो इसे विभेदीकृत विपणन व्यूहरचना कहते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तान यूनिलीवर कम्पनी द्वारा प्रत्येक प्रकार के ग्राहक वर्ग के लिए अलग अलग उत्पाद प्रस्तुत किये है। नहाने के साबुन हर प्रकार के ग्राहक वर्ग के लिए बनाये गये है। कपड़े धोने के पाउडर की अनेक किस्मे है जो हर प्रकार के ग्राहक के लिए है।

विभेदीकृत विपणन व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ/मान्यताएँ निम्नानुसार है–

1 सम्पूर्ण बाजार में भिन्न भिन्न प्रकार के ग्राहक होते है।

2. सभी ग्राहकों की आवश्यकताएं, रूचियां, पंसद एवं नापसंद एक प्रकार की नहीं होती है।

3 प्रत्येक बाजार खण्ड के लिए अलग–अलग विपणन कार्यक्रम तथा विपणन मिश्रण की आवश्यकता है।

4. एक बड़े क्षैत्र का अलग–अलग खण्डों में विभाजन उपयोगी रहता हैं।

5. सभी उत्पादों की किस्म एवं मूल्य स्तर अलग–अलग प्रकार के होगे।

विभेदीकृत विपणन व्यवस्था के प्रमुख लाभ इस प्रकार है :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. यह उपभोक्ता प्रधान व्यूह रचना है।

2. यह उपभोक्ताओ की संतुष्टि पर ध्यान देती है जिससे विक्रय में वृद्धि होती है।

3. विक्रय वृद्धि से लाभों में वृद्धि होती है।

4. लाभों में वृद्धि से संस्था की ख्याति में भी वृद्धि होती है।

विभेदीकृत विपणन व्यवस्था के प्रमुख दोष या सीमाएँ निम्न प्रकार से है :–

1. विपणन लागतों में वृद्धि होती है क्योंकि प्रत्येक खण्ड के लिए एक अलग विपणन कार्यक्रम बनाना होता है।

2. विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन पर बहुत अधिक खर्च करना पड़ता है।

3. विपणन अनुसंधान की आवश्यकता होती है तथा इस पर भारी खर्च करना पड़ता है।

4. अलग–अलग बाजारों में उत्पाद पहुचाने के लिए परिवहन एवं भण्डारण पर भारी व्यय करना पड़ता है।

इस व्यूहरचना की उपयोगिता निम्नलिखित दशाओं में होती है–

1. जब संस्था अनेक प्रकार के उत्पादों का निर्माण करती हो।

2. जब संस्था उपभोक्तान्मुखी विपणन अवधारणा में विश्वास रखती हो।

3. संकेन्द्रित विपणन व्यूहरचना (Concentrated Marketing Strategy)

संकेन्द्रित विपणन व्यूहरचना एक ऐसी विपणन व्यूहरचना है जिसमें एक या कुछ अच्छे बाजार खण्डों में ही सम्पूर्ण विपणन व्यवस्था को केन्द्रित कर दिया जाता है। संस्था सिर्फ कुछ अच्छे बाजार खण्डों में ही अधिकतम विक्रय करने का लक्ष्य निर्धारित करती है तो इस प्रकार की विपणन व्यूहरचना को संकेन्द्रित विपणन व्यूहरचना कहते है।

फिलिप कोटलर के अनुसार – ''एक संस्था बड़े बाजार के छोटे भाग की बजाय एक या कुछ उप–बाजारों के बड़े भाग के लिए प्रयास करती है।''

1. एक या कुछ अच्छे बाजार खण्डों पर ही सम्पूर्ण विपणन शक्ति केन्द्रित की जाती है।

2. सामान्यतः एक ही प्रकार के उपभोक्ताओं के लिए उत्पाद तैयार किये जाते हैं।

3. बाजार खण्डों की आवश्यकता का ज्ञान करने के बाद ही उत्पाद तैयार किये जाते हैं।

संकेन्दित विपणन व्यवस्था के लाभ

संकेन्दितविपणन व्यवस्था के प्रमुख लाभ इस प्रकार है :–

1. संस्था की ख्याति में वृद्धि होती है क्योकि उपभोक्ताओं को संतुष्ट करने के पूर्ण प्रयास किये जाते है।

2. एक ही प्रकार के उत्पाद तैयार करने से उत्पाद एवं वितरण लागतों में कमी आती है।

3. संस्था की प्रतिस्पर्धी स्थिति अच्छी हो जाती है क्योंकि ग्राहकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उत्पाद तैयार किये जाते हैं।

4. लागतों में कमी होने से लाभों में वृद्धि होती है।

संकेन्द्रित विपणन व्यवस्था के दोष –

संकेन्द्रि विपणन व्यवस्था के प्रमुख दोष इस प्रकार है :–

1. बाजार खण्डों के चयन में चूक होने पर माल का विक्रय प्रभावित होता है। फलतः भारी हानि होने की संभावना रहती है।

2. अन्य संस्थाएं भी यदि इस व्यूहरचना को अपना लेती है तो भारी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. बाजार खण्ड की विशेषताओं में अचानक परिवर्तन होने पर भारी हानि की संभावना हो सकती है।

लक्ष्य बाजार व्यूहरचना के चयन को प्रभावित करने वाले घटक (Factos Influencing the Choice of Target Market Stategy)

1. **संस्था का प्रकार** –लक्ष्य बाजार व्यूहरचना के चयन से पूर्व संस्था के आकार–प्रकार पर ध्यान देना आवश्यक होगा। यदि अन्तराष्ट्रीय स्तर की संस्था है तो व्यूहरचना भी उसी स्तर की बनानी होगी। इसके विपरीत राष्ट्रीय स्तर की संस्था के लिए राष्ट्रीय स्तर की व्यूहरचना ठीक रहेगी।

2. **उत्पादों की संख्या** –यदि संस्था एक ही प्रकार के उत्पादों का विपणन करती है तो विभेदविहीन विपणन व्यूहरचना अपना सकती है लेकिन यदि संस्था अनेक प्रकार के उत्पादों का विपणन कार्य करती है तो उसे विभेदात्मक या संकेन्द्रित विपणन व्यवस्था को अपनाना पड़ेगा।

3. **उत्पाद जीवन चक्र की अवस्था** –संस्था द्वारा बनाया जाने वाला उत्पाद अपने जीवन चक्र की अनेक अवस्थाओं से गुजरता है। उत्पाद की प्रवेश अवस्था में विक्रय कम होता है तो संस्थाएँ प्रायः विभेदविहीन विपणन व्यवस्था अपनाती है। जबकि उत्पाद के विकास एवं परिपक्वता की अवस्था में उत्पाद का विक्रय बढ़ जाता है तथा उत्पाद के अनेक प्रकार हो जाते है ऐसी अवस्था में विभेदात्मक विपणन व्यूहरचना अपनाने की आवश्यकता पड़ती है।

4. **प्रतिस्पर्धीयों की व्यूहरचनाएँ** –प्रतिस्पर्धीयों द्वारा अपनाई जाने वाली व्यूहरचना संस्था की व्यूहरचना के चयन पर प्रभाव डालती है। अतः विपणन प्रबंधक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिस्पर्धीयों द्वारा जो व्यूहरचनाएँ अपनाई गई है उसी के अनुरूप जबाबी कार्यवाही की जानी चाहिए।

5. **संस्था के संसाधन** –जिस संस्था के पास प्रर्याप्त संसाधन है वह कोई भी विपणन व्यूहरचना चुन सकती है लेकिन जिन संस्थाओं के पास संसाधनों की कमी है उसे बाजार विभक्तिकरण वाली व्यूह रचना पर अपना ध्यान संकेन्द्रित रखना होगा तथा एक ही या कुछ बाजार खण्डों को आधार बना कर विपणन कार्य करना होगा।

6. **सरकारी नियम एवं नीत्तियॉ** –विपणन व्यूहरचना एवं लक्ष्य बाजार के चयन को सरकारी नियम एवं नीतियॉ भी प्रभावित करती है। बाजार खण्डों में सरकारी करों की दर अलग अलग हो सकती है इससे बाजार खण्डों में संस्था की लाभप्रदता प्रभावित हो सकती है।

7. **सामाजिक संवेदनशीलता** –विपणनकर्ता में सामाजिक संवेदनशीलता भी होनी चाहिए। संस्था को समाज के प्रति अपने दायित्वों का बोध होना चाहिए। विपणन व्यूहरचना का चयन करते समय संस्था को सामाजिक दायित्व का ध्यान रखना चाहिए।

<u>अभ्यास के लिए प्रश्न –</u>

लघुत्तरात्मक प्रश्न :

1. बाजार विभक्तिकरण की परिभाषा दीजिये ?
2. बाजार विभक्तिकरण की मान्यताएँ लिखें ?
3. बाजार विभक्तिकरण के उदेश्य लिखें ?
4. बाजार विभक्तिकरण की विशेषताएँ लिखें ?
5. बाजार विभक्तिकरण के माहत्व का वर्णन करें ?
6. बाजार विभक्तिकरण के आधारों का वर्णन किजिये ?
7. बाजार विभक्तिकरण की व्यूह रचनाओं के नाम लिखें ?
8. विभेदविहीन विपणन व्यूह रचना क्या है ?
9. विभेदीकृत विपणन व्यूह रचना क्या है ?
10. संकेन्द्रीकृत विपणन व्यूह रचना क्या है ?

निम्बधात्मक प्रश्न :

1. बाजार विभक्तिकरण से आप क्या समझते है बाजार विभक्तिकरण की मान्यताओं का वर्णन कीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. बाजार विभक्तिकरण की आवश्यकता एवं महत्व का वर्णन कीजिये।
3. बाजार विभक्तिकरण की व्यूह रचनाओ का वर्णन कीजिये।

उपभोक्ता व्यवहार
Consumer Behaviour

परिचय Introduction

विश्व की समस्त विपणन क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु उपभोक्ता है। आज विपणन के क्षैत्र में जो कुछ भी किया जा रहा है उसके केन्द्र में कही न कही उपभोक्ता विद्यमान है। इसलिए उपभोक्ता को बाजार का राजा या बाजार का मालिक कहा गया है। सभी विपणन संस्थाएँ उपभोक्ता की आवश्यकताओं इच्छाओं, उसकी पंसद एवं नापंसद आदि पर पर्याप्त ध्यान देने लगी है। इतना ही नहीं विपणनकर्ता उपभोक्ता के व्यवहार को जानने एवं समझने में लगे हुए है। उपभोक्ता व्यवहार से आशय उपभोक्ता की उन क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं से है जो वह किसी उत्पाद को क्रय करने एवं उपयोग के दौरान उससे पहले या बाद में करता है। उपभोक्ता व्यवहार की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित है :–

उपभोक्ता व्यवहारः अर्थ एवं परिभाषाएँ
Consumer Behavior : Meaning and Definitions

वाल्टर तथा पॉल के अनुसार–''उपभोक्ता व्यवहार वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत लोग यह निर्णय लेते है कि कौन सा माल तथा सेवाएँ कब, कहॉ से, किस प्रकार तथा किससे खरीदनी है अथवा नहीं।''

कुर्ज तथा बून के अनुसार –''''उपभोक्ता व्यवहार में लोगों की वे क्रियाएं सम्मिलित है जो वे माल तथा सेवाओं को प्राप्त करने एवं उनका उपयोग करने हेतु करते है तथा इनमें वे निर्णयन प्रक्रियाएँ भी सम्मिलित है जो उन क्रियाओं को निर्धारित करने तथा निर्धारित करने से पहले की जाती है।''

वेबस्टर के अनुसार –''क्रेता व्यवहार भावी ग्राहकों का वह सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा शारीरिक व्यवहार है जो वे उत्पादों तथा सेवाओं से अवगत होने, उनका मूल्यांकन करने, क्रय करने, उपभोग करने तथा उनके बारे में दूसरों को बताने में करते हैं। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि उपभोक्ता व्यवहार उपभोक्ताओं का वह व्यवहार है जो वे किसी उत्पाद या सेवा के क्रय या उपयोग से पुर्व, पश्चात एवं क्रय निर्णय प्रकिया के दौरान करते हैं।

उपभोक्ता व्यवहार की विशेषताएँ/प्रकृति
Characteristics/Nature of Consumer Behaviour

उपभोक्ता व्यवहार की विशेषताओं एवं उसकी प्रकृति का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है।:–

1. **क्रय निर्णयन प्रक्रिया** –कुर्ज तथा बून के अनुसार ''एक व्यक्ति का क्रय व्यवहार उसकी सम्पूर्ण क्रय निर्णयन प्रक्रिया है न कि केवल क्रय प्रक्रिया का एक चरण। '' इस कथन से स्पष्ट है कि उपभोक्ता व्यवहार एक उपभोक्ता के क्रय व्यवहार की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वह किसी उत्पाद या सेवा को क्रय करने का निर्णय लेता है।

2. **प्रगटीकरण** –एक उपभोक्ता के व्यवहार का प्रगटीकरण उसकी उन क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं से होता है जिनको वह किसी उत्पाद या सेवा के क्रय पूर्व, पश्चात या क्रय करने के दौरान करता है।

3. **परिवर्तनशील** –उपभोक्ता व्यवहार परिवर्तनशील होता है उपभोक्ता व्यवहार में परिवर्तन के अनेक कारण होते है। उपभोक्ता विभिन्न श्रोतों से सूचनाएं एवं जानकारी प्राप्त करता है। इसके अलावा उपभोक्ता की आयु, आय तथा वातावरण में परिवर्तन होने पर उसके क्रय व्यवहार में परिवर्तन होता है। अतः यह कहा जा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सकता है कि उपभोक्ता व्यवहार परिवर्तनशील है।

4. **व्यवहार में भिन्नता** –सभी उपभोक्ता एक प्रकार के नहीं होते हैं। उनकी आवश्यकताएँ दूसरों से भिन्न होती है तथा वे परिस्थितियॉ जिनमें उपभोक्ता जीवन यापन करता है दूसरों से भिन्न होती है। उपभोक्ता की आय, आयु, व्यवसाय व पैशा आदि में भी भिन्नता होती है अतः उपभोक्ता व्यवहार में भिन्नता पाई जाती है।

5. **एक व्यापक शब्द** –उपभोक्ता व्यवहार एक व्यापक शब्द है। जिसमें घरेलू उपभोक्ताओं के साथ–साथ संस्थागत एवं औद्योगिक उपभोक्ताओं का व्यवहार भी सम्मिलित हैं घरेलू उपभोक्ता वह उपभोक्ता है जो अपने स्वयं के या परिवार के उपभोग हेतु उत्पादों को क्रय करता है जबकि औद्योगिक एवं संस्थागत उपभोक्ता वे उपभोक्ता है जो पुनः उत्पादन या पुनः विक्रय हेतु उत्पादों को क्रय करतें है। अतः उपभोक्ता व्यवहार में सभी प्रकार के उपभोक्ताओं का व्यवहार सम्मिलित है।

6. **समझने में कठिनाई** –उपभोक्ता व्यवहार एक जटिल पहेली है। उपभोक्ता किन परिस्थितियेां में कैसा व्यवहार करेगा इसकी पूर्व जानकारी करना या पता लगाना बहुत कठिन है। उपभोक्ता की अनेक आवश्यकताएँ होती है। अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं का उपभोक्ता द्वारा प्रगटीकरण हो भी सकता है और नहीं भी। कई उपभोक्ता शर्मीले स्वभाव के होते है उनके बारे में जानकारी प्राप्त करना बहुत कठिन कार्य होता है।

7. **उपभोक्ता व्यवहार अध्ययन एवं विश्लेषण** –उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन एवं विश्लेषण करने के बाद क्रय व्यवहार सम्बंधी कई प्रश्नों या समस्याओं को जाना एवं समझा जा सकता है। उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन एवं विश्लेषण कर निम्न प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये जा सकते है :–

    1. वह किन उत्पादों को क्रय करना चाहता है उत्पाद का ब्रान्ड नाम एवं उत्पादक कौन है।
    2. वह उन उत्पादों को क्यो क्रय करना चाहता है तथा उन उत्पादों से उसे किस प्रकार की संतुष्टि प्राप्त होती है।
    3. वह उन का क्रय किस प्रकार करना चाहता है।
    4. उत्पादों का क्रय कहॉ से करना चाहता है फुटकर व्यापारी, माल या डिपार्टमेन्टल स्टोर से।
    5. उत्पादों का क्रय कब करना चाहता है ? किसी भी समय या निश्चित अवसरों पर ?
    6. वह उनका क्रय किन से करना चाहता है।

8. **संतुष्टि की व्याख्या**–उपभोक्ता व्यवहार क्रेता या उपभोक्ता की संतुष्टि की व्याख्या करता है। यदि उत्पाद के उपभोग से उसे संतुष्टि प्राप्त होती है तो वह पुनः उसी उत्पाद को खरीदने का प्रयास करता है। यदि उत्पाद का उपभोग करने के पश्चात उसे असंतुष्टि का अनुभव होता है। तो वह उस उत्पाद को पुनः क्रय नहीं करने का निर्णय लेता है।

उपभोक्ता व्यवहार को प्रभावित करने वाले घटक
Factors Influencing Consumer Behaviour

उपभोक्ता व्यवहार अनेक घटकों द्वारा प्रभावित होता है। उपभोक्ता अनेक कारणों या बातों को ध्यान में रखकर क्रय निर्णय लेता है। उपभोक्ता व्यवहार के घटकों को निम्नलिखित भागों में बांटकर अध्ययन किया जा सकता है।

(I) व्यक्तिगत घटक

(II) आर्थिक घटक

(III) मनोवैज्ञानिक घटक

(IV) सांस्कृतिक घटक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(V) सामाजिक घटक

(VI) अन्य घटक

उपरोक्त घटकों का वर्णन निम्नानुसार हैः–

I व्यक्तिगत घटक Personal Factors

उपभोक्ता के व्यक्तिगत जीवन के अनेक पहलू होते हैं। ये सभी पहलू उपभोक्ता व्यवहार को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करते है। ऐसे घटकों/पहलूओं में से प्रमुख निम्नानुसार है–

1. आयु– उपभोक्ता की आयु उसके क्रय निर्णय को प्रभावित करने वाला बहुत बड़ा घटक है। जैसा कि हम जानते है कि बाल्यकाल, किशोर अवस्था, युवा अवस्था एवं वृद्धावस्था ये चार प्रमुख आयु अवस्थाएँ हैं। प्रत्येक उपभोक्ता अपनी आयु एवं अवस्था के हिसाब से क्रय निर्णय करता है।

2. आवश्यकता– प्रत्येक उपभोक्ता दूसरे से भिन्न होता है तथा उसकी आवश्यकताएँ दूसरे से भिन्न होती है। उपभोक्ता अपनी आवश्यकताओं का निर्धारण करता है एवं उन आवश्यकताओं के अनुसार क्रय निर्णय लेता है।

3. जीवन शैली– उपभोक्ता की जीवन शैली उसके क्रय व्यवहार को प्रभावित करती है। उपभोक्ता की जीवन शैली उसकी आधारभूत आवश्यकताएँ, आराम की आवश्यकताएँ तथा विलासिता की आवश्यकताएँ तय करती है।

4. व्यवसाय या धंधा– उपभोक्ता का व्यवसाय या धंधा उसके क्रय व्यवहार को प्रभावित करता है एक सामान्य वेतन भोगी कर्मचारी, उच्च अधिकारी, पैशेवर व्यक्ति एवं व्यवसायी अलग–अलग परिस्थितियों में अलग अलग क्रय व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं।

5. लिंग– उपभोक्ता व्यवहार पुरूषों एवं महिलाओं में भिन्न भिन्न प्रकार का पाया जाता है। पुरूषों एवं महिलाओं की आवश्यकताएँ, विचार एवं मनोवृतियाँ तथा प्रवृतिया अलग अलग होती है अतः उत्पाद क्रय व्यवहार लिंगानुसार प्रभावित होता है।

6. व्यक्तित्व– प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अलग अलग प्रकार का होता है। अतः उसका क्रय व्यवहार उसके व्यक्तित्व के अनुरूप ही होता है। सामान्यतया सभी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से मेल खाने वाली वस्तुओं को ही क्रय करते है।

7. स्वधारणा– प्रत्येक व्यक्ति की अपने स्वंय के प्रति एक धारणा होती है तथा व्यक्ति अपनी उस धारणा के अनुरूप ही क्रय व्यवहार करता है। व्यक्ति समाज में अपनी छवि बनाना चाहता है तथा उसे सुधारना भी चाहता है। अतः अपनी स्वधारणा के अनुसार उत्पादों को क्रय करता है।

II आर्थिक घटक

उपभोक्ता व्यवहार को प्रभावित करने वाले घटकों में आर्थिक घटक अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। प्रमुख आर्थिक घटकों का वर्णन निम्नानुसार किया जा रहा है :–

1. आय – कोई भी उपभोक्ता अपनी आय के अनुसार ही क्रय निर्णय लेता है अतः आर्थिक घटकों में आय का महत्वपूर्ण स्थान है। आय को निम्न तीन श्रेणीयों में विभाजित किया जा सकता है :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्यक्तिगत आय –व्यक्तिगत आय से आशय व्यक्ति की स्वयं की आय से लगाया जाता है। व्यक्तिगत आय में कमी एवं वृद्धि उपभोक्ता की क्रय शक्ति को प्रभावित करती है।

पारिवारिक आय –जब उपभोक्ता संयुक्त परिवार का सदस्य होता है तो आय से आशय उसकी पारिवारिक आय से लिया जाता है। पारिवारिक आय में वृद्धि होने पर क्रय शक्ति में वृद्धि हो जाती है, तथा खर्च के लिए अधिक धन राशि उपलब्ध हो जाती है इसके विपरीत पारिवारिक आय में कमी होने पर क्रय शक्ति मे कमी हो जाती है। तथा खर्च के लिए कम धन राशि उपलब्ध हो पाती है।

भावी आय की संभावना –भावी आय में वृद्धि होने की संभावना भी उपभोक्ता की क्रय शक्ति में वृद्धि कर देती है। भविष्य में आय बढ़ने की संभावना होने पर लोग अधिक खर्च करते है तथा बचत पर कम ध्यान देते है।यदि भविष्य में आय में कमी होने की संभावना होती हो तो लोग कम खर्च करते है तथा बचत की और ज्यादा ध्यान देते है।

2. साख सुविधाएँ –यदि उपभोक्ता को साख सुविधाएँ उपलब्ध है अर्थात उत्पाद उधार या किराया क्रय प्रद्धति पर उपलब्ध हो जाता है तो उपभोक्ता उस उत्पाद के क्रय के लिए सकारात्मक रूख अपना लेता है इसके विपरीत यदि साख सुविधाएँ उपलब्ध नही है तो उपभोक्ता अपने साधनों की ओर देखकर ही क्रय निर्णय लेता है।

3. तरल सम्पतियॉ –तरल सम्पतियों से आशय ऐसी सम्पतियों से लिया जाता है जो बहुत शीघ्र नगदी में परिवर्तित की जा सकती है। उदाहरण के लिए अंश, ऋणपत्र, बैंक में जमाराशि आदि। तरल सम्पतियॉ क्रेता के व्यवहार को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है क्योंकि क्रेता इनके आधार पर तुरन्त क्रय करने का निर्णय ले सकता है।

4. मूल्यस्तर –बाजार में वस्तुओं का मूल्य स्तर भी क्रेता के क्रय व्यवहार को प्रभावित करता है। वस्तुओं का मूल्य अधिक होने पर उपभोक्ता कम मात्रा में वस्तु क्रय करता है या क्रय निर्णय को कुछ समय के लिए टाल देता है। इसके विपरीत स्थिति में जब मूल्य स्तर में कमी आती है तो क्रेता तुरन्त क्रय निर्णय लेता है तथा अधिक मात्रा में भी उत्पाद का क्रय कर सकता है या क्रय कर लेता है।

III सामाजिक घटक

उपभोक्ता समाज का ही एक अंग है। समाज में रहकर प्रत्येक उपभोक्ता पलता है एवं बड़ा होता है। अतः सामाजिक घटक भी उसके क्रय व्यवहार को प्रभावित करते है। प्रमुख सामाजिक घटक निम्नानुसार है–

1. **परिवार** – परिवार में अनेक सदस्य होते है उनमें प्रत्येक सदस्य का क्रय निर्णय अलग होता है तथा परिवार के एक सदस्य का क्रय निर्णय दूसरे सदस्य के क्रय निर्णय को प्रभावित करता है। परिवार के सदस्य अनेक भूमिकाओं में होते है जैसे माता–पिता, पुत्र–पुत्री, पति–पत्नि आदि की भूमिकाएँ। इनका क्रय निर्णय इनकी अपनी भूमिका के अनुसार प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त परिवार के सदस्यों की आयु, उनकी जीवन–चक्र अवस्था भी क्रय निर्णय को प्रभावित करती है। बचपन में परिवार के सदस्य बड़ों द्वारा अपनाई गई क्रय निर्णय व्यवस्था से प्रभावित होते है लेकिन कभी कभी बच्चे भी अपनी पसंद, आवश्यकता एवं रूचि बताकर बड़ों के क्रय व्यवहार को प्रभाावित कर देते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि परिवार का वातावरण क्रय व्यवहार को प्रभावित करता है।

2- **सम्पर्क समूह** – एक उपभोक्ता सिर्फ अपने परिवार के सम्पर्क में ही नहीं आता है। वरन अन्य लोगों के सम्पर्क में भी आता है। इनमें मित्र, रिस्तेदार, धार्मिक एवं सामाजिक समूह, क्लब तथा सामाजिक संस्थाएँ प्रमुख है। ये सम्पर्क समूह उपभोक्ता के क्रय निर्णय को गम्भीर रूप से प्रभावित करते है। लोगों में आपसी देखा–रेखी, एक दुसरे से होड़ करना इसके जीते जागते उदाहरण है। इन सब कारणों से उपभोक्ताओं के खर्च में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। अतः विपणनकर्ता को सम्पर्क समूहों का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए क्योंकि ये सम्पर्क समूह उपभोक्ता के क्रय निर्णय को प्रभावित करने की स्थिति में होते है।

3- **प्रभावित करने वाले व्यक्ति** – कुछ लोग हमेशा दूसरे लोगों के निर्णयों को प्रभावित करने की स्थिति में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होते है। दूसरे शब्दों में कुछ ऐसे लोग होते है जिनकी राय क्रेता या उपभोक्ता के लिए महत्व रखती है। एक व्यक्ति जिससे प्रभावित होता है उसकी रूचि, पंसद या नापसंद को अपना लेता है तथा उसी के अनुसार क्रय निर्णय लेना पसंद करता है।

4- **सामाजिक वर्ग** – प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक वर्ग एवं उसका जातीय वर्ग उसके क्रय व्यवहार को प्रभावित करता है। समाज के प्रत्येक वर्ग का रहन–सहन, खान–पान दूसरे वर्ग के लोगों से अलग होता है। उपभोक्ता अपने समाज के बनाये रिवाजों के अनुसार खर्च करता है या क्रय व्यवहार करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लोगों का सामाजिक वर्ग एवं जातीय वर्ग उनके क्रय व्यवहार को प्रभावित करता है।

IV मनोवैज्ञानिक घटक – उपभोक्ता का क्रय व्यवहार अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक घटकों से प्रभावित होता है। मनोवैज्ञानिक घटकों में प्रमुख घटक इस प्रकार हैः–

1. **अवबोधन** – जब एक व्यक्ति अपनी ज्ञानेन्दियों की सहायता से किसी वस्तु, सेवा, घटना, या विचार मे सम्बंध में कोई धारणा बनाता है या कोई निष्कर्ष निकालता है या किसी निर्णय पर पहुचता है तो उसे अवबोधन कहते है। अवबोधन की प्रक्रिया के द्वारा ही कोई उपभोक्ता किसी उत्पाद या सेवा के बारे में अपनी धारणा बनाता है। क्रेता किसी उत्पाद या सेवा के बारे मे जिस प्रकार की धारणा बनाता है ठीक उसी प्रकार की विशेषताएँ उत्पाद में होनी चाहिए ताकि क्रेता उस उत्पाद या सेवा को क्रय करने के बाद संतुष्टि का अनुभव कर सके।

2. **अनुभव द्वारा सीखना** – क्रेता व्यवहार का दुसरा महत्वपूर्ण घटक है अनुभव द्वारा ज्ञानार्जन अथवा सीखना। उपभोक्ता या क्रेता अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन में अनेक बाते सीखता है तथा अभ्यास और अनुभव से ज्ञान प्राप्त करता है। धीरे–धीरे उसका यह व्यवहार उसकी आदत में आ जाता है। उदाहरण के लिए एक क्रेता जब किसी विशेष ब्रान्ड के उत्पाद को क्रय करता है और वह उत्पाद बार–बार खराब हो जाता है। ऐसे अनुभव के बाद क्रेता के मन मे उस विशेष ब्रान्ड के उत्पाद के प्रति धारणा खराब हो जाती है। क्रेता भविष्य में इस प्रकार के उत्पादों को क्रय करना पसंद नही करता है।

3. **छवि (Image)**– एक क्रेता के मस्तिष्क में किसी उत्पाद या सेवा के बारे में जो छाप होती है उसे छवि कहते है। उदाहरण के लिए एक क्रेता की सोच में मंहगे उत्पाद ही अच्छे होते है, ब्रान्डेड वस्तुओं का कोई मुकाबला नही इस प्रकार की बाते आ जाती है तो क्रेता अपनी सोच के अनुसार ही उत्पादों को क्रय करना पसंद करेगा। विपणनकर्ता को चाहिए कि क्रेता के मस्तिष्क में उत्पाद के बारे में जो सकारात्मक छवि बनी है उसे बनाये रखने में मदद करे अर्थात उत्पादों का स्तर उसके ब्रान्ड नाम के अनुरूप बनाये रखे।

4. **अभिप्रेरणा या प्रेरक तत्व (Motivation or Motives)**

उपभोक्ता किसी न किसी कारण से प्रेरित होकर किसी उत्पाद को क्रय करने का निर्णय लेता है। क्रेता की यही क्रय प्रेरणा उस उत्पाद को क्रय करने का कारण बनती है।

हम यह जानते है कि प्रत्येक व्यक्ति की अनेक इच्छाएँ एवं आवश्यकताएँ होती है। जब व्यक्ति इन इच्छाओं को पूरा करने की कोशिश करता है तो यही इच्छाएँ उसकी क्रय प्रेरणा बन जाती है। इसके पश्चात वह उस क्रय–प्रेरणा के प्रति जो प्रति क्रिया करता है। वही उसका उसका क्रय व्यवहार होता है।

अब्राइम मास्लों **(Abraham Maslow)** ने व्यक्तियों की आवश्यकताओं को समझकर आवश्यकताओं का एक क्रम तैयार किया है जो इस प्रकार हैः–

I. शारीरिक आवश्यकताएँ– रोटी, कपड़ा, मकान आदि व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताएँ होती है और एक व्यक्ति इन आवश्यकताओं को सबसे पहले पूरा करना चाहता है।

II. **सुरक्षा** आवश्यकताएँ– शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के बाद सुरक्षा की आवश्यकताएँ आती है। व्यक्ति खतरों एवं आकस्मिक घटनाओं से सुरक्षा चाहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

III. सामाजिक आवश्यकताएँ– शारीरिक एवं सुरक्षा सम्बंधी आवश्यकताओं की संतुष्टि के बाद सामाजिक आवश्यकताएँ आती है। व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से प्रेम, स्नैह, अपनत्व और सहानुभूति चाहता है। सामाजिक समूहों में भागीदारी चाहता है।

IV. अहंकारी या आत्मसम्मान की आवश्यकताएँ– जब उपरोक्त तीनो आवश्यकताओं की संतुष्टि हो जाती है तो व्यक्ति में आत्मसम्मान या अंहाकार जागृत होता है। व्यक्ति अधिकार सत्ता, ऊंचा पद या स्वायतता प्राप्त करना चहता है। सामान्य व्यक्तियों की भीड़ से अलग दिखना चाहता है।

V. आत्मविकास की आवश्यकताएँ– आवश्यकताओं के क्रम में सर्वोच्चय शिखर पर आत्मविश्वास की आवश्यकता आती है। व्यक्ति अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग करना चाहता है तथा वह जो कुछ बन सकता है, बनना चाहता है।

मैस्लों का मानना है कि जब एक स्तर की आवश्यकता पुरी हो जाती है तो अलग स्तर की आवश्यकताओं का जन्म होता है। परिणामस्वरूप अगले स्तर की आवश्यकताएँ क्रय प्रेरणाएँ उत्पन्न करती है।

VI सांस्कृतिक घटक–किसी समाज के आचरण एवं व्यवहार को नियमन करने वाले घटकों को हम सांस्कृतिक घटकों की श्रेणी में लेते है। इसमें समाज के रीति–रिवाज, आस्थाएँ, एवं धारणाएँ आदि सम्मिलित की जाती हैं। समाज के सदस्य अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त इन रीतिरिवाजों, आस्थाओं एवं धारणाओं का पालन करते रहते है। समाज के सदस्यों का रहन–सहन, खानपान, पहनावा, आचरण आदि इन सांस्कृतिक घटकों से प्रभावित होता रहता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि क्रेता का क्रय व्यवहार इन सांस्कृतिक घटकों से प्रभावित होता रहता है।

VII. अन्य – क्रेता का क्रय व्यवहार कुछ अन्य घटकों से भी प्रभावित होता है जिसमें सूचना एवं जानकारी एक प्रमुख घटक है। जब क्रेता प्रर्याप्त सूचना एवं जानकारी रखता है तो उस सूचना एवं जानकारी से उसका क्रय व्यवहार प्रभावित होता है। जिस ग्राहक की सूचना एवं जानकारी का स्तर ऊंचा होता है उसे भ्रमित करना काफी कठिन होता है। विपणन कर्ता को चाहिए कि ऐसे ग्राहकों को प्रर्याप्त जानकारी देकर ही क्रय हेतु प्रेरित करें। जिन ग्राहकों को प्रर्याप्त जानकारी नहीं है उन्हें अन्य लोग सुझाव व सलाह देते हैं जिसके आधार पर वे क्रय निर्णय लेते हैं। सूचना एवं जानकारी घटक में निम्नलिखित घटकों का अध्ययन किया जा सकता है :–

1. **सूचना के विभिन्न माध्यम**– विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन, प्रचार एवं जनसम्पर्क के साधन
2. **ग्राहक के ज्ञान का स्तर**
3. **अन्य क्रेताओं द्वारा दिये गये सुझाव एवं सलाह**
4. **ग्राहकों की सुझ बूझ बढ़ाने के उपाय**

उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन का महत्व
Importance of Studying Consumer Behaviour

उपभोक्ता व्यवहार को समझना विपणनकर्ताओं के लिए अति आवश्यक है। क्योकि उपभोक्ता व्यवहार को समझने के बाद ही उत्पादन नियोजन एवं विपणन कार्यक्रम सफलता पूर्वक लागू किये जा सकते है। उपभोक्ता व्यवहार को समझे बिना विपणन कार्यो को ग्राहकोन्मुखी नहीं बनाया जा सकता है। कुर्ज एवं बून के अनुसार–''विपणन अवधारणा को सही रूप से लागू करने के लिए उपभोक्ता एवं उसके व्यवहार को समझना अतिआवश्यक है।'' अतः विपणन प्रबंधकों के लिए उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन अतिआवश्यक हो गया है। संक्षेप में, उपभोक्ता व्यवहार अध्ययन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणो से हैः–

1. उपभोक्ता व्यवहार एवं परिवर्तनों की जानकारी–जब एक उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन कर लिया जाता है तो विपणन प्रबंधक या विपर्णन कर्ता को इस बात की जानकारी हो जाती है कि किन कारणो से प्रेरित होकर एक उपभोक्ता किसी वस्तु को क्रय करता है तथा वे कौनसे कारक है जिनके कारण एक उपभोक्ता की उत्पाद क्रय की रूचि नही रहती है। उपभोक्ता व्यवहार निरन्तर परिवर्तन का विषय है अतः उपभोक्ता व्यवहार एवं उसमें हाने वाले परिवर्तनों का ध्यान रखकर बनाये गये विपणन कार्यक्रम अधिक प्रभावी होंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. अप्रगट एवं छिपी हुई इच्छाओं की जानकारी—उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन से विपणन प्रबंधक उपभोक्ता की छिपी हुई या अप्रगट इच्छाओं की जानकारी कर उसमें छिपे विपणन अवसरों का ज्ञानकर सकता है। विपणन अवसरों की जानकारी होने के बाद उसी के अनुरूप विपणन कार्यक्रम निर्धारित किये जा सकते हैं।

3. क्रय निर्णायक की भूमिका का पता लगाना—किसी संस्था या परिवार में क्रय निर्णय को कौन प्रभावित करता है या क्रय निर्णायक कौन है इस बात की जानकारी उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन से मिल सकती है। इस बात की जानकारी विपणन प्रबंधकों के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि क्रय निर्णायक की व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप विपणन कार्यक्रम बनाये जा सकते है एवं विपणन कार्य में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

4. विपणन पूर्वानुमान करना—उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन कर एक विपणन कर्ता आसानी से विपणन पूर्वानुमान लगा सकता है। विपणन पूर्वानुमान के आधार पर विपणन कार्यक्रम बनाये जा सकते है एवं विपणन कार्य किया जा सकता है।

5 उपभोक्ता की प्रतिक्रियाओं का पता लगाना—उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन इसलिए भी आवश्यक है कि इसमें किसी उत्पाद के प्रति उपभोक्ताओं की प्रतिक्रियाओं की जानकारी मिल सकती है। उपभोक्ता प्रतिक्रिया सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनो ही प्रकार की हो सकती है। नकारात्मक प्रतिक्रियाओं की स्थिति में उत्पाद की कमियों का पता लगाया जा सकता है तथा उसी के अनुरूप उत्पाद में सुधार किया जा सकता है।

6. मूल्यनिर्धारण में सहायक—किसी उत्पाद का मूल्य उत्पाद लागत के साथ साथ उपभोक्ता व्यवहार से भी प्रभावित होता है। किसी उत्पाद के मूल्य को निर्धारित करते समय उपभोक्ता की मूल्य चुकाने की इच्छा एवं उपभाक्ता की क्रय शक्ति का भी विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है।

7. मध्यस्थों की नियुक्ति में सहायक—उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन इस बात को जानने में मदद करता है कि उपभोक्ता किसी उत्पाद को किससे एवं क्यो खरीदना चाहता है। उपभोक्ता की क्रय आदतों को ध्यान में रखते हुए फुटकर व्यापारी, थोक व्यापारी एवं अन्य मध्यस्थों की नियुक्ति की जा सकती है।

8. विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन में सहायक—उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन विज्ञापन के साधनों का चुनाव करने में सहयोग प्रदान करता है। उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन से यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि उपभोक्ता विज्ञापन के किस साधन से सर्वाधिक प्रभावित होता है। उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन से प्राप्त निष्कार्षों के आधार पर विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन के साधनों का चुनाव किया जा सकता है।

9. उत्पाद विकास एवं नियोजन—किसी उत्पाद का विकास एवं नियोजन कार्य उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है। किसी उत्पाद की डिजाइन, रंग, रूप, किस्म, आकार आदि का निर्धारण उपभोक्ता के क्रय व्यवहार को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

10. सामाजिक दायित्वों की पूर्ति—उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन उपभोक्ता की अपेक्षाओं को जानने में मददगार हो सकता है। उपभोक्ता की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए सामाजिक दायित्वों की पूर्ति सहज रूप में की जा सकती है।

अभ्यास के लिए प्रश्न :

लधुत्तरात्मक प्रश्न :

1. उपभोक्ता व्यवहार की परिभाषा दीजिये ?
2. उपभोक्ता व्यवहार की विशेषताएँ लिखिये ?
3. उपभोक्ता व्यवहार को प्रभावित करने वाले घटकों के नाम लिखिये ?
4. प्रमुख व्यक्तिगत घटकों के नाम लिखिये ?
5. प्रमुख आर्थिक घटकों के नाम लिखिये ?
6. प्रमुख सामाजिक घटकों के नाम लिखिये ?
7. प्रमुख व्यक्तिगत घटकों के नाम लिखिये ?
8. प्रमुख सांस्कृतिक घटकों के नाम लिखिये ?

निम्बधात्मक प्रश्न :

1. उपभोक्ता व्यवहार की परिभाषा दीजिये तथा उपभोक्ता व्यवहार की प्रकृति का वर्णन कीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. उपभोक्ता व्यवहार को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन कीजिये।
3. उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन का क्या महत्व है ? वर्णन कीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

SECTION – B

उत्पाद [Product]

उत्पाद की अवधारणा [Concept of Product]

विपणन सम्बन्धी समस्त क्रियाओं का आधार एवं केन्द्र बिन्दु 'उत्पाद' है और उत्पाद से ही समस्त विपणन क्रियाएँ प्रारम्भ होती है। प्रत्येक विपणन क्रिया का अन्तिम उद्देश्य उपभोक्ताओं को सन्तुष्टि प्रदान करने वाले उत्पादों का प्रभावकारी तरीके से विपणन करना है।

सामान्य अर्थ में, उत्पाद से तात्पर्य उन सभी वस्तुओं एवं सेवाओं से है, जिनसे उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि होती हैं। किन्तु विस्तृत अर्थ में उत्पादन का आशय उन सदृश्य, भौतिक एवं रासायनिक लक्षणों से है जो आसानी से पहचान में आने वाली आकृति, आकार, परिमाण आदि में संग्रहित हो, जैसे साबुन, जूते, टूथपेस्ट, डिटर्जेन्ट पाउडर क्रिकेट बेट आदि।

विपणन की दृश्टि से उत्पाद शब्द अधिक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक ब्राण्ड एक अलग उत्पाद है, जैसे टाईड सर्फ व निरमा दोनों डिरर्जेन्ट पाउडर पृथक–पृथक उत्पाद कहलायेगें। जबकि साधारण अर्थ में दोनों एक ही उत्पाद कहलोयेगें। इसी प्रकार यदि एक ही ब्राण्ड के अलग अलग आकार के पैकिंग बना दिये जाये तो वे भी अलग अलग उत्पाद होगें, जैसे एंकर, टूथपेस्ट तीन आकारों में उपलब्ध है छोटा, मध्यम, बड़ा आकार ये तीन अलग अलग वस्तुएँ कहलायेगी। यदि वस्तु के आकार के अतिरिक्त रंग, पैंकिग एवं डिजायन आदि में परिवर्तन है तो प्रत्येक अलग अलग वस्तु बन जाती है। **अतः विपणन में उत्पाद का आ□ाय उन वस्तुओं एवं सेवाओं से जो दृ□य या अदृ□य हो, किसी भी आकार गुण या मात्रा में हो, जिनकों उपभोक्ता अपनी आव□यकतओं को सन्तुश्ट करने के लिये प्रयोग करते है।**

इस प्रकार, उपभोक्ताओं के लिये उत्पाद उपयोगिताओं, लाभों या सुविधाओं का पुलिन्दा है। जबकि विपणनकर्ताओं के लिये उत्पाद उन गुणों एवं विशेषताओं का पुलिन्दा है जिनसे उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार एक सामान्य व्यक्ति भी अपनी सोच एवं समझ के अनुसार उत्पाद की अवधारणा बना लेते है। **किन्तु समग्र एवं व्यापक दृश्टिकोण से उत्पाद की अवधारणा के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उत्पाद मूर्त तथा अमूर्त गुणों, लक्षणों से युक्त वह कोई भी चीज है, जिसे ग्राहकों की आव□यकताओं की सन्तुश्टी के लिये बाजार में विक्रय हेतु प्रस्तुत किया जाता है।**

परिभाशाएँ –

एल्डरसन के अनुसार, ''उत्पाद उपयोगिताओं की एक गठरी है जिसमें उत्पाद के विभिन्न लक्षण एवं उसके साथ दी जाने वाली सेवाएँ सम्मिलित हैं।''

आर.एस. डावर के अनुसार ''विपणन के दृष्टिकोण से उत्पाद को उन सुविधाओं का पुलिन्दा कहा जा सकता है, जो कि उपभोक्ताओं को प्रस्तुत किया जाता है।''

विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार, ''उत्पाद दृश्य एवं अदृश्य विशेषताओं का एक सम्मिश्रण है जिसके अन्तर्गत पैकेजिंग, रंग, मूल्य, निर्माता की ख्याति, फुटकर विक्रेता की ख्याति तथा निर्माता एवं फुटकर विक्रेता द्वारा दी जाने वाली वे सेवाएँ भी सम्मिलित है, जिन्हें उपभोक्ता अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिये स्वीकार कर सकता है।''

फिलिप कोटलर के भाब्दों में, ''उत्पाद कोई भी ऐसी चीज है जिसे किसी इच्छा या आवश्यकता की सन्तुष्टि के लिए बाजार में प्रस्तावित किया जा सकता है। विपणन किये जाने वाले उत्पादों में भौतिक माल, सेवाएँ, अनुभव, घटनाएँ, व्यक्ति, स्थान, सम्पदाएँ, संगठन, सूचनाएँ एवं विचार शामिल है।''

उत्पादों की वि□ाशताएँ –

उत्पादों की विशेषताएँ अग्रलिखित हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **उत्पाद कोई भी चीज (Anything)-** उत्पाद कोई भी चीज हो सकती है जिसे उपयोग या उपयोग हेतु बाजार में बेचने के लिए प्रस्तावित किया जाता है एवं उसे व्यक्तियों द्वारा खरीदा जाता है।

2. **उत्पाद दृ□य एवं अदृ□य होते है (Tangible and Intangible Product)** उत्पाद दृश्य एवं अदृश्य होते हैं। दृश्य उत्पाद वे होते हैं जिन्हें देखा या स्पर्श किया जा सकता है, जैसे– टी.वी. , फ्रिज, कूलर, पैन, मोटर साइकिल, मोटरकार एवं टेबल कुर्सी आदि। इसके विपरीत अदृश्य उत्पाद वे होते है, जिन्हें न देखा जा सकता है और न ही स्पर्श किया जा सकता है, जैसे–ख्याति। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की सेवाएँ (वित्तीय, संवर्द्धनात्मक, कानूनी, विपणन, शोध एवं कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग आदि) सूचनाएँ विचार, स्थान, घटनाएँ तथा व्यक्तित्व आदि भी अदृश्य उत्पाद में सम्मिलित हैं। इसलिये **स्टेन्टन** ने कहा कि, ''उत्पाद दृश्य एवं अदृश्य विशेषताओं का एक सम्मिश्रण है।''

3. **ब्राण्ड या ट्रेडमार्क नाम (Brand or Trademark Name)** – प्रत्येक उत्पाद ब्राण्ड़ या ट्रेडमार्क नाम का होता है, ताकि आसानी से जाना–पहचाना एवं बेचा जाता है, जैसे हीरो होण्डा, हरक्यूलिस साइकिल, सेमसंग टी.वी., हवामहल गुंजन टी.वी. टाइटन घड़ी एवं खेतान पंखे आदि। यही नहीं, यदि एक ही ब्राण्ड के अलग–अलग पैंकिंग या साइज बना दिये जाये तो वे भी अलग–अलग उत्पाद होंगें। इसलिए यह कहा जाता है कि उत्पाद एवं पैंकेजिंग का गहरा सम्बन्ध है।

4. **वि□ाश्ट गुण (Specific Qualities)** – उत्पाद की एक विशेषता यह भी है कि प्रत्येक उत्पाद में कुछ विशिष्ट गुण होते है, जैसे–रूप, रंग, आकार, भार, किस्म, स्वाद, मात्रा, आकर्षण एवं सुविधा आदि। इसलिए कुछ लोग किसी उत्पाद को प्रतिष्ठा का प्रतीक मानते है तो कुछ अन्य लोग अच्छी निष्पादन क्षमता का प्रतीक मानते है।

5. **उत्पाद का नाम (Name of Product)** – प्रत्येक उत्पाद का एक सामान्य या जातिगत नाम होता है, जिससे उसे जाना पहचाना जाता है एवं उच्चारण करके बेचा तथा खरीदा जाता है। उदाहरण के लिए, कैंची, पैन, साबुन, टॉफी, चाकलेट, घड़ी, मूर्ति एवं चश्मा आदि।

6. **मूल्य (Price)** – प्रत्येक उत्पाद का एक मूल्य होता है। यह मूल्य उत्पादकों या निर्माताओं या विक्रेताओं द्वारा निर्धारित किया जाता है। इसके पश्चात् निर्धारित मूल्य के बदले उसे बाजार में विक्रय हेतु प्रस्तावित किया जाता है और क्रेताओं द्वारा क्रय किया जाता है।

7. **लाभ एवं उपयोगिता (Benefit and Utility)** – उत्पाद कोई भी ऐसी चीज है जो क्रेताओं को कई लाभ एवं उपयोगिता प्रदान करते है। परिणामस्वरूप उनके द्वारा बार–बार क्रय किया जाता है।

8. **इच्छाओं एवं आव□यकताओं की सन्तुश्टि (Satisfaction of Desires and Needs)&** उत्पाद में इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने की क्षमता होती है। **इस सम्बन्ध में फिस्क ने कहा कि** ''उत्पाद मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टियों का एक पुलन्दा है''। यदि उत्पाद में इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने की क्षमता नहीं होती है तो विपणन की दृष्टि से उसे उत्पाद नहीं कहा जा सकता है।

9. **उत्पाद मिश्रण (Product Mix)** – प्रत्येक उत्पाद किसी विपणनकर्ता द्वारा विपणन किये जाने वाले उत्पाद मिश्रण (उत्पाद समूह या श्रृंखला) का भाग होता है। विपणनकर्ता ही नहीं बल्कि प्रत्येक उपभोक्ता भी प्रत्येक उत्पाद को सम्पूर्ण उत्पाद मिश्रण के सन्दर्भ में ही देखता है और व्यवहार करता है।

10. **संचार का माध्यम (Media of Communication)** – उत्पाद संचार का एक अच्छा माध्यम है क्योंकि इससे अनेक बातों की जानकारी हो जाती है और यही सब कुछ अपने बारे में बता देता है। जैसे – किसने उत्पादित या निर्मित की है, यह किसके लिए उपयोगी है– महिलाओं,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पुरूषों एवं बच्चों के लिए, इसका कितना मूल्य, भार और इसे किस कार्य के लिए उपयोगी बनाया गया है आदि।

11. **उत्पाद जीवन चक्र (Product Life Cycle)** – उत्पाद की एक विशेषता यह भी है कि प्रत्येक उत्पाद का एक जीवन चक्र होता है। अतः प्रत्येक उत्पाद भी जन्म लेता है, धीरे–धीरे विकास होता है और वह परिपक्वता की और बढ़ता है, तत्पश्चात् संतृप्त होने के उपरान्त पतन या मृत्यु की ओर अग्रसर हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक उत्पाद जन्म से मृत्यु तक की क्रमागत अवस्थाएँ पार करते हुए अपना जीवन चक्र पूरा कर लेता है। **इस सम्बन्ध में स्टेन्टन ने कहा कि**, ''उत्पाद को अपने प्रस्तुतीकरण से लेकर पतन तक विभिन्न अवस्थाओं और प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरणों से गुजरना पड़ता है।''

12. **उत्पाद एवं पैंकेजिंग का गहरा सम्बन्ध** – उत्पाद एवं पैंकेजिंग का गहरा सम्बन्ध है। कभी–कभी उत्पाद को पैंकेजिंग से अलग करना सम्भव नहीं होता है। उदाहरणार्थ शेविंग क्रीम टूथपेस्ट, सैन्ट, आदि को पैंकजिंग से दूर नही किया जा सकता है। अतः ऐसे उत्पाद का अस्तित्व ही पैंकेजिंग पर निर्भर करता है।

उपभोक्ता और औद्योगिक उत्पाद [Consumer and Industrial Product]

किसी भी वस्तु/माल/उत्पाद के सम्बन्ध में विपणन कार्यक्रम बनाने से पहले यह देखना आवश्यक है कि निर्मित या उत्पादित वस्तु किस प्रकार की है। जिससे कि उनकी विशेषताओं के अनुरूप विपणन कार्यक्रम बनाया जा सके। क्योंकि उत्पाद की विशेषताएँ विपण कार्यक्रम को काफी सीमा तक प्रभावित करती है।

विपणन की दृष्टि से उत्पादों को दो प्रमुख वर्गो **उपभोक्ता उत्पाद** एवं **औद्योगिक उत्पाद** में विभक्त किया जा सकता है। ऐसा वर्गीकरण विपणन संस्था के उत्पाद सेवा सम्मिश्रण (Product service mix) के निर्धारण में उपयोगी रहता है। ऐसे वर्गीकरण को आधार बनाकर संस्था उपभोक्ता उत्पादों एवं औद्योगिक उत्पादों के विपणन के लिए पृथक–पृथक विपणन नीतियां और कार्यक्रम बना सकती है। वर्तमान में विपणन हेतु उत्पाद वर्गीकरण के निम्न रूप में अत्यधिक प्रचलित है।

I - उपभोक्ता उत्पाद

II - औद्योगिक उत्पाद

I - उपभोक्ता उत्पाद (Consumer Product)

ऐसे उत्पाद या वस्तुएँ जो आम जनता के लिए अन्तिम उपभोग या उपयोग के लिए बनायी जाती है, उन्हें उपभोक्ता उत्पाद कहते है। **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन** के अनुसार ''उपभोक्ता उत्पाद वे है, जो अन्तिम उपभोक्ताओं या परिवारों के उपयोग के लिए बने हैं एवं ऐसी शक्ल में है कि उनको बिना किसी व्यापारिक विधायन के उययोग में लाया जा सकता है।'' उपभोक्ता उत्पादों की कोई निश्चित सूची तो तैयार नहीं की जा सकती है। किन्तु फिर भी इनमें कपड़ा , तेल, साबुन, टूथपेस्ट एवं मंजन, गैस लाइटर, माचिस, पंखे, रेडियो, मोबाइल, कूलर, टेलीविजन, मोटर साईकिल एवं अन्य दिन–प्रतिदिन के उपयोग में आने वाली वस्तुएँ सम्मिलित की जाती है।

इस प्रकार उपभोक्ता उत्पाद से तात्पर्य उन उत्पादों से है जो अन्तिम उपभोक्ताओं या परिवारों के उपयोग/उपभोग के लिए उत्पादित किये गये है। ऐसे उत्पाद व्यक्तिगत एवं पारिवारिक आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु क्रय किये जाते है।

उपभोक्ता उत्पादों को निम्नालिखित भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

1. क्रय आदतों एवं मनोवृतियों के आधार पर –

(On the Basis of Buying Habits and Attitudes)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(i) **सुविधाजनक उत्पाद (Convenient Products)** – सुविधाजनक उत्पाद से आशय ऐसे उत्पादों से है जिनकी आवश्यकता नित्य–प्रतिदिन पड़ती है, जिनका मूल्य कम होता है, तुरन्त तथा न्यूनतम प्रयासों से खरीदता है। जैसे – बीड़ी, सिगरेट, गुटका, पान, दवाइयाँ डबलरोटी, दूध, छाछ, रिफिल, कागज एवं पुस्तक आदि। सुविधाजनक उत्पाद प्रायः टिकाऊ नहीं होते है अर्थात् उपभोक्ता द्वारा इनका उपयोग अथवा उपभोग शीघ्रता से किया जाता है। ऐसे उत्पादों के मूल्य साधारणतया सभी उपभोक्ताओं को मालूम होते है, इनकी अधिकतम बिक्री ब्राण्ड के आधार पर होती है। लेकिन किस्म के ऊपर विशेष बल नहीं दिया जाता है। इसी प्रकार इनको खरीदनें के लिए उपभोक्ताओं को दूर नहीं जाना पड़ता है। इसलिए इन्हें सहूलियत उत्पाद भी कहते है।

सुविधाजनक उत्पादों को पुनः तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

(a) **आधारभूत उत्पाद (Staple Products)** वे होते हैं जो उपभोक्ताओं की आधारभूत या मुख्य आवश्यकता को सन्तुष्ट करते है, जैसे दूध, सब्जियाँ, गेहूँ, आटा आदि।

(b) **भीतरी प्रेरणा या मनोवेग उत्पाद (Impulse Products)** वे होते हैं जिन्हें मन की भीतर प्रेरणा या मनोवेग की प्रेरणा से खरीदे जाते है, जैसे–टॉफी, चाकलेट, गुब्बारा एवं खिलौना आदि।

(c) **आपातकालीन उत्पाद (Emergency Products)** वे होते है जिनकी आवश्यकता आपात या संकट के कारण हुई है और उपभोक्ता को खरीदनी पड़ती है, जैसे– चोट लगना तथा बरसात होने पर छाता या बरसाती कोट खरीदना आदि।

सुविधाजनक उत्पादों के विक्रय के लिए विपणनकर्त्ताओं को विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन बाजार में प्रतिस्पर्द्धा बहुत अधिक होती है। अतः विपणन प्रबन्धक एवं विक्रेताओं को ऐसे उत्पादों का विज्ञापन करना चाहिए, विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान देना चाहिए, उपभोक्ताओं को सन्तुष्ट रखना चाहिए तथा उनकी शिकायत का शीघ्र निर्णय करना चाहिए।

(ii) **सौदा उत्पाद (Shopping Products)** – सौदा उत्पादों से आशय ऐसी वस्तुओं से है जिन्हें क्रय करते समय उपभोक्ता उसकी कीमत, किस्म, आकार, डिजाइन, रंग, शैली एवं उपयुक्तता आदि आधार पर विभिन्न निर्माताओं के उत्पादों से तुलनाएँ करते है और अपने क्रय निर्णय में विशेष सावधानी का परिचय देते है। ऐसे उत्पादों में फर्नीचर, वस्त्र, जूते, पहनने के वस्त्र, महिला सौन्दर्य, साड़ियाँ, चूड़े, कृत्रिम ज्वैलरी, बढ़िया चीनी के बर्तनों का सेट आदि सम्मिलित है। सौदा उत्पादों का क्रय उपभोक्ता द्वारा कभी कभी किया जाता है। ऐसे उत्पादों का उपयोग भी धीरे–धीरे किया जाता है।

सौदा उत्पादों की बिक्री के लिए प्रायः प्रत्येक छोटे–बड़े नगरों में विशेष स्थान होते है, जिन्हे 'Shopping Centers' कहा जाता है। इन सेन्टर्स पर विभिन्न निर्माताओं के उत्पाद अथवा माल उपलब्ध रहते हैं जिससे उपयुक्त चुनाव में सुविधा रहती है।

(iii) **विशिष्टता उत्पाद (Specialty Products)**– विशिष्टता उत्पादों से आशय ऐसे उत्पादों से है जिनमें कुछ ऐसी अद्वितीय विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण उपभोक्ता ऐसे उत्पादों को खरीदनें के लिए आकर्षित होता है और विशेष प्रयास करने के लिए तत्पर रहता है। जैसे– फ्रिज, घड़ियाँ, पंखे, गीजर, टेलीविजन, वीडियो, चित्रकारी की वस्तुएँ विद्युत उपकरण, खेल–सामग्री, स्टाम्प एवं सिक्के आदि। प्रायः ऐसे उत्पाद टिकाऊ एवं मूल्यवान होते हैं। ऐसे उत्पादों के उपभोक्ता प्रायः किसी विशेष ब्राण्ड की वस्तुओं को खरीदना पसन्द करते है।

विशिष्टता उत्पादों के विक्रेताओं को विक्रयोपरान्त सेवाओं की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसलिए ऐसी अनेक वस्तुओं की बिक्री एजेन्सी या स्टॉकिस्ट अथवा वितरक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के माध्यम से की जाती है। इन उत्पादों में से अधिकांश मार्का वाली (Branded) होती है, जिनकी जानकारी उपलब्ध करने के लिए व्यापक विज्ञापन का सहारा लेना पड़ता है। परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को ऐसे उत्पादों को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होती हैं।

(iv) **अनचीते उत्पाद (Unsought Products)** – ये वे उत्पाद होते हैं जिनके बारे में उपभोक्ता ने पहले कभी सोचा नहीं और अचानक जानकारी में आने या लाये जाने के कारण क्रय करने को प्रेरित होते हे। उदाहरण के तौर पर द्वार–द्वार घूमने वाले विक्रेताओं द्वारा किसी उत्पाद को दिखानें पर, डाक घर द्वारा बचत योजना में धन लगाने हेतु प्रेरित करने पर तथा मकान या अन्य सम्पदा के दलाल द्वारा उसके क्रय का सुझाव देने पर उपभोक्ता क्रय निर्णय लेते हैं। ऐसे उत्पादों को 'अयाचित उत्पाद' भी कहते है।

2. उपयोग एवं जीवनकाल के आधार पर (On the Basis of Use and Life Period)

(i) **टिकाऊ उत्पाद (Durable Product)** टिकाऊ उत्पादों का आशय ऐसी वस्तुओं से है, जिन्हें अनेक बार उपयोग में लाया जा सकता है और बहुत लम्बे समय तक काम में आती रहती है। दूसरे शब्दों में, टिकाऊ उत्पाद, वह दृश्य उत्पाद या माल है जो अनेक बार प्रयोग में आता है, जैसे फर्नीचर, टेलीविजन, वांशिग मशीन, पंखे, रेडियो, रेकार्ड–प्लेयर, मिक्सी, वैक्यूम क्लीनर एवं एक्जास्ट फेन आदि। चूँकि ऐसे उत्पादों के उपयोग की अवधि दीर्घकालीन होती है, इसलिए इनके लिए वैयक्तिक विक्रय की व्यवस्था करने की आवश्यकता होगी, लाभ की मात्रा अधिक रखी जा सकती है और विक्रयोपरान्त सेवाओं की भी व्यवस्था करनी पड़ती है।

(ii) **अटिकाऊ उत्पाद (Non-durable Products)** गैरटिकाऊ उत्पादों से आशय उन वस्तुओं से है जो सामान्यतः एक बार अथवा कुछ बार प्रयोग में लेने के बाद समाप्त हो जाते है। दूसरे शब्दों में अटिकाऊ उत्पाद, वह दृश्य उत्पाद या माल है जो सामान्यतः एक अथवा कुछ प्रयोगों में समाप्त हो जाता है जैसे खाद्य पदार्थ, दूध, बीड़ी–सिगरेट, साबुन, तेल, चाय, भोजन, सब्जियाँ, टूथपेस्ट, मंजन, खिलौने एवं खेल का सामान आदि। चूँकि ऐसे उत्पादों का जीवन अपेक्षाकृत अल्प होता है। इसलिए इनके वितरण हेतु व्यापक विपणन नीति को अपनाना होगा, कीमतें कम रखनी होगी, ग्राहकों को ब्राण्ड के प्रति वफादार बनाने की प्रयत्न किया जायेगा एवं लाभ की मात्रा को भी कम रखना होगा।

(iii) **अमूर्त उत्पाद (Intangible Products)** – अमूर्त उत्पादों का आशय उन वस्तुओं से है जिन्हें न देखा जा सकता है एवं न स्पर्श किया जा सकता है किन्तु उनसे प्राप्त आनन्द एवं सुविधा का अनुभव किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, बैंक बीमा, मैच, सन्देश, अस्पताल, जिम, मरम्मत एवं रख–रखाव, मनोरंजन, परिवहन, विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन आदि।

3. उत्पाद लक्षण के आधार पर (On the Basis of Product Characteristics) -

उत्पादों के उपर्युक्त वर्गीकरण उपभोक्ता की खोज–प्रक्रिया एवं विपणन संमिश्रण के बीच सम्बन्धों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहते है। इस समस्या का निवारण करने के लिए **प्रो. लियो एसपिनवाल** ने उत्पादों को उत्पाद लक्षण के आधार पर वर्गीकृत एवं विकसित किया। इसमें पांच महत्त्वपूर्ण उत्पाद लक्षणों का चुनाव किया–

(i) **प्रतिस्थापन दर** यह बतलाती है कि कोई वस्तु बाजार में कितनी बार खरीदी एवं प्रयुक्त की जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) **सकल अन्तर,** प्रारम्भिक उत्पाद–लागत एवं अन्तिम विक्रय कीमत के अन्तर को बतलाता है।

(iii) **समायोजन,** ग्राहकों की आवश्कयताओं की पूर्ण सन्तुष्टि हेतु वस्तुओं पर लागू होता है।

(iv) **उपयोग काल,** उपयोग में लगने वाले समय को बतलाता है।

(v) **तला□ी काल,** समय एवं प्रयत्न की उस मात्रा को बतलाता है, जिसे उपभोक्ता अथवा क्रेता वस्तु की प्राप्ति हेतु खर्च करने को तत्पर रहता है।

II – औद्योगिक उत्पाद (Industrial Products)

औद्योगिक अथवा व्यावसायिक या संगठनात्मक उत्पादों एवं माल से आशय उन वस्तुओं से है जिनके उपयोग द्वारा अन्य वस्तुएँ निर्मित या उत्पादित की जाती है अथवा सेवाएँ प्रदान की जाती है। **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिए□ान के अनुसार,** ''औद्योगिक उत्पाद वे है जो मुख्यतः अन्य उत्पादों के उत्पादन में अथवा सेवाएँ प्रदान करने में प्रयोग हेतु बनाये जाते है। इनमें साज–सामान, संघटक हिस्से, मरम्मत, परिचालन, आपूर्तियाँ, कच्चा–माल एवं गढ़ी हुई सामग्रियाँ सम्मिलित होती हैं।

औद्योगिक उत्पादों अथवा वस्तुओं के बाजार की विशेषताएँ यह है कि इनका बाजार बड़े–बड़े औद्योगिक क्षेत्रों में होता है। क्रेताओं की संख्या सीमित या थोड़ी होती है। प्रत्येक क्रय–विक्रय सौदा, बड़ी मात्रा में एवं अधिक मूल्य का होता है। तकनीकी आवश्यकताओं की प्रधानता होती है और इस प्रकार की वस्तुओं की माँग उपभोक्ता वस्तुओं अथवा माल की माँग पर आधारित होती है।

औद्योगिक उत्पादों को निम्नांकित सात भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. **कच्चा माल एवं अर्द्ध–निर्मित उत्पाद (Raw and Semi-finished Products)&** वे उत्पाद जो खेतों, खानों एवं वनों से प्राप्त होते है, कच्चे उत्पाद कहलाते हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के उत्पाद सम्मिलित है, जैसे– गेहूँ, चना, मटर, दालें, वनों की लकड़ी, खनिज तेल, समुद्री उत्पाद, कोयला, सोना, चाँदी, लोहा एवं रासायनिक पदार्थ आदि। ये सभी उत्पाद निर्मित उत्पादों के कच्चे उत्पाद या कच्चे माल के रूप में उपयोग में लाये जाते है। लेकिन इनकी क्रय विधि में भिन्नता है। यदि कच्चे माल की लागत, कुल उत्पादन लागत के एक छोटे से भाग का प्रतिनिधित्व करती है तो प्रायः ऐसे कच्चे माल की पूर्ति मध्यस्थों के माध्यम से की जाती है। इसके विपरीत यदि कच्चे माल की लागत, कुल उत्पादन लागत का एक बड़ा भाग है तो उस उपक्रम के क्रय प्रबन्धक अथवा अधिकारी निर्माताओं से प्रत्यक्ष रूप से कच्चा माल क्रय करते है।

   अर्द्ध निर्मित उत्पाद अथवा माल में ऐसे उत्पादों को शामिल किया जाता है, जो एक संस्था या उपक्रम के लिए निर्मित माल होता है तो दूसरे उपक्रमों के लिये कच्चा माल होता है, जैसे–लोहा, स्टील एवं शीशा आदि। अर्द्ध निर्मित माल का उत्पादन प्रायः बड़े पैमाने पर किया जाता है एवं इनको औद्योगिक प्रयोगकर्त्ताओं को प्रायः प्रत्यक्ष रूप से बेचा जाता है।

2. **गढ़ाई के उत्पाद (Fabricating Products)**– ये वे उत्पाद होते हैं जिन्हें निर्मित उत्पादों के रूप में देखा जा सकता है और जिनके रूप में परिवर्तन किये बिना निर्मित उत्पादों में प्रयोग किया जाता है। उदाहरण – टेलीविजन के स्पीकर, केबिनेट, स्कूटर के स्पार्ग प्लक टायर–ट्यूब चद्रे, बॉयलर, विद्युत छड़े आदि। ऐसे उत्पादों को प्रायः औद्योगिक प्रयोगकर्ता प्रत्यक्ष रूप से निर्माताओं से क्रय करते है और अन्य उपयोगी वस्तुओं में लगा दिया जाता है या जड़ दिया जाता है। जैसे – इस्पात के ट्यूब को मोड़कर साइकिलों के ढांचे बनाये जाते है। धातु की चद्दरे सन्दुक एवं ट्रक वगैरह बनाने के काम में आती है और बॉयलर भी चद्दरों से बनते है। सामान्य तौर पर गढ़ाई

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के उत्पाद प्रमाणित होते है। इसलिए इनके निर्माता अथवा उत्पादक विपणन हेतु उपभोक्ता विपणन तथा औद्योगिक विपणन की व्यवस्थाओं की अपनाते है।

3. **उपकरण उत्पाद (Equipment Products)** ऐसे उत्पाद जिन्हें कल–कारखानों में स्थायी तौर पर अथवा एक लम्बी अवधि के लिए संस्थापित किये जाते है। उन्हें उपकरण उत्पाद कहते है। जैसे कारखाने का भवन, प्लॉन्ट, साज–सामान, छोटे–बड़े यन्त्र, कल–पुर्जे, दफ्तर के सामान आदि। इन उत्पादों में इनकी बनावट तथा मूल्य के अतिरिक्त इनकी उपयोगिता तथा कार्यक्षमता का बड़ा महत्व होता है। इसी प्रकार दफ्तरों में काम आने वाली वस्तुओं की बिक्री में उपभोक्ता माल की भाँति बनावट, किस्म और व्यक्तिगत पसन्द का भी बहुत महत्व रहता है। ऐसे उत्पादों को क्रय करने में काफी मात्रा में पूँजी लगानी पड़ती है। प्रायः ऐसे उत्पादों के निर्माताओं द्वारा अपने उत्पादों की बिक्री औद्योगिक प्रयोगकर्त्ताओ को प्रत्यक्ष रूप से करनी होती है। इसका कारण यह है कि प्रति इकाई उत्पाद का मूल्य अधिक होता है एवं इनके क्रेताओं की संख्या भी कम होती है। अतः विपणनकर्त्ताओं को ऐसे उत्पादों के विक्रय के लिए सतत् प्रयत्नों की आवश्यकता होती है।

4. **प्रक्रिया सामग्री उत्पाद (Process Materials)**–प्रक्रिया सामग्री वे उत्पाद है जिनका अन्य उत्पादों के निर्माण में प्रत्यक्ष रूप से उपयोग किया जाता है किन्तु, वह उत्पाद निर्मित उत्पाद का भाग नहीं बनता है। ऐसे उत्पाद को निर्मित अन्तिम उत्पाद में पृथक से पहचाना भी नही जा सकता है। उदाहरणार्थ, चीनी के निर्माण के दौरान उसकी सफेदी हेतु कुछ रासायनिक पदार्थ डाले जाते है। ये रासायनिक पदार्थ ही प्रक्रिया सामग्री है। ये उत्पाद निर्मित चीनी में अलग से दिखायी नहीं पड़ते है।

5. **परिचालन उत्पाद (Operating Products)**–ऐसे उत्पाद जो उद्योग–निर्माण एवं परिचालन–प्रक्रिया में सुविधाएँ प्रदान करते हैं किन्तु अन्तिम उत्पाद का हिस्सा नहीं होते है, उन्हें परिचालन उत्पाद कहते हैं। जैसे – मशीन का तेल, ग्रीस, दफ्तर में काम आने वाली स्टेशनरी आदि। ऐसे उत्पाद उद्योग में रख–रखाव, मरम्मत एवं संचालन आदि में काम आते है।

6. **प्रबन्ध उत्पाद (Management Products)**–प्रबन्ध उत्पादों के अन्तर्गत दफ्तर उपकरणों एवं उनकी आपूर्तियों को शामिल किया जाता है। जैसे– संमक विधायन मशीनें, टाइपराइटर्स, इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर्स, खाता पुस्तकें, संचार सुविधाएँ आदि। इनमें जो उपकरण अधिक मूल्यवान होते हैं, उनको या तो पट्टे पर ले लिया जाता है या किराया क्रय पद्धति पर खरीद लिया जाता है। इसके विपरीत जो उपकरण कम लागत वाले होते है, उनको नकद खरीद लिया जाता है।

7. **संगठनात्मक अमूर्त उत्पाद (Organisational intangible Products)** संगठन की निर्माण प्रक्रिया एवं संगठन के संचालन में अनेक अमूर्त उत्पादों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें, विपणन शोध सेवाएँ, वित्तीय सेवाएँ, संवर्द्धनात्मक सेवाएँ, कानूनी सेवाएँ, कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग आदि सम्मिलित है। ऐसी सेवाओं की व्यवस्था संगठन के भीतर की जा सकती है अथवा बाहर से प्राप्त की जा सकती है। इन दोनों विकल्पों की लागतों एवं सुविधाओं–असुविधाओं को ध्यान में रखकर किसी एक विकल्प का चयन किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

औद्योगिक उत्पाद एवं उपभोक्ता उत्पाद में अन्तर

(Difference in Industrial Product and Consumer Product)

अन्तर का आधार	औद्योगिक उत्पाद	उपभोक्ता उत्पाद
1. अर्थ	औद्योगिक उत्पादों का अर्थ उन वस्तुओं से है, जिनके उपयोग द्वारा अन्य वस्तुएँ निर्मित या उत्पादित की जाती है अथवा सेवाएँ प्रदान की जाती है।	जबकि ये ऐसे उत्पाद है जिन्हें आम जनता के लिए अन्तिम उपयोग या उपभोग के लिए बनाये जाते है।
2. ग्राहकों की प्रकृति	औद्योगिक उत्पादों के ग्राहक उद्योगपति, उत्पादक या निर्माता होते है।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों के ग्राहक अन्तिम उपभोक्ता या प्रयोक्ता होते हैं।
3. उत्पादों के प्रकार	औद्योगिक उत्पादों के ये प्रकार होते हैं, जैसे – कच्चा माल एवं अर्द्ध–निर्मित उत्पाद, गढ़ाई के उत्पाद, उपकरण उत्पाद, आपूर्ति उत्पाद, परिचालन उत्पाद, प्रबन्ध उत्पाद एवं संगठनात्मक उत्पाद आदि।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों के ये प्रकार होते हैं – सुविधाजनक उत्पाद, सौदा उत्पाद, विशिष्टता उत्पाद, अनचीते उत्पाद, टिकाऊ उत्पाद, अटिकाऊ उत्पाद, अमूर्त उत्पाद आदि।
4. उत्पादों का वर्गीकरण	औद्योगिक उत्पादों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसे – क्रय आदतों एवं मनोवृत्तियों के आधार पर, उत्पाद एवं जीवनकाल के आधार पर तथा उत्पाद–लक्षण के आधार पर आदि।
5. ग्राहकों की संख्या	औद्योगिक उत्पादों के ग्राहकों की संख्या सीमित एवं थोड़ी होती है।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों के ग्राहकों की संख्या असीमित एवं बहुत अधिक होती है।
6. माँग की प्रकृति	औद्योगिक उत्पादों की माँग अप्रत्यक्ष रूप से की जाती है अर्थात इनकी माँग व्युत्पन्न होती है।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों की माँग प्रत्यक्ष रूप से की जाती है अर्थात इनकी माँग स्वयं–जनित होती है।
7. उत्पाद विश्लेषण	औद्योगिक उत्पाद के क्रेता उत्पादों का उपयोग करने से पहले उनका गहन विश्लेषण करते हैं क्योंकि वे उत्पादों के सापेक्षिक गुणों एवं अवगुणों से परिचित होते है।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों के क्रेता, उत्पादों का उपयोग करने से पहले उनका इतनी गहनता से विश्लेषण नहीं करते है क्योंकि वे उत्पादों के सापेक्षिक गुणों–अवगुणों से भली–भांति परिचित नहीं होते है।
8 बाजार का क्षेत्र एवं विस्तार	औद्योगिक उत्पादों का बाजार क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित एवं कम विस्तृत होता है क्योंकि इनका बाजार बड़े–बड़े औद्योगिक क्षेत्रों में होता है।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों का बाजार क्षेत्र विस्तृत होता है। क्योंकि ऐसी वस्तुएँ उपभोक्ता के निकट स्थान पर उपलब्ध होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9. प्रधानता	औद्योगिक उत्पादों के लिए तकनीकी आवश्यकता प्रधान होती है।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों के लिए तकनीकी आवश्यकता प्रधान नही होती है।
10. सौदे की प्रकृति	औद्योगिक उत्पादों के क्रय–विक्रय का सौदा बड़ी मात्रा में एवं अधिक मूल्य का होता है।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों के क्रय विक्रय का सौदा थोड़ी मात्रा में एवं कम मूल्य का होता है।
11. विपणन रीति–नीति	औद्योगिक उत्पादों की अधिक बिक्री के लिए क्रेताओं के साथ वैयक्तिक सम्बन्धों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।	जबकि उपभोक्ता उत्पादों की अधिक बिक्री के लिए विस्तृत विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

प्र□न बोध –

लघुतरात्मक प्र□न–

1. उत्पाद की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझाईयें।
2. उत्पाद की विशेषताएँ बताईयें।
3. उत्पाद विपणन का आधार है ? समझाईये।

निम्बन्धात्मक प्र□न –

1. उत्पादों का वर्गीकरण कीजिए तथा प्रत्येक को संक्षेप में समझाईयें।
2. औद्योगिक उत्पाद तथा उपभोक्ता उत्पाद में अन्तर बताईये।

उत्पाद नियोजन तथा विकास

[Product Planning and Development]

उत्पाद नियोजन (Product Planning)

आ□ाय–उत्पाद नियोजन से आशय उन प्रयासों से है जिनके द्वारा बाजार या उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के अनुरूप उत्पाद या उत्पाद श्रृंखला को निर्धारित किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि उत्पाद नियोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा उपभोक्ताओं की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोगी उत्पादों को खोजा एवं जाँचा परखा जाता है तथा उन्हें संस्था के उत्पाद श्रृखला में जोड़ा जाता है।

परिभाशाएँ –

विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार, ''उत्पाद नियोजन में वे सब क्रियाएँ सम्मिलित हैं जो उत्पादकों तथा मध्यस्थों को यह निर्धारित करने में सक्षम बनाती है कि संस्था की उत्पाद–श्रृंखला में कौन–कौन से उत्पाद होने चाहिए।''

कार्ल एच. टिंटजन के भाब्दों, उत्पाद नियोजन से तात्पर्य ''नवीन उत्पादों की खोज, जाँच, विकास एवं व्यवसायीकरण, विद्यमान उत्पाद श्रृंखलाओं में संशोधन तथा सीमान्त या अलाभकारी उत्पादों का परित्याग करने से सम्बन्धित क्रियाओं को निर्धारित करना तथा उनका पर्यवेक्षण करना है।''

जॉनसन के अनुसार, ''उत्पाद नियोजन उत्पाद की उन विशेषताओं का निर्धारण करता है जिससे कि उपभोक्ताओं की अनन्त इच्छाओं को सर्वोत्तम ढंग से पूरा किया जा सके एवं वस्तुओं में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विक्रय योग्यता को जोड़ा जा सके तथा उन विशेषताओं को अन्तिम वस्तुओं में सम्मिलित किया जा सकें।''

इस प्रकार उत्पाद नियोजन एक व्यवस्थित एवं नियोजित कार्य है, जिसके द्वारा एक निर्माता अपने उत्पादों या उत्पाद श्रृंखला को निर्धारित करता है। यह वह कार्य है जिसके द्वारा एक निर्माता अपने उत्पादों को बाजार की निरन्तर परिवर्तनशील मांग एवं आवश्यकता के अनुरूप बनाने के लिए अपने विद्यमान उत्पादों में सुधार करता है, नये उत्पादों का निर्माण करता है तथा सीमान्त एवं अलाभकारी उत्पादों का परित्याग करता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में उत्पादों की किस्म, रंग, रूप, आकार, ब्राण्ड, डिजायन, आदि को निर्धारित, परिवर्तित या संशोधित किया जाता है।

उत्पाद नियोजन की वि□ोशताएँ

उत्पाद नियोजन एक विशिष्ट क्रिया है जिसकी विशेषताओं को नीचे कुछ बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा रहा है –

1. **उत्पादों का नियोजन** – उत्पाद नियोजन संस्था के द्वारा भविष्य में निर्मित या उपलब्ध किये जाने वाले उत्पादों का नियोजन है।

2. **मूर्त एवं अमूर्त उत्पादों का नियोजन** –उत्पाद नियोजन संस्था के मूर्त एवं अमूर्त उत्पादों का नियोजन हैं इसमें मूर्त उत्पादों अर्थात् जिन उत्पादों को देखा, छुआ या सूँघा जा सकता है, उनके नियोजन के साथ साथ उन उत्पादों का भी नियोजन है जिन्हें देखा, छुआ या सूँघा नही जा सकता है अर्थात अमूर्त है।

3. **प्रारम्भिक कार्य** –उत्पाद नियोजन विपणन कार्यों में प्रारम्भिक कार्य है। यहीं से विपणन कार्यो की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। स्टेन्टन ने लिखा है कि **''उत्पाद नियोजन किसी संस्था के सम्पूर्ण विपणन कार्यक्रम का आरम्भिक बिन्दु है।''**

4. **अविच्छिन्न प्रक्रिया** – उत्पाद नियोजन निरन्तर या अविच्छिन्न रूप से चलने वाली प्रक्रिया है। इसमें कभी नये उत्पादों का नियोजन किया जाता है तो कभी विद्यमान उत्पादों में सुधार। यह प्रक्रिया सदैव चलती ही रहती है।

5. **सर्वव्यापी प्रक्रिया**– उत्पाद नियोजन सर्वव्यापी प्रक्रिया है। यह निर्माता, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी, सुपर बाजार, श्रृखलाबद्ध दुकानों आदि सभी में की जाती है। अन्तर केवल इतना है कि निर्माता माल के निर्माण से पूर्व उत्पाद नियोजन करता है, जबकि मध्यस्थ माल क्रय करने से पूर्व उत्पाद नियोजन करते है।

6. **आव□यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति** – उत्पाद नियोजन उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति के लिए किया जाता है। इसका उद्देश्य बाजार एवं उपभोक्ताओं को उनके इच्छित एवं अपेक्षित उत्पाद उपलब्ध कराना है।

7. **उपभोक्ता संतुश्टि एवं कल्याण**– उत्पाद नियोजन का अन्तिम लक्ष्य उपभोक्ताओं की संतुष्टि एवं कल्याण में अभिवृद्धि करना है।

8. **व्यापक क्षेत्र** – उत्पाद नियोजन का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें नवीन उत्पादों की खोज, जाँच–परख तथा उनका व्यवसायीकरण करने और विद्यमान उत्पादों में सुधार करने जैसे अनेक कार्य सम्मिलित हैं। उसमें उत्पाद नवाचार भी सम्मिलित है।

9. **अनुसंधान पर आधारित** – उत्पाद नियोजन पूर्णतः अनुसंधान पर आधारित होता है। यह बाजार अनुसंधान, उपभोक्ता व्यवहार एवं अभिप्रेरण अनुसंधान तथा उत्पाद अनुसंधानों के परिणामों को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। इन अनुसंधानों से उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, इच्छाओं, पसन्द, नापसन्द, वरीयता, वस्तु की किस्म, रंग, रूप, आकार, डिजाइन, ब्राण्ड के प्रति विचारों का ज्ञान हो जाता है। इससे उत्पाद नियोजन आसान हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. **अंतः तकनीकी कार्य** – उत्पाद नियोजन मूलतः व्यावहारिक विज्ञान से सम्बन्धित शोध पर आधारित कार्य है। उत्पाद नियोजन हेतु मानवीय इच्छाओं, आवश्यकताओं, भावनाओं आदि का अध्ययन किया जाता है और उसके आधार पर ही उत्पाद के विशिष्ट लक्षणों को निर्धरित किया जाता है। तत्पश्चात् इन विशिष्ट लक्षणों के आधार पर उत्पादों के लिए तकनीकी कार्य (उत्पादन प्रबन्ध से सम्बन्धित) प्रारम्भ होता है और उत्पाद को भौतिक स्वरूप प्रदान किया जाता है।

उत्पाद नियोजन की आवश्यकता एवं महत्त्व

[Need and Importance of Product Planning]

विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार, ''उत्पाद नियोजन एक संस्था के सम्पूर्ण विपणन कार्यक्रम का प्रारम्भिक बिन्दु हैं।'' उत्पाद नियोजन सम्पूर्ण संस्था की सफलता को निर्धारित करने वाला महत्वपूर्ण कार्य है। इसी से विपणन कार्यक्रम का श्रीगणेश होता है। उत्पाद मूल्य निर्धारण, विक्रय संवर्द्धन, विज्ञापन, वितरण श्रृंखलाओं का चुनाव से सम्बन्धित विपणन कार्यक्रम भी उत्पादन नियोजन से जुड़े हुए है।

संक्षेप में, उत्पाद नियोजन की आवश्यकता एवं महत्त्व को निम्नांकित बिन्दुओं से समझा जा सकता है –

1. **विपणन कार्यक्रम का आधार (Basis of Marketing Programme)** – उत्पाद नियोजन विपणन कार्यक्रम का आधारभूत एवं प्रारम्भिक कार्य है। स्टेन्टन ने ठीक ही लिखा है कि **''उत्पाद नियोजन संस्था के सम्पूर्ण विपणन कार्यक्रम का प्रारम्भिक बिन्दु है।''** यही से संस्था के विपणन कार्यक्रम की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इस कार्य के बाद ही अन्य विपणन कार्यो यथा – मूल्य निर्धारण, वितरण, संवर्द्धनात्मक का श्रीगणेश होता है।

2. **उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति (Helps to meet consumer needs)** – उत्पाद नियोजन का कार्य उपभोक्ता की आवश्यकताओं, इच्छाओं, पसन्दगी, नापसन्दगी, वरीयताओं आदि को जानने से ही प्रारम्भ होता है। अतः इस कार्य के परिणास्वरूप उपभोक्ताओं की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को भली प्रकार पूरा किया जा सकता है।

3. **सुविधाजनक उत्पाद (Convenient Product)** – उत्पाद नियोजन से उपभोक्ताओं को अधिक सुविधाजनक उत्पाद उपलब्ध हो सकते है। उत्पाद नियोजन के द्वारा उत्पाद का आकार, रंग, रूप, डिजाइन, आदि उपभोक्ता की सुविधा को ध्यान में रखकर ही बनाये जाते हैं। फलतः उपभोक्ताओं को अधिक सुविधाजनक उत्पाद मिलने लगे हैं। उदाहरणार्थ, आजकल महिलाओं की सुविधाओं के अनुसार घेरलू उपकरण, स्कूटर, जूते–चप्पल आदि बनने लगे हैं। बच्चों एवं बूढ़ो की सूविधा का भी आजकल कई उत्पादों के निर्माण में ध्यान रखा जाने लगा है।

4. **दोश रहित उत्पाद (Product free-from defects or zero defect product)** – उत्पाद नियोजन का एक लाभ यह है कि उपभोक्ताओं को दोष–रहित उत्पाद उपलब्ध होने लगे हैं। आजकल उत्पाद का रंग, रूप, आकार, किस्म आदि का निर्धारण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि उसमें दोष न हो। टी.वी., फ्रिज, स्कूटर ही नहीं, दैनिक उपयोग की छोटी से छोटी वस्तु को दोष रहित उपलब्ध बनाने पर जोर दिया जा रहा है। यह कुशल उत्पाद नियोजन से ही सम्भव है।

5. **संसाधनों का सदुपयोग (Proper utilisation of resources)** – उत्पाद नियोजन संस्था के संसाधनों के सदुपयोग में सहायक है। उत्पाद नियोजन के अन्तर्गत उचित उत्पादों को खोजा जाता है, उनका विपणन परीक्षण किया जाता है, विद्यमान उत्पादों में आवश्यक सुधार एवं परिवर्तन किया जाता है और अलाभकारी उत्पादों को संस्था की उत्पाद श्रृंखला से हटाया जाता है। इन सब के परिणामस्वरूप संस्था उन उत्पादों का निर्माण कर पाती है जिनकी बाजार में माँग होती है। फलतः संस्था के संसाधनों का सदुपयोग सम्भव है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. **लागतों में कमी (Reduced Cost)**– अच्छे उत्पाद नियोजन से संस्था के संसाधनों का अपव्यय नहीं होता है। इसके अतिरिक्त अच्छे उत्पाद नियोजन से निर्मित उत्पादों को बेचना भी आसान होता है, अधिक संवर्द्धनात्मक एवं वितरण व्यय नही करने पड़ते है। फलतः संस्था की लागतों में कमी भी आती हैं

7. **अधिक विक्रय एवं लाभ (Increased sales and Profit)** – अच्छे उत्पाद नियोजन से संस्था के उत्पादों का विक्रय बढ़ता हैं। ऐसा अच्छे उत्पादों तथा कम लागतों के कारण होता है। इसके परिणामस्वरूप, संस्था के लाभो में भी वृद्धि होती है।

8. **प्रतिस्पर्धी क्षमता में वृद्धि (Increased Competitive capacity)** – अच्छा उत्पाद नियोजन संस्था के उत्पादों को अच्छा एवं मितव्ययी बना सकता है। इससे संस्था की बाजार में प्रतिस्पर्धी क्षमता में अभिवृद्धि होती है।

9. **संस्था का दीर्घकालीन अस्तित्व (Longer survival of institution)** – दुनिया में कोई भी अमर नहीं है। व्यक्ति एवं उत्पाद, जो जन्म लेते है, सभी मरते हैं। किन्तु नियमित जीवनचर्या वाले व्यक्ति की तरह भली प्रकार से नियोजित उत्पाद भी दीर्घायु होते हैं। वे अपने यौवन के शिखर पर अधिक लम्बे समय तक टिकते है और सस्था के अस्तित्व को भी दीर्घायु बना देते है। इतना ही नहीं, विद्यमान उत्पादों की समीक्षा करके उनमें आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन करने से भी उत्पादों एवं संस्था की आयु में भी वृद्धि होती है।

10. **विकास में सहायक (Instrumental in growth)** – आधुनिक युग में विकास नवकरण पर निर्भर करता है। नवीन उत्पादों का विकास करके, नये कच्चे माल या तकनीक का उपयोग करके जो संस्था न्यूनतम लागत पर अच्छा उत्पाद उपलब्ध करा सकती है, वही आगे विकास कर सकती हैं। उत्पाद नियोजन इस विकास यात्रा में महत्त्वपूर्ण रूप से योगदान दे सकता है।

11. **सामाजिक दायित्वों का निर्वाह (Discharge of Social responsibilities)** – आधुनिक युग में प्रत्येक संस्था का सामाजिक दायित्व होता है। अच्छे उत्पाद नियोजन से वह उपभोक्ताओं, स्थानीय समुदाय एवं देश के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह कर सकती है। अच्छे उत्पादों से उपभोक्ताओं एवं स्थानीय समुदाय के प्रति दायित्वों की पूर्ति कर सकती है। इनसे उपभोक्ता एवं समाज का जीवन–स्तर एवं जीवन की किस्म में सुधार होता है। उत्पाद नियोजन से देश के संसाधनों का सदुपयोग होता है। अतः देश के प्रति दायित्वों का निर्वाह भी सम्भव है।

12. **कानूनी दायित्वों का निर्वाह (Discharge of legal obligations)** – आजकल उचित उत्पाद उपलब्ध कराना एवं उसकी निष्पादन क्षमता को सुनिश्चित करना व्यवसायियों का वैधानिक दायित्व भी हो गया है। हमारे देश में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम है। यह उपभोक्ता को अनेक अधिकार प्रदान करता है। यदि कोई उत्पाद उचित किस्म, प्रमाण एवं निष्पादन क्षमता का नहीं होता है तो उत्पादक/व्यवसायी उसकी क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होता है। अच्छा उत्पाद नियोजन करके उत्पादक/व्यवसायी स्वतः ही अपने वैधानिक दायित्वों से सुरक्षित हो जाता है।

उत्पाद विकास (Product Development)

उत्पाद विचार को वास्तविक उत्पाद में परिवर्तित करना ही उत्पाद विकास है। अतः उत्पाद विकास से आशय नये उत्पाद के विकास से ही लगाया जाता है। अतः इसमें वे सभी कार्य सम्मिलित होते है जो किसी नवीन उत्पाद के विकास के लिए आवश्यक होते है। इस प्रकार उत्पाद विकास वह व्यूहरचना है जिसके अन्तर्गत विद्यमान बाजार की अपेक्षाओं के अनुरूप नये उत्पादों का विकास कर बाजार में प्रस्तुत किया जाता हैं।

कोडवेकर के अनुसार, ''उत्पाद विकास से तात्पर्य, ''बाजार की सटीक अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए उत्पाद का आविष्कार करना है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कोटलर तथा आर्मस्ट्रॉग के अनुसार, ''उत्पाद विकास संस्था की उन्नति की वह व्यूरचना है जिसके अन्तर्गत विद्यमान बाजार संभागों में संशोधित या नये उत्पाद प्रस्तुत किये जाते है।''

विलियम जे स्टेन्टन के अनुसार, ''उत्पाद विकास उत्पाद–बाजार उन्नति की वह व्यूहरचना है जिसमें संस्था अपने विद्यमान बाजारों में बेचने के लिए नये उत्पादों का विकास करती हैं।''

उत्पाद विकास की प्रक्रिया (Process of Product development)

उत्पाद विकास करना एक जटिल कार्य है। इसकी सफलता के लिए आवश्यक है कि इसकी विधिवत् प्रक्रिया को अपनाया जाय। ऐसी प्रक्रिया में अनेक चरण हो सकते हैं। विभिन्न संस्थाओं की उत्पाद विकास प्रक्रिया अलग–अलग हो सकती है किन्तु एक आदर्श उत्पाद विकास प्रक्रिया में निम्नांकित चरण होते है।

1. **विचारों की खोज एवं उत्पत्ति (Exploitation and Generation of Ideas)**– यह उत्पाद विकास की प्रक्रिया का प्रथम चरण हैं। इसमें विद्यमान या चालू उत्पादों में सुधार करने एवं नये उत्पादों के विकास हेतु बहुत बड़ी संख्या में सृजनात्मक विचारों की खोज की जाती है। ऐसा कहा जाता है कि अधिक विचार होंगे, उतनी ही अधिक सम्भावना एक विचार के चुने जाने की होती है। वे संस्थाएँ जो विचारो की खोज करती है, इस कार्य के लिए एक अधिकारी नियुक्त कर देती है, जिसका कार्य विचारों की खोज करना, विचारों के लिए कर्मचारियों एवं अन्य को प्रोत्साहित करना तथा उन विचारों को सम्बन्धित विभागों को भेजना है। नये विचारों की खोज निम्नलिखित स्त्रोतों से की जा सकती है।

   (i) **ग्राहक**– ग्राहकों से स्वयं की इच्छाओं, आवश्यकताओं, पसन्द–नापसन्द, समस्या, सुझाव, उत्पाद में सुधार आदि के सम्बन्ध में नये विचार प्राप्त किये जा सकते हैं।

   (ii) **निर्माता के विक्रेता** – निर्माता के विक्रेताओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध ग्राहकों से होता है। इसलिए ग्राहक द्वारा उत्पाद के सम्बन्ध में परिवर्तन बताये जाते हैं। यही नहीं, कभी–कभी विक्रेता स्वयं शिकायत करते हैं, जैसे यह पैकेट बहुत बड़ा है या हाथ में ले जाने में बहुत असुविधा होती है। ऐसी शिकायतों से नये–नये विचार मिल जाते है।

   (iii) **प्रबन्धक एवं कर्मचारी** – संस्था के प्रबन्धक एवं कर्मचारी भी नये–नये उत्पादों, वस्तुओं के निर्माण करने के लिए विचारों को प्रस्तुत करते हैं, जैसे मुख्य वस्तु के साथ पूरक वस्तुओं के निर्माण का विचार, उत्पादन सुविधाओं के उपयोग के लिए वस्तुओं के निर्माण का विचार एवं वितरण–माध्यमों का उचित उपयोग करने के लिए नयी वस्तुओं का निर्माण का विचार आदि।

   (iv) **वैज्ञानिक** – बड़ी बड़ी संस्थाएँ अपने यहाँ प्रयोगशालाएँ रखती हैं एवं उनको चलाने के लिए उच्च श्रेणी के वैज्ञानिक भी। इनके द्वारा भी नये–नये उन्नत विचार प्रस्तुत किये जाते है।

   (v) **प्रतियोगियो** – प्रतियोगी के द्वारा भी उत्पाद के सम्बन्ध में नये–नये विचार आते है। एक अच्छी संस्था प्रतियोगी उत्पादों का विश्लेषण अपनी प्रयोगशाला में करती रहती है जिससे कि उसको नये–नये विचार मिलते रहते है।

   (vi) **अन्य विभाग** – उत्पादों के विकास के लिए संस्था के विभिन्न विभागों, जैसे मानव संसाधन विभाग, अनुसन्धान विभाग, सेवा विभाग, मरम्मत एवं उत्पादन विभाग आदि से विचार आमन्त्रित किये जाते है।

   (vii) **वि□वविद्यालय एवं सरकारी अनुसन्धान प्रयोग□ालाएँ** – कभी–कभी विश्वविद्यालयों एवं सरकारी प्रयोगशालाओं के द्वारा भी नये विचार आते हैं जो नवीन उत्पादों के विकास में सहायक होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(viii) **अन्य स्त्रोत** –विचार प्राप्ति के कई अन्य स्त्रोत भी है, जैसे मध्यस्थ, विनियोक्ता, विदेशी बाजार, पत्र–पत्रिकाएँ, व्यापार संघ, चैम्बर, ग्राहको के पत्र, इन्जीनियर, आविष्कारक, विभागीय प्रतिवेदन, स्वतंत्र शोधकर्ता एवं विचारक आदि।

2. **विचारो की जाँच परख (Screening of the ideas)**– उत्पाद विकास की प्रक्रिया के प्रथम चरण में जहाँ अधिकाधिक विचारों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता हैं। जबकि इस चरण से ही प्रत्येक अगले चरण में उत्पाद विचारों को कम करने का प्रयास किया जाता है।

उत्पाद विकास प्रक्रिया के प्रथम चरण में प्राप्त या संकलित उत्पाद विचारों को इस दूसरे चरण में जाँचा–परखा एवं उनका मूल्याकंन किया जाता है। उनकी जाँच परख एवं मूल्याकंन के बाद उन विचारों को त्याग दिया जाता है जो संस्था के लिए किसी भी कारण से अनुपयोगी होते हैं। समान्यतः निम्नांकित प्रमुख मानदण्डो पर उत्पाद विचारों को जाँचा –परखा जाता है एवं उनका मूल्याकंन किया जाता हैः

(i) संस्था के उद्देश्य के साथ अनुकूलता;

(ii) विचारों की व्यावहारिकता;

(iii) विचारों के अपनाने पर आवश्यक पूँजी;

(iv) कच्चे माल एवं अन्य साधनों की उपलब्धता;

(v) तकनीकी एवं प्रबन्धकीय योग्यता की उपलब्धता;

(vi) उत्पाद की नवीनता;

(vii) विपणन योग्यता;

(viii) संस्था की ख्याति पर प्रभाव; इत्यादि।

उत्पाद विचारों की जाँच–परख, उत्पाद विकास प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण चरण है। अतः इसमें पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए। इसमें थोड़ी–सी भी असावधानी से प्रतिकूल या अव्यावहारिक उत्पाद विचार छँटनी होने से रूक जाता है और प्रक्रिया के अलगे चरण में पहुँच जाता है। ऐसे में संस्था को समय, श्रम तथा धन की भारी हानि उठानी पड़ सकती है। इतना ही नहीं, अनुपयोगी विचार को अगले चरण में पास होने देने से कई बार बहुत उपयोगी विचार से भी ध्यान हट जाता हैं। इसकी भी संस्था को कीमत चुकानी पड़ सकती है। इस सन्दर्भ में **भोएल तथा गुल्टीनन ने ठीक ही लिखा है कि ''अच्छे विचारों को तिलांजलि देने से अवसर खोने लगते हैं तथा कमजोर विचारों को अपनाने से लागत बढ़ने लगती है।''**

3. **व्यावसायिक वि□लेशण (Business analysis)** – जाँच–परख के बाद जो उत्पाद विचार दमदार एवं हितकारी नजर आते हैं, उनका व्यावसायिक विश्लेषण किया जाता है। दूसरे शब्दों में जाँच–परख एवं मूल्याकंन के बाद शेष बचे उत्पाद विचारों की व्यावसायिक उपादेयता, व्यावहारिकता एवं लाभदेयता का अध्ययन किया जाता है। सामान्यतः उत्पाद विचारों के व्यावसायिक विश्लेषण में निम्नांकित बातों का विश्लेषण किया जाता है :

(i) **माँग वि"लेशण**, जिसमें सभी उत्पाद विचार से निर्मित माल की सम्भावित माँग का विश्लेषण एवं अनुमान किया जाता है।

(ii) **लागत वि"लेशण**, जिसमें उत्पाद निर्माण के लिए आवश्यक पूँजी, उत्पाद निर्माण एवं विपणन की लागतें आदि का अनुमान एवं विश्लेषण किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(iii) **लाभदेयता वि□लेशण,** जिसमें उत्पाद की लाभदेयता का अनुमान लगाया जाता है। इस हेतु उत्पाद का ''ब्रेक–इवन विश्लेषण'' तथा इससे सम्बन्धित कई अनुपात विश्लेषण किये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, उत्पाद विचार का व्यावसायिक विश्लेषण के समय सम्पूर्ण व्यावसायिक वातावरण के घटकों, अर्थव्यवस्था की स्थिति, उत्पाद का सम्भावित जीवन चक्र आदि का भी विश्लेषण किया जाता है।

4. **उत्पाद विकास (Product development)**–इस अवस्था में उत्पाद विचार को उत्पाद में परिवर्तित किया जाता है। इस चरण में उत्पाद को वास्तविक रूप से बनाया जाता है तथा उसका परीक्षण किया जाता है। इस प्रक्रिया में उत्पाद के रंग, रूप, गुण, आकार, किस्म, पैंकेजिंग, नाम आदि का भी निर्धारण किया जाता है। उत्पाद विकास के इस चरण में निम्नांकित प्रकार की क्रियाएँ की जाती है :

(i) **लक्षण निर्धारण क्रियाएँ,** जिनके अन्तर्गत विपणन विभाग ग्राहकों की इच्छाओं, आवश्यकताओं, पसन्दगी, वरीयता आदि के आधार पर उत्पाद के लक्षणों को निर्धारित करता हैं। इसमें उत्पाद की किस्म, रंग, रूप, आकार, डिजाइन, आदि को निर्धारित किया जाता है।

(ii) **वैज्ञानिक एवं इंजीनियरी क्रियाएँ,** जिनके अन्तर्गत उत्पाद को भौतिक स्वरूप या मूर्त रूप में तैयार किया जाता है। विपणन विभाग द्वारा निर्धारित उत्पाद के लक्षणों के अनुरूप ही उत्पाद को तैयार किया जाता है।

(iii) **क्रियात्मक परीक्षण,** जिसमें उत्पाद की क्रियाशीलता/संचालन की जाँच की जाती है।

(iv) **उपभोक्ता वरीयता परीक्षण,** जिसमें उपभोक्ताओं की वरीयता की जाँच की जाती है। इस हेतु कुछ उपभोक्ताओं से उत्पाद का परीक्षण भी कराया जाता है।

(v) **विपणन मिश्रण का निर्धारण** – जिसमें उत्पाद के विपणन कार्यो के मिश्रण को निर्धारित किया जाता है। इसमें उत्पाद का नाम, पैकेजिंग, लेबलिंग वितरण विधियों, संवर्द्धनात्मक साधनों आदि का निर्धारण सम्मिलित है।

5. **जाँच विपणन (Test Marketing)** –उत्पाद विकास के पिछले चरण में उत्पाद को वास्तविक स्वरूप में लाया जाता है तथा उसकी कुछ उपभोक्ताओं से जाँच भी करायी जाती है। किन्तु इस अवस्था या चरण में उत्पाद की उपभोक्ताओं से जाँच कराने तथा उनकी प्रतिक्रियाएँ जानने हेतु उसे वास्तविक बाजार में ही प्रस्तुत कर दिया जाता है। यद्यपि यह बाजार बहुत सीमित क्षेत्र का ही होता है। जाँच विपणन वस्तुतः एक प्रकार का विपणन अनुसंधान ही है। जाँच विपणन के प्रमुख उद्देश्य एवं लाभ निम्नानुसार है :

(i) भावी उत्पाद का **विक्रय सम्भाव्यता** को ज्ञात करना।

(ii) उत्पाद के सम्बन्ध में उपभोक्ताओं एवं व्यापारियों के **विचारों एवं प्रतिक्रियाओं** को जानना।

(iii) उत्पाद **विपणन कार्यक्रम की प्रभाव□ीलता** का मूल्याकंन करना।

(iv) उत्पाद के **दोशों का पता** लगाना।

(v) **प्रतिस्पर्धियों** की प्रतिक्रियाओं को जानना।

(vi) उत्पाद का **उचित मूल्य** निर्धारित करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(vii) वैकल्पिक उत्पाद के विपणन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता को जाँचना।

6. **उत्पाद का व्यवसायीकरण (Product Commercialisation)**– जब जाँच विपणन के परिणाम उत्साहजनक आ जाते हैं, तो उत्पाद का व्यवसायीकरण किया जाता है। उत्पाद व्यवसायीकरण से तात्पर्य उत्पाद को वास्तव में पूरे बाजार में प्रस्तुत करने से है।

उत्पाद के व्यवसायीकरण से पूर्व एक व्यापक विपणन योजना तैयार की जाती है। इस योजना में निम्नांकित बातों की व्यवस्था की जाती है:

(i) नये उत्पाद के उत्पादन हेतु आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था करना, जिनमें पूँजी, यंत्र, उपकरण, कच्चा माल आदि प्रमुख है।

(ii) बाजार क्षेत्रों का निर्धारण करना।

(iii) लक्ष्य बाजारों के लिए विपणन रणनीति बनाना।

(iv) मूल्य नीति, उधार नीति आदि का निर्धारण करना।

(v) वितरण मध्यस्थों की व्यवस्था करना।

(vi) संवर्द्धनात्मक निर्णय एवं व्यवस्था करना।

(vii) विक्रय दल की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

(viii) उत्पाद की सतत् किस्म नियन्त्रण की व्यवस्था करना।

(ix) अन्य विभागों से समन्वय करना।

(x) नवीन उत्पाद के नाम, ब्राण्ड, पेटेन्ट, पैंकेजिंग आदि के पंजीयन एवं सुरक्षा की व्यवस्था करना।

(xi) उत्पादों के परिवहन एवं भण्डारण की व्यवस्था करना।

उत्पाद का व्यवसायीकरण करने के बाद उसका निरन्तर अनुगमन भी करना पड़ता है। इससे उत्पाद विपणन में समस्याएँ नही आती है तथा माल के छोटे–मोटे दोषों को यथासमय दूर किया जा सकता है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रक्रिया का पालन करके कोई भी संस्था अपने उत्पाद को बाजार में प्रस्तुत कर सकती है।

उत्पाद विकास के लाभ (Advantages of Product Development)

आज के युग में उत्पाद विकास प्रत्येक संस्था के लिए अनिवार्य है क्योंकि इसमें व्यावसायिक फर्मों, समाज एवं राष्ट्र को अनेक लाभ होते है, जैसे –

1. उत्पाद विकास के माध्यम से उपभोक्ताओं को अधिकतम सन्तुष्टि होती हैं।
2. निर्माताओं के बजाार में वृद्धि होती है, फलस्वरूप उत्पादों का बाजार विस्तृत हो जाता है।
3. उत्पाद विकास से जीवन–चक्र की आयु बढ़ जाती है।
4. उत्पाद विकास कार्यक्रम से उत्पाद रेखाओं का विस्तार एवं संकुचन किया जाता है। जिससे अर्थव्यवस्था में माँग–पूर्ति सन्तुलित रहती है, रोजगार के अवसरों में कमी नहीं होने पाती है। परिणामस्वरूप आर्थिक प्रगति में स्थायित्व आता है।
5. उत्पाद विकास ग्राहकों को स्थायी बनाता है और नये बाजारों का विकास करता है।
6. उत्पाद विकास के माध्यम से प्रतियोगियों का सामना करना सरल हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. नवाचार नये उत्पादों के विकास को सम्भव बनाता है एवं सरलीकरण उत्पाद रेखाओं की अनावश्यक जटिलता को दूर करके ग्राहको के उत्पाद चयन को विवेकपूर्ण सुगमता उपलब्ध करता है।

8. उत्पाद सुधार एवं संवेष्ठन सुधार ग्राहकों को सामाजिक प्रतिष्ठा एवं मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टि उपलब्ध करते है।

9. उत्पाद विकास कार्यक्रम संस्था के लाभों में वृद्धि करते है।

10. उत्पाद विकास, विक्रय संवर्द्धन, सेवाओं एवं आश्वासनों आदि पर उत्पादों के प्रभावों को प्रदर्शित करता है और उत्पादों के सुधार तथा निष्पादित–मूल्याकंन के आधारों के विकास को समझाता है।

उत्पाद नियोजन एवं विकास (Product planning and development)

आ□ाय :– उत्पाद नियोजन एवं विकास का आशय उत्पाद प्रबन्ध के उस भाग से है जिसके अन्तर्गत एक उत्पाद अथवा वस्तु के जीवन की जन्म से लेकर उसका उत्पाद रेखा में नवीन उत्पादों को जोड़ने, चालु उत्पादों की डिजाईनों, आकारों, उपयोगी, गुणो एवं पैंकेज, विशेषताओं में सुधार करने तथा अवांछित उत्पादों को पृथक करने तक के नियोजन निर्देशन एवं नियंत्रण की सभी परिस्थितियां सम्मिलित है।

उत्पाद नियोजन एवं विकास का क्षेत्र (Scope of Product Planning & Development)

उत्पाद नियोजन एवं विकास का क्षेत्र काफी विस्तृत है। इसमें वे सभी क्रियाएँ एवं उत्पाद विशेषताएँ सम्मिलित है जो कि उत्पाद के बाजार को प्रभावित कर सकती है। प्रमुखतः उत्पाद निर्णय एवं विकास उत्पाद डिजायन, उत्पाद आकार, उत्पाद मूल्य, ब्राण्ड, पैंकेजिंग, गारण्टी एवं सेवा, नये नये वस्तु प्रयोग, उत्पाद किस्म आदि क्रियाओं को इसके क्षेत्र में सम्मिलित किया जा सकता है।

1. **भा□ोध (Research)** – उत्पाद नियोजन एवं विकास के लिए उत्पाद शोध, उपभोक्ता शोध एवं अभिप्रेरण शोध करने होते हैं। इनमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं :–

   (i) **उत्पाद भा□ोध (Product Research)** – उत्पाद शोध एक उत्पाद का विकास है जो एक निश्चित उपभोक्ता समूह की आवश्यकताओं को पूरा करता है। इसमें उपभोक्ताओं द्वारा उत्पाद प्रयोग, उत्पाद डिजाइन, विद्यमान उत्पादों का मूल्याकंन, सुधार आदि की आवश्यकता का निर्धारण किया जाता है।

   (ii) **उपभोक्ता भा□ोध (Consumer Research)** – उपभोक्ता शोध में उपभोक्ताओं की इच्छाओं, आवश्यकताओं, पसन्द, नापसन्द एवं वरीयताओं आदि का निर्धारण किया जाता है।

   (iii) **उपभोक्ता अभिप्रेरणा भा□ोध (Consumer Motivation Research)** – यह चेतन एवं अचेतन प्रेरणा का अध्ययन है जिसमें उन गहन कारणों को खोजने का प्रयास किया जाता है, जिनके कारण व्यक्ति अथवा उपभोक्ता क्रय करते हैं। इसमें उपभोक्ता के हृदय में छिपी भावनाओं एवं प्रेरणाओं को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। इसलिए इसके अन्तर्गत मानव प्रेरणा से सम्बन्धित सभी प्रकार के शोध सम्मिलित है।

2. **आव□यकताओं एवं इच्छाओं का निर्धारण (Determining needs, wants etc.)** – उपयुर्क्त अनुसंधानों के परिणामों के आधार पर उपभोक्ताओं की इच्छाओं, आवश्यकताओं, पसन्द, नापसन्द, वरीयताओं आदि को निर्धारित किया जाता है।

3. **उत्पाद लक्षणों का निर्धारण** – उत्पाद नियोजन एवं विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र या घटक उत्पाद लक्षणों का निर्धारण करना है। इसमें निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया जाता है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) **उत्पाद नाम (Product Name)** –– उत्पाद नाम का अर्थ वस्तु का नाम तय करने या देने से है, जैसे–मोबाइल फोन, टी.वी., डिस्क, कम्प्यूटर, केलकुलेटर, सेन्ट्रो कार, हीरो, होण्डा, विलसन, पैन, सेमसंग फ्रीज एवं खैतान पंखा आदि। उत्पाद का नाम ऐसा होना चाहिए जिसको आसानी से पुकारा जा सके, याद रखा जा सके एवं जो वस्तु की किस्म एवं निर्माता के नाम को प्रदर्शित करता हो।

(ii) **उत्पाद आकार (Product Size)** – आकार का अर्थ वस्तु की आकृति से है। आकृति कई प्रकार की हो सकती है, जैसे–छोटी, बड़ी एवं मध्यम। आज का उपभोक्ता विभिन्न आकारों में वस्तुओं की माँग करता है और विपणनकर्ता उसे पूरी करने का प्रयास करता है। जैसे–बाजार में फर्नीचर, रेडीमेड़ वस्त्र, जूते, कम्प्यूटर, टेलीविजन, घड़ियाँ एवं सामान्य उपयोग की नित्य–प्रतिदिन की वस्तुएँ आदि। उत्पादों का आकार उत्पाद की प्रकृति, उसके उपयोग, प्रतियोगिता, वैधानिक नियम, परिवहन सुविधा, उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति एवं तकनीकी विपणन क्षमता, संरक्षण जरूरत आदि पर निर्भर करता है। अतएव इन घटकों को ध्यान में रखते हुए आकार सम्बन्धी निर्णय लेने चाहिए।

(iii) **उत्पाद रंग (Product Colour)** – उत्पाद का रंग, उत्पाद डिजाइन एवं उपभोक्ता स्वीकरण को प्रभावित करता है। इसलिए उत्पाद नियोजन एवं विकास करते समय उत्पाद के रंग पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कई देशों और जातियों में रंग के साथ भावनात्मक सम्बन्ध देखा जाता है। जैसे–भारत में हिन्दु काले रंग को अशुभ मानते हैं, जबकि मुसलमान हरे रंग को शुभ मानते हैं। अतः उत्पाद के रंग के बारे में काफी सोच–समझकर, विचार–विमर्श एवं खोजबीन करने के बाद ही अन्तिम निर्णय लेना चाहिए। आज का उपभोक्ता वस्तु क्रय खोजबीन करते समय उसके आकार, मूल्य, डिजाइन, फैशन, एवं टिकाउपन के साथ–साथ इसके रंग पर भी विशेष ध्यान देता है। अतः इस बदलते हुए फैशन युग में वस्त्र, मोबाईल, टी.वी., भवन निर्माण, फर्नीचर एवं सजावट आदि चाजों में रंग का विशेष महत्त्व है।

(iv) **उत्पाद मूल्य (Product Value)** – उत्पाद का मूल्य निर्धारित करते समय उत्पाद की माँग एवं उसकी चलनशीलता, प्रतियोगिता, उपभोक्ता की क्रय शक्ति, वितरण–माध्यम, सरकारी प्रतिबन्ध एवं उपभोक्ता की मानसिकता आदि को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए। इसका कारण यह है कि मूल्य निर्धारण में किसी भी प्रकार की कोई भूल या गलती निर्माता के समस्त प्रयासों को असफल कर सकती है।

(v) **उत्पाद भौली (Product Style)** – किसी कला के क्षेत्र में विशिष्ट या भिन्नात्मक तरीके का प्रदर्शन करने या इसे ग्रहण करने का अर्थ शैली है। हम अपने विभिन्न उत्पादों में कई शैलिया देख सकते है, जैसे मोटर गाड़ियो की कई शैलियाँ है – मारूति वैन, टाटा सूमो, स्टेशन वेगन आदि। उत्पाद शैली अनगिनत वस्तुओं के लिए नियोजित की जाती है, जिनमें छोटे–बड़े यन्त्र, उपकरण, मोटर बोट, स्नानागार–सामग्री एवं रसोईघर आदि सम्मिलित है।

(vi) **उत्पाद अभिकल्पना (Product Design)** – उत्पाद अभिकल्पना यह निश्चित करती है कि वाँछित ग्राहक सेवा प्रस्तुत करने के लिए तैयार माल में कौनसे गुण होने चाहिए ? ये गुण ऐसी विशेषताएँ लिए हो सकते है, जैसे–रूप, आकार, रासायनिक रचना,तोल, रंग, फिनिश या अन्य कोई विशेषता जो सार्थक रूप से उत्पाद की उपयोगिता को निश्चित करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अभिकल्पनाएँ उत्पाद को एवं वितरकों को विपणन तथा निर्माणात्मक लाभों की उपलब्धि कराती है और ग्राहकों की परिवर्तन के प्रति आवश्यकता एवं लगाव की सन्तुष्टि में सहायता प्रदान करती है। यही कारण है कि हवाई–जहाज एवं हेलीकॉप्टर से लेकर कारों, रेफ्रीजरेटर्स, घड़ियो, मोबाइलों, पैनों, कूलरों, वस्त्रों एवं फर्नीचर आदि की डिजायन पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाने लगा है।

(vii) **उत्पाद किस्म (Product Quality)** – किस्म का अर्थ उत्पाद में अन्तर्निहित विशेषताओं के संघटन, जैसे– उत्पादन का कड़ापन, मोटापन, शक्ल, लम्बाई–चौड़ाई, रंग, तथा उत्पाद तत्व आदि से है। उत्पाद नियोजन एवं विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत उत्पाद की किस्म को, सही बनाने का प्रयास करना चाहिए। यहाँ सही किस्म का अर्थ किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने वाले उत्पाद गुणों से होता है। अतः विशिष्ट उपयोगों को ध्यान में रखते हुए उत्पाद की सही किस्म का निर्माण एवं नियन्त्रण किया जाना चाहिए। इसके लिए विपणन प्रबन्धकों को चाहिए कि वे आधुनिक किस्म नियन्त्रण व्यवस्था में एवं उत्पाद परीक्षण व्यवस्था अपनाने के लिए उत्पाद नियोजन एवं विकास प्रबन्धकों को निर्देशित करें। उपभोक्ता प्राथमिकता वितरण विश्लेषण तकनीक को इस क्षेत्र में अपनाना लाभप्रद रहता है।

(viii) **उत्पाद फै□ान (Product Fashion)** – एक वस्तु के विषय में व्यक्तियों एवं समूह की सम्मति को उत्पाद फैशन कहते हैं। उत्पाद जीवन–चक्र की तरह फैशन का चक्र होता है। समुद्री लहरों की भाँति फैशन चक्र भी धीरे–धीरे बनता है। लेकिन जैसे ही यह शिखर पर पहुँच जाता है, तेजी से घटने लगता है। अतः एक फैशन डिजाइनर को चाहिए कि वह नवीनता को एकदम बनाये रखें। बुनियादी शैली में लगातार आड़म्बर बनाये रखे एवं एक शैली अपने फैशन अपने फैशनकाल से गुजर रही हो तो ग्राहक का ध्यान वस्तु की एक विशेषता की ओर अवश्य लगाये।

(ix) **उत्पाद ब्राण्ड (Product Brand)** – कोई भी व्यापारिक चिन्ह् जिसके माध्यम से किसी उत्पाद को सही तरीके से पहचाना जा सके, उसे उत्पाद ब्राण्ड/छापा नाम कहते हैं। अन्य शब्दों में, सभी व्यापारचिन्ह् ब्राण्ड है और इसमें वे शब्द, लेख या अंक शामिल है, जिनका विस्तृत या संक्षिप्त उच्चारण हो सकता है, जैसे– हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड़, खजूर छाप डालडा, ब्रुक बॉण्ड इण्डिया लिमिटेड़ का रेड लेबल चाय, कोलकाता की चाय पर ताजमहल का चित्र, बाटा, कोका–कोला, हैरीसन लॉक, टाटा एवं डी.सी.एम. आदि।

उत्पाद ब्राण्ड का चयन करने समय अनेक बातों को ध्यान में रखना चाहिए, जैसे– (1) ब्राण्ड का नाम साधारण एवं सूक्ष्म हों, (2) पहचानने योग्य हो, (3) उसे छपवाने या लिखवाने या प्रदर्शन करने में मितव्ययी हों, (4) ब्राण्ड का नाम उत्पाद की विशेषताओं को प्रकट करने वाला हों, (5) सुझावात्मक हों, (6) अन्य ब्राण्डों से भिन्न हो एवं (7) सरल उच्चारण हो।

(x) **उत्पाद पैकेजिंग (Product Packaging)** – पैकेजिंग का अर्थ किसी उत्पाद को किसी में बन्द करने, ढंकने या लपेटने आदि क्रिया से है ताकि वह सुरक्षित रह सके एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से ले जाया जा सके। अतः एक विपणन प्रबन्धक को अच्छे पैकेजिंग हेतु अनेक बातों को ध्यान में रखना चाहिए। जैसे– सुरक्षा, ध्यानाकर्षण, क्रय कार्यवाही, पहचान, इच्छा, स्मरण कराते रहना, वस्तु की छवि, उपयोग एवं परिवहन सुविधा आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(xi) **उत्पाद लेबल एवं लेबलिंग (Product Lable and Labeling)** – उत्पाद लेबल सूचना देने वाली वह चिट, लपेटने वाला वह कागज या सील और वस्तु से संलग्न अन्य लिखित, मुद्रित या ग्राफिक सामग्री है जो उत्पाद अथवा पैंकेज से जुड़ी हेती है। लेबिल्स के अनेक प्रकार है –छाप लेबिल, वर्ग लेबिल, विवरणात्मक या सूचनात्मक लेबिल और संयोजन लेबिन आदि।

उत्पाद नियोजन एवं विकास में लेबल एवं लेबलिंग का व्यावसायिक एवं सामाजिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है। यह अनुचित प्रतियोगिता के विरूद्ध सुरक्षा करता है, उपभोक्ताओं को सुरक्षा मिलती है, यह आर्थिक उद्देश्य की अनुरूपता को दर्शाता है एवं इससे उत्पाद के उपयोग एवं प्रयोगों की जानकारी होती है।

(xii) **व्यापार चिन्ह (Trademark)** – जब किसी अक्षर, नाम, चिन्ह, डिजाइन का चित्र अथवा इन सबके मिश्रण का कानून के अन्तर्गत पंजीयन करा लिया जाता है तो इसे व्यापार चिन्ह् कहते है। व्यापार चिन्ह् के लिए किसी भी वस्तु का नाम या चिन्ह् का प्रयोग किया जाता सकता है, जैसे–बिन्नी का भेड़, मोदी का मुर्गा, डालडा वनस्पति का नारियल का पेड़ एवं एयर इण्डिया का महाराजा आदि।

व्यापार चिन्ह् का अंग विस्तृत हैं क्योंकि विभिन्न उत्पादों के लिए एक ही व्यापार चिन्ह् का उपयोग किया जा सकता है। व्यापार चिन्ह् का उपयोग केवल वही निर्माता अथवा विक्रेता कर सकता है जिसने इसका अपने लिए रजिस्ट्रेशन कराया हो। अतः व्यापार चिन्ह् की नकल करने वाले प्रतिस्पर्द्धियों के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही करके हर्जाना वसूल किया जा सकता है।

(xiii) **उत्पाद सेवाएँ (Product Service)** – उत्पाद सेवाओं का अर्थ उन कार्यो, क्रियाओं, लाभों अथवा सन्तुष्टियों से होता है जो कि वस्तुओं के विक्रय के सम्बन्ध में उपलब्ध की जाती है, जैसे – वस्तु पसन्द न आने पर लौटाना, वस्तु को बदल देना, मरम्मत सेवा आदि।

(xiv) **उत्पाद गारण्टी (Product Gurantee)** – उत्पाद गारण्टी उन सन्तुष्टियों के समूह का एक भाग है जिसे उत्पाद क्रय के समय ग्राहक प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में उत्पाद गारण्टी का अर्थ विक्रेता के उस शर्त युक्त आश्वासन से होता है कि वस्तु की किस्म सही है एवं वस्तु किस उद्देश्य से खरीदी जा रही है उसकी पूर्ति करने में सक्षम है। उत्पाद गारण्टी वस्तु की बिक्री को बहुत अधिक प्रभावित करती है। यही कारण है कि उत्पाद गारण्टी आधुनिक विपणन व्यवस्थाओं का अभिन्न अंग बनती जा रही है। उदाहरणार्थ – घड़ियाँ, फ्रीज, सिलाई मशीन, मोटर साइकिलें, मोटरगाड़ियाँ, पानी को ऊपर चढ़ाने की मशीनें, (जेट पम्प,सबमर्सीबल एवं टिल्लू पम्प आदि) तथा पंखों आदि उत्पादों के बारे में वितरक एवं उत्पादक नाना प्रकार की गारण्टी प्रदान कर रहे है। परिणामस्वरूप इनके उत्पादों की बिक्री अधिक होती है एवं संस्था की ख्याति बढ़ती है।

(xv) **उत्पाद जिम्मेदारी (Product Liability)** – उत्पाद नियोजन एवं विकास क्षेत्र के अन्तर्गत उत्पाद जिम्मेदारी में सम्मिलित है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियमों में निरन्तर परिवर्तन हो रहे है एवं दोषपूर्ण उत्पादों एवं सेवाओं के प्रयोग से उपभोक्ताओं को हानि पहुँचती है। उसकी जिम्मेदारी उत्पाद निर्माताओं पर डाली जाने लगी है। अतः इससे मुक्ति पाने के लिए एक निर्माता को इन पहलुओं पर ध्यान देना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **उत्पाद नवाचार (Product innovations)** – उत्पाद नियोजन एवं विकास के लिए उत्पाद नवकरण परमावश्यक है। नवाचार से तात्पर्य किसी नये विचार या नये उत्पाद या नयी उत्पादन प्रक्रिया या नये कच्चे माल को अपनाने से है। जिससे नये, अधिक अच्छे एवं सुविधाजनक उत्पादों का विकास किया जा सके। इसके परिणामस्वरूप संस्था के संतुष्ट ग्राहकों की संख्या, कुल विक्रय लाभों एवं ख्याति में अभिवृद्धि होती है। नवकरण निम्नांकित तीन प्रकार से किया जाता है :

(i) **नवीन उत्पादों/सेवाओं का सृजन एवं विकास** – नवकरण का सर्वाधिक प्रचलित तरीका है, नये–नये उत्पादों सेवाओं का सृजन एवं उत्पादन करना। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोग किये जाने वाले नित्य नये उत्पादों/सेवाओं का सृजन किया जा रहा है। खाना पकाने, कपड़े धोने के स्वचालित यंत्र विकसित हो रहे है। क्वार्ट्ज़ घड़ियाँ विकसित कर ली गई है। परिवहन एवं संचार के नये–नये साधन उपलब्ध हो रहे है। इतना ही नहीं, खान–पान की आधारभूत व्यवस्था में भी नवकरण हो गया है। सदियों पुरानी खानपान व्यवस्था का स्थान आधुनिक ''फास्ट फुड'' एवं ''इन्सटेण्ट ड्रिंक'' ने ले लिया है।

(ii) **उत्पादों सेवाओं के रूप में सुधार एवं विकास** – नवकरण के द्वारा उत्पादों के स्वरूप में सुधार हो रहा है। इनके लक्षणों में परिवर्तन हो रहा है। उदाहरणार्थ, आज कारों, स्कूटरों आदि के स्वरूप में बहुत नवकरण हो रहा है। इनका रूप उपभोक्ता की आवश्यकता एवं सुविधा को ध्यान में रखकर परिवर्तित किया जा रहा है।

(iii) **विद्यमान प्रक्रियाओं में सुधार एवं विकास** – कार्य की विद्यमान प्रक्रियाओं में परिवर्तन करके भी नवकरण किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, पिछले कुछ वर्षो में पुस्तक प्रकाशन की प्रक्रिया एवं तकनीक में आमूलचूल नवकरण हुआ है। इससे उत्पादन लागत में भी कमी हुई है; साथ ही सुविधा भी बढ़ी है।

5. **उत्पादों के नये उपयोग (New Uses of the Products)** – नये प्रयोगों का अर्थ है, वस्तु किन–किन नये कार्यों में काम आ सकती है। किसी उत्पाद या वस्तु के नये–नये उपयोगों का पता लगाना उत्पाद नियोजन एवं विकास के क्षेत्र में आता है। किसी वस्तु के नये उपयोगों की खोज करना एवं उन्हें ग्राहकों तक पहुँचाना किसी भी व्यवसाय की विपणन प्रणाली को सफल बनाता है। अतः नये–नये प्रयोगों की जानकारी लेने हेतु अनुसन्धान कराना, ग्राहकों का सर्वेक्षण करना एवं उनके सुझाव लेना व्यवसाय का दैनिक कार्य होना चाहिए। जिससे उत्पाद का जीवन–चक्र लम्बा बन सके।

6. **उत्पाद सरलीकरण (Product simplification)** – जब कोई संस्था अनेक उत्पादों के स्थान पर केवल एक उत्पाद का निर्माण करने का निर्णय लेती है तो इसे उत्पाद सरलीकरण कहते हैं। इसमें अनेक उत्पाद श्रृंखलाओं के स्थान पर संस्था केवल एक ही उत्पाद श्रृंखला रखती है। उत्पाद सरलीकरण की नीति अत्यन्त सोच–विचार के बाद ही अपनानी चाहिए। इस नीति को अपनाते समय निम्नांकित बातों पर विचार करना चाहिए :

(i) **उत्पाद की प्रकृति** – उत्पाद की प्रकृति को भली प्रकार समझ लेना चाहिए। उसकी तकनीकी एवं भौतिक प्रकृति, उत्पाद के उपयोग आदि से सम्बन्धित सभी लक्षणों पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

(ii) **प्रतिस्पर्धा का स्तर** – उत्पाद की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति का विश्लेषण कर लेना चाहिए। यदि प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति में सुधार हो तो इसे अपना लेना चाहिए।

(iii) **विक्रय पर प्रभाव** – सरलीकरण से विक्रय में वृद्धि हो सकती हो तो इसे अपनाना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. **उत्पाद विविधिकरण (Product Diversification)** – जब कोई संस्था अपने विद्यमान उत्पाद श्रृंखला से भिन्न किसी उत्पाद का उत्पादन करती है तो इसे ही उत्पाद विविधिकरण कहते है। उदाहरण के लिए, कपड़ा बनाने वाली संस्था द्वारा सीमेण्ट बनाना, स्त्री श्रृंगार प्रसाधन निर्माता संस्था द्वारा पुरूषों के लिए रेजर ब्लेड़ शेविंग क्रीम बनाना आदि उत्पाद विविधिकरण ही है। उत्पाद विविधिकरण सामान्यतः निम्नांकित प्रकार से किया जाता है।

(i) **सम्बन्धित उत्पाद श्रृंखलाओं में विविधकरण (Diversification into related product lines)** – जब कोई संस्था अपनी विद्यमान उत्पाद श्रृंखला से मिलता–जुलता कोई अन्य उत्पाद बनाना प्रारम्भ करती है तो उसे ही सम्बन्धित उत्पाद श्रृंखला विविधिकरण कहते हैं। उदाहरणार्थ, नहाने के साबुन की उत्पाद श्रृंखला वाली संस्था द्वारा कपड़े धोने के पाउडर का निर्माण करना इसी प्रकार का विविधिकरण है। ऐसा विविधिकरण करके विद्यमान वितरण मध्यस्थों, विज्ञापन सेवाओं तथा तकनीक का पूर्ण उपयोग किया जा सकता है।

(ii) **असम्बन्धित उत्पाद श्रृंखलाओं में विविधिकरण (Diversification into unrelated product lines)** – जब कोई सस्था अपनी विद्यमान उत्पाद श्रृंखला से असम्बद्ध या भिन्न प्रकार के उत्पाद का निर्माण करती है तो उसे असम्बन्धित उत्पाद श्रृंखलाओं में विविधिकरण कहा जाता है। ऐसा विविधिकरण नये उद्योग में प्रवेश करने की दृष्टि से किया जाता है। इससे एक उत्पाद क्षेत्र में मंदी की दशा में, दूसरी उत्पाद श्रृंखला पर ध्यान देकर अपने–अस्तित्व को बनाये रखा जा सकता है।

8. **उत्पाद विभेदीकरण (Product differentiation)** – उत्पाद नियोजन एवं विकास के अन्तर्गत उत्पाद विभेदीकरण का कार्य भी सम्मिलित है। उत्पाद विभेदीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत कोई संस्था अपने उत्पादों को अन्य संस्था के उत्पादों से भिन्न बनाने का प्रयास करती है।

आधुनिक तकनीकी एवं पंजीकृत युग में कोई भी संस्था दूसरी संस्था के समान ही उत्पादों का निर्माण कर सकती है। अतः सभी संस्थाओं के उत्पादों का आन्तरिक भौतिक स्वरूप लगभग एकसमान ही होता है। अतः इन्हें बेचने में अनेक कठिनाईयाँ आती है। इन्हीं कठिनाइयों को कम करने के लिए उत्पादक उनके बाह्य लक्षणों में कुछ अन्तर कर देते है। फलतः उपभोक्ता मानसिक रूप से यह मानने लगते हैं कि दो संस्थाओं के उत्पादों में कुछ अन्तर या भेद है जबकि यह भेद वास्तविक या बहुत महत्वपूर्ण नहीं होता है।

9. **बाजार विभक्तिकरण (Market segmentation)** – उत्पाद नियोजन एवं विकास के लिए बाजार विभक्तीकरण बहुत लाभदायी कार्य है। इसके द्वारा बाजार विशेष के लिए उपयोगी उत्पादों का नियोजन एवं विकास करना आसान हो जाता है।

बाजार विभक्तिकरण वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी विशिष्ट उत्पाद के सम्पूर्ण विषम बाजार को कई उप–बाजारों या भागों में बाँटा जाता हैं, जिससे कि बाँटा गया प्रत्येक उप–बाजार या भाग सभी महत्त्वपूर्ण पहुलओं में एक समान हो जाता है। प्रत्येक बाजार में अनेक उपभोक्ता/ग्राहक होते हैं। वे सभी एक समान नहीं होते हैं। वे आयु, लिंग, वैवाहिक स्थिति, शिक्षा, व्यवसाय, आय, धर्म, वर्ण, जाति आदि आधारों पर भिन्न होते हैं। उनकी इच्छाएँ, आवश्यकताएँ, पसन्द, वरीयता आदि भी भिन्न–भिन्न होती है। ऐसे सभी उपभोक्ताओं/ग्राहको को एक साथ समझा नहीं जा सकता है। इस सब को ठीक से समझने तथा उनकी आवश्यकताओं, इच्छाओं आदि के अनुसार उपयोगी उत्पादों का नियोजन एवं विकास करने लिए उनका विभिन्न आधारों पर समूहीकरण करना पड़ता है। इस प्रकार के समूहीकरण को ही बाजार विभक्तिकरण के नाम से जाना जाता है। बाजार विभक्तिकरण सामान्यतः निम्नांकित आधारों पर किया जा सकता है।

(i) भौगोलिक आधार पर;

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) जनसंख्या के आधार पर ;

(iii) सामाजिक–मनोवैज्ञानिक आधार पर;

(iv) उत्पादों के आधार पर;

(v) लाभों के आधार पर;

(vi) मात्रा के आधार पर;

(vii) विपणन घटकों के आधार पर;

(viii) जीवन शैली के आधार पर।

10. **उत्पाद प्रमाणीकरण (Product Standarisation)-** प्रमाप वह मापदण्ड होता है जो वास्तविक परिणामों की जाँच हेतु आधार प्रदान करता है। इस दृष्टि से प्रमापीकरण में निर्मित वस्तुओं के मापदण्ड स्थापित किए जाते हैं, उन वस्तुओं का निरीक्षण किया जाता है ताकि यह देखा जा सके कि वे मापदण्डों के अनुरूप है और जहाँ आवश्यक हो, इन वस्तुओं को निर्धारित मापदण्डों के अनुरूप ढ़ेरियों में छाँटा जाता है। सामान्यतः उत्पाद प्रमाप व्यावसायिक संस्थाओं, व्यापार परिषदों एवं सरकारी एजेन्सियों द्वारा स्थापित किये जाते हैं।

    उत्पाद प्रमाप के अतिरिक्त 'प्रबन्धकीय प्रमाण' भी है जो प्रबन्ध कार्यों को प्रभावपूर्णता के साथ सम्पन्न करने में सहयोग देते है और क्रियात्मक नियमों, व्यवहारों एवं पद्धतियों से सम्बन्ध रखते है। ये प्रमाप भौतिक एवं बौद्धिक रूपों में स्थापित किये जा सकते है।

11. **उत्पाद मद एवं उत्पाद श्रृंखला का निर्धारण (Determining of Product Item and Product Line)**– जब एक निर्माता केवल एक ही उत्पाद बनाता है तो उसे उत्पाद मद कहते हैं एवं जब उसी निर्माता द्वारा उसी प्रकार के अन्य उत्पादों का भी निर्माण किया जाता है कि उसे उत्पाद श्रृंखला कहते है। उदाहरण – जब एक कम्पनी नहाने के साबुन को बनाती है तो वह उत्पाद मद है, लेकिन जब वह कम्पनी नहाने के साबुन के साथ–साथ कपड़े धोने के साबुन भी बनाने लगती है तो वह उत्पाद श्रृंखला कहलाती है।

    उत्पादों के सम्बन्ध में निर्णय उत्पाद मद एवं उत्पाद श्रृंखला में से कोई भी लिया जा सकता है। लेकिन बुद्धिमता की बात यह है कि कार्य का प्रारम्भ उत्पाद मद से किया जाना चाहिए, फिर धीरे–धीरे उत्पाद श्रृंखला एवं उत्पाद मिश्रण की ओर अग्रसर होना चाहिए।

12. **उत्पाद संशोधन एवं परिवर्तन (Product modification and Alternation)**– उत्पाद नियोजन के अन्तर्गत उत्पाद संशोधन एवं परिवर्तन कार्य भी सम्मिलित है। ऐसा परिवर्तन या संशोधन उत्पाद की किस्म, रंग, रूप, आकार, पैंकेजिंग, डिजाइन आदि में किया जाता है। आजकल ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जबकि संस्थाएँ उत्पादों में संशोधन एवं परिवर्तन करती है। एम्बेसेडर कार में कई बार परिवर्तन किया गया है। टूथपेस्ट, धुलाई के पाउडर, नहाने के साबुन आदि में सदैव कुछ न कुछ नया किया जाता ही रहता है। हाल ही में ''पीयर्स'' साबुन के पचासों वर्ष पुराने रंग को भी बदलकर अब हरा किया गया है। टूथपेस्ट भी अब हरे, नीले आदि रंगो में आने लगे है। ''पॉण्ड्स'' बजाज सेवाश्रम, डाबर आदि के उत्पादों का पैंकेजिंग पिछले वर्षो में काफी कुछ ही बदल गया है।

13. **उत्पाद की जाँच विपणन (Test marketing of Product)**– उत्पादों के व्यावसायिक आधार पर उत्पादन से पूर्व उनकी जाँच विपणन की जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी नये उत्पाद का व्यवसायीकरण करने से पूर्व कुछ इकाईयों का उत्पादन करके किसी एक विशिष्ट बाजार या उपभोक्ताओं के वर्ग में विक्रय किया जाता है। यदि उस बाजार में उसके अपेक्षित परिणाम आते हैं तो उस उत्पाद का व्यावसायिक उत्पादन किया जाता है अन्यथा उसमें सुधार किया जाता है अथवा उस उत्पाद के उत्पादन के विचार का ही परित्याग कर दिया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

14. **उत्पाद का व्यवसायीकरण (Commercialisation of Product)** – उत्पाद का व्यवसायीकरण करना भी उत्पाद नियोजन का ही अंग है। इससे पूर्व विपणन जाँच की जाती है।

15. **उत्पाद परित्याग या वि□लेशण (Product Elimination)-** उत्पाद नियोजन एवं विकास के क्षेत्र में उत्पाद परित्याग/समाप्ति/लोप भी आता है। जब एक निर्माता अपनी निर्माण/उत्पादन तालिका में से किसी उत्पाद को निकाल देता है तो इसको उत्पाद परित्याग कहते हैं। इसमें निर्माता के द्वारा उस निकाले हुए उत्पाद का निर्माण बन्द कर दिया जाता है। ऐसा निर्णय अनेक परिस्थितियों में लिया जाता है, जैसे– किसी वस्तु के लाभों में बराबर कमी हो रही है, उत्पादों के मूल्यों में गिरावट की प्रवृत्ति दिखाई देती है, उत्पाद जीवन–चक्र में अवनति वाली अवस्था प्रारम्भ हो जाती है और लाभ कम होने लगता है, उत्पाद की प्रभावशीलता में कमी एवं प्रतिस्थापित उत्पाद पहले निर्माता के उत्पाद से उन्नत होती है।

    उत्पाद परित्याग का सबसे अच्छा तरीका अभी तक स्थापित नहीं हुआ है। लेकिन साधारणतया यह देखा जाता है कि उत्पाद परित्याग का निर्णय तीन में से किसी एक के आधार पर लिया जा सकता है–टुकड़ो के आधार पर, संकट के आधार पर एवं सावधिक उत्पाद समीक्षा करके।

प्र□न बोध –

लघुतरात्मक प्र□न–

1. उत्पाद नियोजन से आप क्या समझते है ?
2. उत्पाद नियोजन की विशेषताएँ बताइयें।
3. परीक्षण विपणन से आप क्या समझते है ?
4. उत्पाद विविधिकरण से क्या आशय है ?
5. उत्पाद विकास के प्रमुख लाभ बताइयें।

निम्बन्धात्मक प्र□न –

1. उत्पाद नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व की विवेचना कीजिए।
2. उत्पाद विकास से आप क्या समझते है। उत्पाद विकास की प्रक्रिया को संक्षेप में समझाइयें।
3. उत्पाद नियोजन एवं विकास का क्या अर्थ होता है। उत्पाद नियोजन एवं विकास के क्षेत्र की विवेचना कीजिए।

पैकेजिंग [Packaging]

पैकेजिंग का अर्थ किसी वस्तु को किसी में बन्द करने एवं ढ़कने की क्रिया से है ताकि वह सुरक्षित रह सके एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से ले जायी जा सके। अतः हम कह सकते है कि पैकेजिंग वह प्रक्रिया है जो किसी उत्पाद को रखने, लपेटने या आच्छादित करने हेतु किसी पात्र की संकल्पना तथा रचना करने से सम्बन्ध रखती है। पैकेजिंग को संवेष्ठन के नाम से भी जाना जाता है।

परिभाशाएँ

स्टेन्टन के अनुसार ''पैकेजिंग में सभी क्रियाएँ सम्मिलित है जो किसी उत्पाद के लिए पात्र या डिब्बे या आवरण का डिजाइन तैयार करने तथा उसका निर्माण करने हेतु की जाती है।''

फिलिप कोटलर के अनुसार, ''किसी उत्पाद के लिए पात्र या डिब्बा डिजाइन करने तथा निर्माण करने की सभी क्रियाएँ पैकेजिंग है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रो. आर.एस. डावर के अनुसार, ''पैकेजिंग वह कला या विज्ञान है जो एक उत्पाद का किसी कन्टेनर में बन्द करने या कन्टेनर को उत्पाद के पैंकिंग के उपयुक्त बनाने हेतु सामग्रियों, विधियों एवं उपकरणों के विकास तथा उपयोग से सम्बन्धित है ताकि वितरण की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान उत्पाद पूर्णतः सुरक्षित रहे।

इस प्रकार पैकेजिंग में वे सभी क्रियाए सम्मिलित है जो किसी उत्पाद के लिए किसी पात्र या डिब्बे या आवरण की रूपरेखा बनाने तथा उनका निर्माण करने से सम्बन्ध रखती है। ऐसे पात्र, डिब्बे या आवरण का निर्माण लकड़ी, धातु, प्लास्टिक, कागज, काँच अथवा किसी अन्य पदार्थ से किया जा सकता है।

व्यावसायिक जगत में पैकिंग तथा पैकेजिंग दोनो शब्दों का उपयोग किया जाता है। वस्तुतः अब इन दोनों शब्दों में कोई विशेष अन्तर नहीं किया जाता है। किन्तु इतना अवश्य है कि पैंकिंग शब्द अधिक व्यापक है जिसमें पैंकेजिंग भी सम्मिलित है। पैकिंग मूलतः उत्पाद सुरक्षा एवं परिवहन सुविधा को ध्यान में रखकर किया जाता है जबकि पैकेजिंग उत्पाद का संवर्द्धन करने तथा उसके विक्रय एवं उपयोग में सुविधा प्रदान करने हेतु किया जाता है।

पैकेजिंग के स्तर/वर्गीकरण

पैकेजिंग के तीन स्तर होते है। दूसरे शब्दों में, पैकेजिंग का तीन भागों में वर्गीकरण किया जा सकता है, जो निम्नानुसार है :

1. **प्राथमिक पैकेज (Primary Package)** – प्राथमिक पैकेज वह पात्र या डिब्बा या आवरण है जिसमें किसी उत्पाद को सर्वप्रथम रखा जाता है या लपेटा जाता है। उदाहरणार्थ, किसी चाकलेट या टॉफी को सर्वप्रथम एक आवरण में लपेटा जाता है अथवा ठण्डे पेय पदार्थ को किसी काँच या प्लास्टिक या धातु के डिब्बे या पात्र में डाला जाता है तो वह उसका प्राथमिक पैकेज है। इसे ही इकाई पैंकेजिंग भी कहते है।

2. **मध्यवर्ती पैकेज (Secondary Package)** – मध्यवर्ती पैकेज वह पात्र या डिब्बा है जिसमें किसी उत्पाद को सजाने, सँवारने एवं प्रदर्शित करने हेतु या उसके स्थानान्तरण या हस्तान्तरण के दौरान सुरक्षा प्रदान करने हेतु रखा जाता है। उदाहरणार्थ, जब दवाई की बोतल को या टूथपेस्ट की ट्यूब को कार्ड बोर्ड या मोटे कागज के डिब्बे में रखा जाता है तो वह डिब्बा मध्यवर्ती पैकेज है।

3. **तृतीयक या परिवहन या मार्गस्थ पैकेज (Tertiary or Transportation or transit Package)** – जब किसी उत्पाद के प्राथमिक एवं मध्यवर्ती पैकेजो को किसी बड़े डिब्बे या पात्र में परिवहन या भण्डारण हेतु रखा जाता है तो उस डिब्बे या पात्र को तृतीयक या परिवहन या मार्गस्थ पैकेज कहा जाता है। परिवहन पैकेज भारी–भरकम होता है।

   उत्पाद के पैकेजिंग में कभी–कभी प्राथमिक, मध्यवर्ती तथा परिवहन पैकेज तीनों का ही संयुक्त रूप देखने को मिलता है तो कभी–कभी प्राथमिक एवं मध्यवर्ती पैकेज का संयुक्त रूप देखने का मिलता है।

पैकेजिंग की वि□ाशताएँ (Characteristics of Packaging)

पैकेजिंग की मुख्य वि□ाशताएँ निम्नलिखित है –

1. यह किसी उत्पाद अथवा वस्तु को किसी में बन्द करने एवं ढ़कने की क्रिया है।
2. यह उत्पाद नियोजन की सामान्य क्रियाओं का समूह है।
3. पैकेजिंग का सम्बन्ध किसी उत्पाद के लिए लपेटने अथवा रेपर का निर्माण करने एवं उनका डिजाइन बनाने से है।
4. यह कला एवं विज्ञान है।
5. यह एक नया व्यवहार एवं अपूर्व संवर्द्धनात्मक तकनीक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. यह सम्बन्धित उत्पाद को ग्राहकों अथवा उपभोक्ताओं तक सुरक्षित पहुँचाने का माध्यम है।
7. इसमें ब्राण्डिंग एवं लेबलिंग की क्रियाएँ स्वतः ही सम्मिलित हो जाती हैं क्योंकि लेबल पैकेज पर लगाया जाता है तथा ब्राण्ड प्रायः लेबल पर लगी होती है।

पैकेजिंग की भूमिका (Role of Packaging)

आधुनिक युग में पैकेजिंग की भूमिका का अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अच्छे एवं आकर्षक पैकेजिंग के बिना न तो प्रतिस्पर्द्धा का सामना किया जा सकता है और न ही उचित लाभ कमाया जा सकता है। स्वयं सेवा एवं विक्रय मशीनों के प्रयोग ने तो पैकेजिंग की भूमिका को और भी अधिक महत्वूर्ण बना दिया है।

वर्तमान समय में निर्माताओं, मध्यस्थों एवं उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण से पैकेजिंग की भूमिका को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

I. निर्माताओं के लिए – (For Manufactures and Producers)

1. पैकेजिंग से उत्पाद को **सुरक्षा** मिलती है। इन्हें धूल, मिट्टी, कीड़े–मकोड़े एवं चोरी आदि से बचाया जा सकता है।
2. पैकेजिंग के पश्चात् **मिलावट** सम्बन्धी दोषों से मुक्ति मिल जाती हैं।
3. निर्माता, बिक्री उत्पादों को गोदाम तक **भण्डारण** कर सकता है।
4. पैकेजिंग से उत्पाद का **स्वतः विज्ञापन** हो जाता है। फलस्वरूप विज्ञापन पर व्यय की राशि कम हो जाती है।
5. ग्राहकों को **उत्पाद दिखाने में भी आसानी** हो जाती है, अन्यथा एक–एक वस्तु दिखाने से तो समय एवं श्रम खराब होता है।
6. पैकेजिंग से उपभोक्ता आकर्षित होता है जिससे उत्पाद की बिक्री बढ़ने से उत्पादक एवं निर्माता के लाभों में वृद्धि होती है।
7. पैकेजिंग से उत्पादक द्वारा विक्रेता को वस्तुएँ बेच दी जाती हैं, किन्तु विक्रेता आसानी से **पुनर्विक्रय** कर सकता है।
8. वस्तु की प्रकृति के अनुसार पैकिंग सामग्री एवं कन्टेनर्स का उपयोग किया जाता है जिससे उत्पाद–विभेद करने में आसानी होती है।
9. उत्पाद की वितरण लागत कम होती है।
10. पैकेजिंग से उत्पादक एवं उत्पाद की ख्याति में वृद्धि होती है क्योंकि अच्छा पैकेज उत्पाद को सुरक्षित ही नहीं रखता है अपितु वह बार–बार स्मरण भी कराता है।
11. उच्च मूल्य नीति का अनुसरण करना सहज है।
12. पैकेजिंग प्रतिस्पर्द्धा का आधार है।

II. मध्यस्थों के लिए (For Middlemen) -

1. अच्छा पैकंज मध्यस्थों को मार्ग में अनेक सुविधाएँ प्रदान करता है, जैसे माल को उठाने, ले जाने एवं रखना आदि।
2. मध्यस्थों द्वारा वस्तुओं को भण्डार में सुरक्षित भी रखा जा सकता है।
3. मध्यस्थों द्वारा पुनर्विक्रय सहज हो जाता है क्योंकि मध्यस्थों द्वारा थोक में विक्रय करने पर पैकेज को आसानी से उठाकर दिया जा सकता है।
4. मध्यस्थ के लिए पैक की गई वस्तुएँ स्वयं विज्ञापन का कार्य करती है। इसका कारण यह है कि जब तक वह पैकेज सुरक्षित रहेगा, वह बार–बार वस्तु का स्मरण करता रहेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. ग्राहकों को दिखाने में सुविधा रहती है।

6. उत्पाद की अधिक बिक्री से मध्यस्थ के लाभ बढ़ जाते हैं।

III. उपभोक्ता के लिए (For Consumers)

1. उत्पाद की पैकिंग हो जाने से उसमें मिलावट की सम्भावना नहीं रहती है। फलस्वरूप उपभोक्ता को शुद्ध एवं उच्च किस्म की वस्तुएँ मिल जाती है।

2. उपभोक्ता के लिए उत्पाद को लाने, ले जाने तथा उठाने में सुविधा रहती है।

3. पैकेजिंग से उपभोक्ताओं का उत्पाद के सम्बन्ध में विभिन्न महत्त्वपूर्ण बातों की जानकारी हो जाती है, जैसे–वस्तुओं को बनाने में कौन–सी सामग्रियाँ, कितनी प्रयुक्त की गयी, क्या मूल्य, उपयोग में कैसे लाया जाये, क्या सावधानी बरती जाये आदि।

4. उपभोक्ता उचित मूल्य का भुगतान कर सकता है क्योंकि पैकेज पर मूल्य अंकित रहता है।

5. पैकेजिंग उपभोक्ताओं के लिए शिक्षा प्रसार भी करता है। क्योंकि पैकेज पर कई बाते लिखी होती है, जैसे–उत्पादक अथवा निर्माता कौन है, उपयोग करते समय क्या–क्या सावधानियाँ बरती जाय, कितने समय की गारन्टी है एवं रख–रखाव का तरीका क्या हो, आदि।

6. यह जीवनयापन का साधन भी है।

7. अच्छी पैकेजिंग उपभोक्ताओं की सामाजिक स्थिति का प्रतीक है क्योंकि पैकेज से ही उसकी किस्म का अंदाज लगाया जा सकता है।

8. पैकेजिंग से उपभोक्ता को श्रेष्ठ किस्म की वस्तु की प्राप्ति हो जाती है। इसका कारण यह है कि पैकेज में रखी वस्तुएँ में रखी वस्तुएँ धूल, मिट्टी एवं अन्य पदार्थो से नष्ट होने से बच जाती है।

9. पैकेजिंग से उपभोक्ता का जीवन–स्तर बढ़ जाता है।

10. उपभोक्ता आज की ठग दुनिया से बच जाता है।

पैकेजिंग के कार्य (Functions of Package)

पैकेजिंग का मुख्य कार्य वितरण की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान वस्तु को सुरक्षित पहुँचाना और ग्राहकों को उपयोग सुविधायें तथा संरक्षण का आश्वासन प्रदान करना है।

पैकेजिंग के प्रमुख कार्य इस प्रकार है –

1. **उत्पाद संरक्षण (Protects Product)** – पैकेजिंग का प्रथम कार्य उत्पाद एवं उत्पाद के तत्त्वों का संरक्षण करना है। पैकेजिंग उत्पाद एवं मूल तत्त्वों एवं गुणों को सुरक्षित रखता है। यह उत्पाद की धूल एवं धूएँ से रक्षा करता है। यह उत्पाद को छीजने, सुखने, उड़ने, प्रदूषित होने से भी बचाता है। वह उत्पाद को ताजा, स्वच्छ बनाये रखता है।

2. **उत्पाद आकर्शण (Product Attraction)** – पैकेजिंग का कार्य उत्पाद के आकर्षण को बढ़ाना है। यदि उत्पाद का पैकेजिंग अच्छा एवं प्रभावी (लिपिस्टिक, इत्र, हेयर स्प्रे, परफ्यूम, पाउडर एवं क्रीम आदि) है तो दूर खड़े ग्राहक को स्वतः अपनी ओर आकर्षित कर लेता है एवं अन्य उत्पादों को छोड़कर पहले उसे ही क्रय करता है।

3. **उत्पाद उपयोग में सुविधा (Facilitates use of Product)** – पैकेजिंग का महत्त्व इसलिए भी है कि यह उपभोक्ता को उत्पाद के उपयोग में सुविधा प्रदान करता है। वे अपनी सुविधानुसार छोटे या बड़े पैक में उत्पाद क्रय कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे पैकिंग में से उत्पाद को आसानी से आवश्यकतानुसार निकाल सकते है तथा बन्द भी कर सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **उत्पाद हेडलिंग में सुविधा** – पैकिंग ग्राहकों को उसके लाने एवं ले जाने, पकड़ने, उठाने, रखने तथा भण्डार आदि में सुविधा भी देना उसका एक उद्देश्य एवं कार्य है।

5. **पहचान में सुविधा (Facilitates Product identification)**– पैकेजिंग उत्पादों को पहचानने में भी सुविधा प्रदान करता है। ग्राहक उत्पाद के पैकिंग को देखकर उत्पाद को आसानी से पहचान लेता है। वह अपनी पसन्द के उत्पाद का अन्य उत्पादों से अन्तर भी आसानी से कर सकता है। वह उत्पादों की भीड़ में बिना किसी भ्रम एवं सन्देह के अपनी पसन्द के उत्पाद को उसके पैकेज को देखकर ही आसानी से पहचान लेता है।

6. **मार्का–भेद को स्पश्ट करना (To Clarify of Trademark Distinction)** – अलग–अगल मार्का अथवा ट्रेडमार्क की वस्तुओं को अलग–अलग पैकिंग में रखकर मार्का भेद को स्पष्ट करना भी एक उद्देश्य है।

7. **लाभ अर्जित सम्भावना बढ़ाना (To Increase Possibilities of Profit Earning)**– पैकेजिंग उत्पादक एवं विक्रेता के लाभ अर्जित सम्भावना को बढ़ाने का कार्य करता है।

8. **सूचना सम्प्रेशण (Communication Informations)** – पैकेज सूचना सम्प्रेषण का महत्त्वपूर्ण माध्यम भी है। इसके माध्यम से उत्पाद में प्रयुक्त सामग्री, उसकी गुणवत्ता, उपयोग विधि, उपयोग में सावधानियाँ, मूल्य निर्माण तिथि तथा उपयोग की अन्तिम तिथि आदि के सम्बन्ध में सूचनाएँ दी जाती है।

9. **परिवहन एवं भण्डार सुविधा (Facilitates transportation and storage)** – पैकेजिंग का महत्त्व इसलिए भी है कि यह उत्पादों के परिवहन एवं भण्डारण में भी सुविधा प्रदान करता है। उत्पादों के पैकेजिंग हेतु ऐसे आकार के पात्रों या डिब्बों का निर्माण किया जाता है जिससे कम स्थान में अधिक उत्पादों का भण्डारण एवं परिवहन किया जा सके।

10. **विक्रय संवर्द्धन (Sales Promotion)** – पैकेजिंग का कार्य उत्पाद का विक्रय संवर्द्धन करना है। इसका कारण यह है कि उत्पाद के पैकिंग पर जो लिखा है, चित्रित किया होता है, उपयोगिता बताता है, सावधान करता है, वह विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन का कार्य करता है।

11. **गैर–मौसमी उत्पादों की सुनिश्चित आपूर्ति** (Ensures Supply of non-seasonal products) – पैकेजिंग गैर–मौसमी उत्पादों की आपूर्ति सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरणार्थ, संतरे, आम, सेब, आदि का रस तथा उनसे निर्मित अन्य उत्पादों को पैकेजिंग की सहायता से उनकी वर्ष– पर्यन्त आपूर्ति बनाये रखी जा सकती है।

12. **उत्पाद जीवन चक्र का विस्तार (Extends Product life cycle)** – उत्पाद का पैकेज उत्पाद के जीवन चक्र का भी विस्तार कर सकता है। जिस उत्पाद का पैकेज काफी प्रभावी होता है, ग्राहक उसे आसानी से भूल नहीं पाते हैं। ऐसे पैकेज वाला उत्पाद उत्पादों की भीड़ में भी ग्राहकों का ध्यान आकर्षित कर लेता है। इसके अतिरिक्त उत्पाद के पैकेज को अधिक आकर्षक, सुविधाजनक एवं पुनः उपयोग में आने योग्य बनाकर भी उत्पाद की माँग को बढ़ाया जा सकता है। इन सब के कारण उत्पाद जीवन चक्र का विस्तार सम्भव है।

13. **आधुनिक स्वयं–सेवी भण्डारों का विकास (Growth of Modern Self-service stores)** – वर्तमान युग में परम्परागत दुकानों के साथ–साथ आधुनिक स्वयं – सेवी भण्डारों का भी विकास हो रहा है। ऐसे भण्डारों में विक्रयकर्ता की भूमि नगण्य हो जाती है तथा उत्पाद का पैकेज ही 'शान्त विक्रयकर्ता' की भूमिका निभाता है। पैकेज स्वयं ग्राहकों को उत्पाद की ओर आकर्षित करता है तथा उत्पाद क्रय करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वयं–सेवी भण्डारों के विकास से पैकेजिंग का महत्त्व निरन्तर बढ़ रहा है।

14. **नियमन व्यवस्था (Regulartory framework)** – आधुनिक युग में उत्पादों के विपणन का कानूनी रूप से नियमन होता है। इन कानूनों द्वारा कई उत्पादों का विधिवत पैकेजिंक करना अनिवार्य होता है। इतना ही नहीं, उत्पाद के प्रत्येक पैकेज पर आवश्यक सूचनाएँ भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रकाशित करनी पड़ती है। फलतः ऐसे उत्पादों का विधिवत् पैकेजिंग करना अनिवार्य हो जाता है।

15. **उत्पादों की ख्याति एवं छवि में वृद्धि (Increases of Goodwill and Image of products)** – उत्पाद का पैकेज संस्था के उत्पादों की ख्याति एवं छवि को बनाने में योगदान देता है। लोग जब किसी उत्पाद के पैकेज को देखकर उसे खरीदने लगते हैं तो उस उत्पाद की ख्याति तीव्र गति से फैलती है तथा उसकी अच्छी छवि स्वतः बनने लगती है।

16. **लाभदेयता में वृद्धि (Increases profitability)** – अच्छे पैकेज तथा उससे उत्पन्न अच्छी छवि वाले उत्पादों के ग्राहक कुछ अतिरिक्त मूल्य भी देने को तैयार हो जाते है। उससे संस्था की लाभदेयता में वृद्धि होती है।

17. **स्मरण कराते रहना (Memorisation)** – वस्तु की बिक्री पूर्ण होने पर पैकेज का कार्य समाप्त नहीं होता है बल्कि उसमें स्मरण करते रहने की भी विशेषता होनी चाहिए ताकि पुनः विक्रय किया जा सके।

प्र□न बोध –

लघुतरात्मक प्र□न–

1. पैकेजिग किसे कहते है ?
2. प्राथमिक पैकेज किसे कहते है।
3. मध्यवर्ती पैकेज से आप क्या समझते है?

निम्बन्धात्मक प्र□न –

1. पैकेंजिग की परिभाषा दीजिए एवं इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. आधुनिक युग में उत्पाद के पैकेजिंग की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
3. पैकेजिंग के कार्यों का वर्णन कीजिए तथा अच्छे पैकेज के आवश्यक तत्वों की विवेचना कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अध्याय – चतुर्थ

ब्राण्ड एवं ट्रेडमार्क

[Brand & Trademark]

आ□ाय [Meaning]

ब्राण्ड कोई भी व्यापारिक चिन्ह है जिसके माध्यम से किसी उत्पाद को सही तरीके से पहचाना जाता है और उपभोक्ताओं द्वारा जिसका वर्णन किया जा सकता है। अतः ब्राण्ड में ऐसी कोई भी क्रिया एवं उपाय सम्मिलित है, जिससे उत्पाद की पहचान करवायी जाती है। इसमें वे शब्द, लेख या अंक सम्मिलित है, जिनका उच्चारण हो सकता है और इसमें चित्र भी सम्मिलित है।

इस प्रकार ब्राण्ड कोई भी चिन्ह, पहचान चिन्ह, नाम, प्रतीक अथवा संकेताक्षर है, जो किसी उत्पाद की पहचान करवाता है तथा जो उसकी अन्य उत्पादों या अन्य उत्पादकों के उत्पादों से पृथक पहचान बनाता है। जैसे सर्फ, टाइटन, विमल, रेमण्ड्स, कोलगेट, एन्कर, पाण्ड्स, जॉनसन, बाटा आदि प्रमुख ब्राण्ड है।

ब्राण्ड नाम (Brand Name)

ब्रॉण्ड नाम' ब्रॉण्ड का ही भाग या अंग है जिसका उच्चारण किया जा सकता है। यह शब्दों, अक्षरों, अंको, आदि के रूप में हो सकता है। जैसे हीरो होण्डा, मोटर साईकल, 505 सोप, ए.बी.सी. कम्पनी आदि।

परिभाशाएँ

लिपसन एवं डारलिंग के अनुसार, ''एक ब्राण्ड नाम अपने में उन शब्दों, अक्षरों अथवा अंको को सम्मिलित करता है जो कि उच्चारण–योग्य होते हैं।''

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिय□ान के अनुसार, ''ब्रॉण्ड एक नाम, शब्द, प्रतीत अथवा डिजाइन या संयोजन है जिसका उद्देश्य एक विक्रेता या विक्रेताओं के समूह की वस्तुओं या सेवाओं को पहचानना एवं उनका प्रतियोगियों की वस्तुओं या सेवाओं से भिन्न बतलाना है।''

ब्राण्ड की वि□ाशताएँ – ब्राण्ड की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैः

1. ब्राण्ड किसी भी उत्पाद का **पहचान चिन्ह** है।
2. ब्राण्ड कोई भी नाम, पहचान चिन्ह, संकेताक्षर, संख्या प्रतीक चिन्ह आदि में से कोई भी हो सकता है।
3. यह उत्पाद की **अन्य उत्पादों से पृथक पहचान** कराता है।
4. यह एक उत्पादक के उत्पादों का **अन्य उत्पादकों के उत्पादों से पृथक पहचान** कराता है।
5. यह किसी **उत्पाद की छवि या उसके व्यक्तित्व को प्रकट** करता है।
6. यह उत्पाद का **स्मृति सहायक** चिन्ह है।
7. ब्राण्ड कई प्रकार के हो सकते है, जैसे–उत्पादक ब्राण्ड, कम्पनी ब्राण्ड, मध्यस्थ ब्राण्ड आदि।

ब्राण्ड के प्रकार –

ब्राण्ड के प्रकारों को निम्नलिखित आधार पर विभाजित कर स्पष्ट किया जा सकता हैं –

(I) स्वामित्व के आधार पर (On the Basis of Ownership)

1. **निर्माता का ब्राण्ड (Manufacture's Brand)** – निर्माताओं द्वारा अपने उत्पादों को प्रदान किया गया ब्राण्ड, निर्माता का ब्राण्ड कहलाता है। इसे राष्ट्रीय ब्राण्ड भी कहते हैं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्योंकि निर्माता द्वारा निर्मित सभी उत्पादों पर एक छाप होती है और वह इसी एक ब्राण्ड के नाम से सम्पूर्ण देश में बेचे जाते है। जैसे फिलिप्स कम्पनी द्वारा निर्मित रेड़िया, बल्ब, ट्रांजिस्टर एवं टेलीविजन आदि पर फिलिप्स की छाप लगी रहती है। लाल इमली, धारीवाल, टाटा, बाटा आदि निर्माता के नाम को प्रकट करते है।

2. **मध्यस्थों का ब्राण्ड (Middleman's Brand)** – जब निर्माता अपने उत्पादों पर किसी प्रकार की छाप का प्रयोग नहीं करता है तो बड़े–बड़े थोक व्यापारी या फुटकर व्यापारी उन उत्पादों पर अपनी ब्राण्ड की मुहर या छाप लगाकर बेचते हैं, तो इस प्रकार के ब्राण्ड को मध्यस्थ ब्राण्ड कहते हैं। लिपसन एवं डारलिंग ने मध्यस्थों के ब्राण्ड को 'पुनर्विक्रेता ब्राण्ड' कहा है।

मध्यस्थों के ब्राण्ड वाले उत्पादों की किस्म के अनुरूप ब्राण्ड का उत्तरदायित्व मध्यस्थों का होता है क्योंकि ब्राण्ड–नाम संस्थाओं की प्रतिष्ठा से जुड़ा होता है इसलिए उन्हें निर्माताओं अथवा उत्पादकों से सम्पर्क स्थापित करना होता है ताकि मध्यस्थों अथवा वितरकों की इच्छानुसार उत्पादों का निर्माण या उत्पादन किया जा सकें।

(II) बाजार क्षेत्र के आधार पर (On the Basis of Market Area)

1. **स्थानीय ब्राण्ड (Local Brand)** – वह ब्राण्ड जो एक स्थान विशेष पर ही लोकप्रिय हैं, स्थानीय ब्राण्ड कहलाता है, जैसे चाय, साबुन, डिटरजेन्ट पाउडर, पैन की स्याही और फोल्डर्स आदि।

2. **प्रान्तीय ब्राण्ड (Provincial Brand)** – यह ब्राण्ड जो एक राज्य विशेष में ही प्रचलित है, उसको प्रान्तीय या राज्य ब्राण्ड कहते है, जैसे पटना मिर्च, अताणा मिर्च, ओसवाल साबुन, गुजरात दैनिक भास्कर एवं चण्डीगढ़ पत्रिका आदि।

3. **क्षेत्रीय ब्राण्ड (Regional Brand)** – जब एक निर्माता राष्ट्र को अपने विक्रय के लिए कई क्षेत्रों में बाँट लेता है और प्रत्येक क्षेत्र में नये–नये ब्राण्डों का प्रयोग करता है तो इन ब्राण्डों को क्षेत्रीय ब्राण्ड कहते है।

4. **राश्ट्रीय ब्राण्ड (National Brand)** – इसे निर्माता ब्राण्ड भी कहते है। जब एक निर्माता सम्पूर्ण देश के लिए केवल एक ही ब्राण्ड का प्रयोग करता है तो उसका ब्राण्ड राष्ट्रीय ब्राण्ड कहलाता है। लिम्का, लक्स, कोलगेट आदि राष्ट्रीय ब्राण्ड है।

(III) उत्पादों की संख्या के आधार पर (On the Basis of Number of Production)

1. **व्यक्तिगत ब्राण्ड (Individual Brand)** – जब एक निर्माता अथवा उत्पादाक प्रत्येक वस्तु के उत्पादन पर अलग अलग ब्राण्ड की मुहर लगाता है तो इसको व्यक्तिगत ब्राण्ड कहते हैं। सर्फ, विम, व्हील, एरियल आदि व्यक्तिगत ब्राण्ड है।

2. **पारिवारिक ब्राण्ड (Family Brand)** – जब एक निर्माता अथवा उत्पादक अपनी सभी प्रकार की वस्तुओं की ब्राण्ड जिनका वह निर्माण अथवा उत्पादन करता है, एक ही रखता है तो ऐसे ब्राण्ड को पारिवारिक ब्राण्ड कहते हैं। बजाज ग्रुप द्वारा सभी उत्पादनों पर बजाज शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे स्कूटर–बजाज सुपर, बजाज, ब्रेवो बजाज वल्ब एवं ट्यूब बजाज आयरन, बजाज टोस्टर एवं बजाज मोटरसाईकल पल्सर आदि।

(IV) प्रयोग के आधार पर (On the Basis of Use)

1. **लड़ाकू ब्राण्ड (Fighting Brand)**– जब बाजार में प्रतिस्पर्द्धा हो और निर्माता या मूल ब्राण्ड की प्रतिष्ठा बचानी हो तो निर्माता एक कम मूल्य की वस्तु तैयार कर बाजार में प्रस्तुत कर दी जाती है। इस प्रकार की वस्तु ब्राण्ड को लड़ने वाली ब्राण्ड कहते है।

2. **प्रतिस्पर्द्धी ब्राण्ड (Competitive Brand)**– जब विभिन्न प्रकार के निर्माताओं या उत्पादकों द्वारा बनायी गयी वस्तुओं में गुण, मूल्य, आकार–प्रकार आदि में कोई विशेष

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अन्तर नहीं होता है तो ऐसी वस्तुओं के ब्राण्ड प्रतिस्पर्द्धी ब्राण्ड कहलाते हैं। जैसे–कपड़े धोने का डिटर्जेन्ट पाउडर–सर्फ ब्राण्ड, व्हील, टाइड, निरमा, मैजिक, घड़ी, एरियल आदिं।

एक अच्छे ब्राण्ड के आव□यक तत्व (Essentials of Good Brands)

एक निर्माता द्वारा अपने उत्पाद के लिए कोई भी ब्राण्ड नाम रखा जा सकता है। किन्तु ऐसा करते समय बहुत सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि भविष्य में यही ब्राण्ड उसके लिए वरदान या अभिशाप बन सकता है।

अतः एक अच्छे ब्राण्ड में निम्नांकित तत्वों का होना आवश्यक हैः–

1. **साधारण एवं छोटा (Simple and Short)**– ब्राण्ड का नाम साधारण एवं सूक्ष्म होना चाहिए ताकि उसे आसानी से समझा जा सके एवं याद रखने में भी किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हो, जैसे–एयरटेल, डालडा, पनघट, सरस, उषा सेमसंग, बाटा, बिनाका, वज्रदन्ती, टाटा, बी.पी.एल., सेमसंग, दूध–गोल्ड एवं टनाटन नमकीन आदि।

2. **उच्चारण में सुविधा (Easy to pronounce)**– अच्छे ब्राण्ड की प्रथम आवश्यकता यह है कि इसका उच्चारण सुविधा से किया जा सके। उच्चारण में असुविधा होने पर लोग उस ब्राण्ड का नाम नहीं लेते और वह प्रचलित नहीं हो पाता है। टाटा, बाटा, पॉण्ड्स, लक्मे, रफ एण्ड टफ, उषा, सर्फ आदि ऐसे ब्राण्ड है जिनका उच्चारण आसानी से किया जा सकता है।

3. **स्मरण योग्य (Memorable)**– ब्राण्ड स्मरण करने में सुविधाजनक होने चाहिये। लम्बे नाम प्रायः स्मरण नहीं हो पाते। बाटा, मारूति, हीरो होण्डा, कोकाकोला, कोलगेट, क्लोज–अप स्मरण योग्य ही हैं।

4. **उत्पादक का संकेत (Hints producer)**– ब्राण्ड उत्पादक के नाम का संकेत देने वाला भी हो तो सोने में सुहागा। इससे ब्राण्ड एवं संस्था दोनों की ख्याति बनती है। ''एच.एम.टी.'' ''डी.सी.एम.'', ''टाटा'', ''बाटा'', ''गोदरेज'' आदि ऐसे ही ब्राण्ड हैं जो उत्पादक के नाम का संकेत भी देते है।

5. **पहचानने योग्य (Recognisable)**– ब्राण्ड ऐसा हो जिसे देखकर आसानी से पहचाना जा सके, जैसे– रेड लेबल टी, मरफी के रेडिया, सेलो रिफिल एवं पैन, केमल इंक रिलायन्स के सैलफोन आदि।

6. **मितव्ययता (Economy)**– एक अच्छे ब्राण्ड में मितव्ययिता का गुण होना चाहिए अर्थात् उसे छपवाने, लिखवाने या प्रदर्शन करने में अधिक व्यय नहीं होना चाहिए।

7. **ब्राण्ड नाम (Brand Name)**– ब्राण्ड का नाम ऐसा होना चाहिए जिससे वस्तु के बारे में जानकारी हो सके अथवा उसमें एवं वस्तु में कोई अनुकूल उपयोगी सम्बन्ध प्रकट हो सके अथवा वस्तु के किसी गुण का संकेत मिल सके। उदाहरण के तौर पर बैण्डएड मरहम पट्टी, कूल होम पंखे, वाटर कूलर, डिजिटल केमरा, नेस्केफ कॉफी, झंकार रेडियो आदि।

8. **संवर्द्धन में सुविधा (Easy to promote)**– ब्राण्ड ऐसा हो जो विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन, प्रचार आदि कार्यों में सुविधाजनक हो, उदाहरणार्थ, एयर इण्डिया का स्वागतातुर महाराजा का चित्र, देना बैंक का नाम, जीवन बीमा के हाथ वाला प्रतीक चिन्ह आदि सभी देखने या सुनने में ही ऐसे है मानों स्वयं इनकी सेवाओं का विज्ञापन कर रहे हों।

9. **सुझावात्मक (Suggestive)**– ब्राण्ड का नाम इस प्रकार का होना चाहिए कि वह ग्राहाकें को प्रभावित करने के लिए कुछ सुझाव का भी कार्य कर सकें, जैसे– मिल्क मेड, बीमारी हितलाभ, केशवर्धनी तेल, जीवनरक्षक बीमापत्र, स्वास्थ्यवर्द्धक च्यवनप्राश आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. **अ□लीलता से दूर (Far from Obsence)**– ब्राण्ड में किसी प्रकार की अश्लीलता का प्रदर्शन नहीं होना चाहिए अर्थात् ब्राण्ड में ऐसे नाम या चित्र का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए जो कि सामाजिक दृष्टि से अश्लील अथवा अशोभनीय हो।

11. **अन्य ब्राण्ड से भिन्न (Different from other Brands)**– प्रत्येक निर्माता/उत्पादक का ब्राण्ड अन्य निर्माता अथवा उत्पादक एवं उत्पादों के ब्राण्ड से भिन्न होना चाहिए ताकि किसी प्रकार की भ्रांति पैदा न हो।

12. **सौन्दर्य एवं प्रसन्नचित (Beautiful and Happyness)**– ब्राण्ड का नाम ऐसा होना चाहिए जिससे न केवल सौन्दर्य–बोध हो, प्रसन्नता के भाव प्रकट हो अपितु किसी सुन्दर स्थान की याद एवं झाँकी ताजा हो उठे। जैसे–ताजमहल, हिमायल, हॉलीवुड, अजन्ता, कश्मीर आदि।

13. **कानूनी संरक्षण (Legal Protection)**– ब्रॉण्ड का नाम ऐसा होना चाहिए जिसके कानूनी संरक्षण प्राप्त करने में अधिक बाधाएँ न आयें। अतः व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, संज्ञाएँ एवं विशेषण कम–कम से प्रयुक्त किये जाने चाहिए। गुणबोधक एवं असामान्य नामों का सृजन किया जाना चाहिए, जैसे–पाउडर के दूध के लिए 'मिल्क मेड', ब्रेसरीज के लिए, 'मेडन फॉम' पंखों के लिए 'आंधी' या 'कूल' तथा टेलीविजन के लिए 'हवामहल गुंजन' या रंगमच आदि।

14. **भावनायुक्त (Emotional)**– ब्राण्ड का नाम भावनायुक्त होना चाहिए न कि किसी व्यक्ति या धर्म एवं उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाला। जैसे सरस्वती, बन्दर, कोबरा, सुअर, मैजिक, रॉयल, इम्पीरियल आदि। ऐसे ब्राण्ड नाम धर्म, यौन, भौगोलिक एवं राजनीतिक दृष्टि से प्रतिकूल भावनाए पैदा करते है।

15. **समयानुसार (Timely)**– ब्राण्ड समय के अनूकूल होना चाहिए। कुछ समय के पुराने ब्राण्ड अप्रचलित हो जाते है, अतः ब्राण्ड समय–समय पर बदलते रहते है। इसलिए यह कहा जाता हैं कि एक अच्छा ब्राण्ड वही है, जो समय के अनुरूप हो।

16. **सम्मानजनक (Prestiguous)**– ब्राण्ड संस्था तथा उत्पाद के सम्मान, ख्याति तथा छवि को बनाने एवं निखारने में योग देने वाला होना चाहिए।

ट्रेडमार्क

[Trademark]

आ□ाय [Meaning]

जब किसी नाम, अक्षर, चिन्ह, डिजायन या चित्र का कानून के अन्तर्गत पंजीयन करा लिया जाता है तो इसे ट्रेडमार्क या व्यापार चिन्ह कहा जाता है। पंजीयन के बाद ''ट्रेडमार्क'' का उपयोग केवल इस पर अधिकार रखने वाला व्यक्ति ही कर सकता है।

परिभाशाएँ

विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार, ''ट्रेडमार्क एक ब्राण्ड है, जिसे किसी विक्रेता द्वारा अपनाया गया है तथा कानून द्वारा संरक्षण दिया गया है।''

कोपलेण्ड के अनुसार, ''ट्रेण्डमार्क कोई भी चिन्ह् संकेत, प्रतीक, अक्षर या शब्द है जो किसी उत्पाद के उद्भव या स्वामित्व को प्रकट करता है जो उसकी किस्म से भिन्न होता है तथा दूसरे उसका उसी प्रकार उपयोग करने का वैधानिक अधिकार नहीं रखते है।''

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिए□ान, ''ट्रेडमार्क एक ब्राण्ड है जिसका वैधानिक संरक्षण दे दिया गया है क्योंकि इसको कानून के अन्तर्गत केवल एकमात्र विक्रेता द्वारा अपनाया जा सकता हैं।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस प्रकार ट्रेडमार्क भी एक ब्राण्ड ही है, जिसका उपयोग करने का अधिकार केवल उसी व्यक्ति या संस्था को होता है जिसने विधान के अनुसार उसका पंजीयन करवाकर वैधानिक संरक्षण प्राप्त कर लिया है। ट्रेडमार्क भी शब्द, अक्षर, चिन्ह, प्रतीक या अंक आदि के रूप में हो सकता है जिसका प्रायः उच्चारण भी किया जा सकता है। इसमें चित्रयुक्त डिजायन भी सम्मिलित है, जिनका वर्णन किया जा सकता है।

भारत सरकार ने ट्रेड एण्ड मर्केन्डाइज मार्क एक्ट, 1958 के अन्तर्गत ट्रेडमार्क के पंजीयन की व्यवस्था की है। इस अधिनियम की धारा 11 एवं 12 में ट्रेडमार्क के पंजीयन की शर्ते दे रखी है। इन शर्तों का पालन करते हुए कोई भी व्यक्ति या संस्था अपने ब्राण्ड/ट्रेडमार्क का पंजीयन करवा सकती है। ट्रेडमार्क पंजीयन की कुछ शर्तें इस प्रकार है।

1. ट्रेडमार्क **धोखा देने वाला या संदेह उत्पन्न करने वाला नहीं** होना चाहिए।
2. यह देश के **राजनियम के विरूद्ध नही होना चाहिए।**
3. यह अपमानजनक या **निन्दाकारक** नहीं होना चाहिए।
4. यह **अ□लील** नही होना चाहिए।

ट्रेडमार्क की वि□ाशताएँ (Characteristics of Trademark)

1. इसमें ब्राण्ड का कानून के अन्तर्गत पंजीयन होता है।
2. ट्रेडमार्क को कानून के अन्तर्गत केवल एकमात्र संस्था या व्यक्ति या विक्रेता द्वारा अपनाया जा सकता है।
3. सभी ट्रेडमार्क ब्राण्ड हैं ओर इनमें वे सभी शब्द, लेख या अंक शामिल हैं जिनका उच्चारण हो सकता है। इसी प्रकार इसमें तस्वीर की डिजाइन भी सम्मिलित है।
4. ट्रेडमार्क वस्तु को उसकी किस्म से भिन्न करते है।
5. ट्रेडमार्क, रजिस्टर्ड ब्राण्ड के बारे में प्रयुक्त किया जाता है। इसलिए सभी ट्रेडमार्क ब्राण्ड माने जाते हैं, किन्तु सभी ब्राण्ड ट्रेडमार्क नहीं माने जाते है।
6. व्यावहारिक दृष्टि से ब्राण्ड एवं ट्रेडमार्क में अन्तर नहीं है, किन्तु कानूनी दृष्टि से विचार करने पर इनमें अन्तर प्रकट होता है।

ब्राण्ड एवं ट्रेडमार्क में अन्तर

ब्राण्ड एवं ट्रेडमार्क में कई समानताएँ है किन्तु इनमें कुछ आधारभूत अन्तर भी है जो प्रमुखतः इस प्रकार हैः–

अन्तर का आधार	ब्राण्ड	ट्रेडमार्क
1. अर्थ	कोई भी व्यापार चिन्ह, शब्द, नाम एवं डिजायन आदि के माध्यम से (किसी उत्पाद को) सही तरीके से पहचाना जा सके, उसे ब्राण्ड कहते है।	जब किसी अक्षर, नाम, चिन्ह डिजायन, या चित्र अथवा इन सबके मिश्रण का कानून के अन्तर्गत पंजीयन कर लिया जाता है तो इसे व्यापार चिन्ह् या ट्रेडमार्क कहते हैं।
2. प्रकृति	सभी ब्राण्ड, ट्रेडमार्क नहीं होते है।	जबकि सभी ट्रेडमार्क ब्राण्ड होते है।
3. उद्देश्य	ब्राण्ड का उद्देश्य उत्पाद की पहचान बनाना, उसे एक भिन्नता एवं विशिष्टता	जबकि ट्रेडमार्क का उद्देश्य वस्तुओं की नकल को रोकना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

	देना है।	
4. क्षेत्र	ब्राण्ड का क्षेत्र सीमित है क्योंकि कोई भी व्यावसायिक उपक्रम अपने विभिन्न उत्पादों के लिए भिन्न–भिन्न ब्राण्ड का प्रयोग कर सकता है।	जबकि टेडमार्क का क्षेत्र विस्तृत है क्योंकि विभिन्न उत्पादों के लिए एक ही ट्रेडमार्क का उपयोग किया जा सकता है।
5. पंजीयन	ब्राण्ड का रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक नही है।	जबकि ट्रेडमार्क का रजिस्ट्रेशन कराना अनिवार्य है।
6. कानूनी संरक्षण	ब्राण्ड की नकल अन्य प्रतिस्पर्द्धियों द्वारा किये जाने के बावजूद भी उनके विरूद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती है।	जबकि ट्रेडमार्क की नकल वाले प्रतिस्पर्द्धियों के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही करके हर्जाना वसूल किया जा सकता है।
7. रचना एवं अस्तित्व	ब्राण्ड की रचना किसी भी निर्माता अथवा उत्पादक द्वारा की जा सकती है।	जबकि ट्रेडमार्क का अस्तित्व तभी माना जाता है, जबकि उसका पंजीयन हो जाये।
8. पहचान	ब्राण्ड से उत्पादों की पहचान होती है।	जबकि ट्रेडमार्क से व्यावसायिक उपक्रम/प्रतिष्ठान की पहचान होती है।
9. उपयोग	ब्राण्ड का उपयोग विभिन्न निर्माता अथवा विक्रेता कर सकते है।	ट्रेडमार्क का उपयोग केवल वही निर्माता अथवा विक्रेता कर सकता है। जिसने उसका अपने लिये रजिस्ट्रेशन करवाया है।
10. क्षतिपूर्ति	ब्राण्ड का स्वामी नकलची से क्षतिपूर्ति नहीं ले सकता है।	जबकि इसकी नकल वाले से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।
11. दण्ड	इसकी नकल करने पर कोई दण्ड का प्रावधान नहीं है।	जबकि इसकी नकल करने वाले के लिए दण्ड की व्यवस्था है।

विक्रयोपरान्त सेवाएँ

[After Sale Service]

आ□ाय

विक्रयोपरान्त सेवाओं से तात्पर्य उन सेवाओं से है जो किसी विपणनकर्ता अपने ग्राहकों को उत्पाद के विक्रय के बाद उपलब्ध कराता है।

विपणनकर्ताओं को उत्पाद निर्णयों के साथ विक्रयोपरान्त सेवाओं का निर्णय भी लेना पड़ता है। विक्रयोपरान्त सेवाएँ औद्योगिक, व्यावसायिक या संगठनात्मक क्रेताओं के लिए ही आवश्यक नहीं है बल्कि व्यक्तिगत एवं घेरलू उपभोक्ताओं के लिए भी आवश्यक है। ऐसी सेवाएँ निःशुल्क अथवा कुछ शुल्क लेकर भी उपलब्ध की जा सकती है।

विक्रयोरान्त सेवाओं के रूप (Forms of After-sale service)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विक्रेताओं द्वारा वस्तुओं की बिक्री के पश्चात् प्रदान की जाने वाली सेवाओं के रूप निम्नलिखित हो सकते है।

1. **उत्पाद संस्थापना सेवा (Product Installation Service)**– यह आवश्यक नहीं है कि उत्पाद की बिक्री के पश्चात् ग्राहक को उत्पाद को लगाना या संस्थापन करना आता हो। ऐसी दशा में यदि ग्राहक पर छोड़ दिया जाए तो वह उसे गलत संस्थापित कर सकता है। जिससे उत्पाद को नुकसान हो सकता है। अतः ऐसा न हो, इसलिए उत्पाद संस्थापन सेवा प्रदान की जाती है।

2. **उत्पाद रख–रखाव सेवा (Product Maintenance Service)**– प्रत्येक निर्माता एवं उत्पादक एवं इनके विक्रेता चाहेंगे कि ग्राहक के लिए उत्पाद दीर्घकाल तक उपयोगी साबित हो। इसके लिए उसकी रख–रखाव सेवा प्रदान करना आवश्यक है। यदि विक्रेता स्वयं उत्पाद को देख ले अथवा ग्राहक को रख–रखाव सम्बन्धी बातें बता दे तो उत्पाद की किस्म हमेशा अच्छी साबित होगी।

3. **उत्पाद परिचालन प्रशिक्षण सेवा (Product Operating Training Service)**– उत्पाद के विक्रय पश्चात् उत्पाद परिचालन प्रशिक्षण सेवा भी प्रदान की जाती है। यह इसलिए आवश्यक है कि जब ग्राहक उसके बारे में कुछ नहीं जानता है तो वह गलत परिचालन कर सकता है और उत्पाद को नुकसान हो सकता है। इसके लिए विक्रेता अथवा इंजीनियर क्रेता के निवास–स्थान या कार्यालय पर परिचालन प्रशिक्षण देता है, जैसे– कम्प्यूटर को कैसे चलाना, क्या–क्या सावधानियाँ बरतना और यदि फिर भी परिचालन न कर पाये तो इस नम्बर पर डायल करें और प्रशिक्षण लें।

4. **उत्पाद मरम्मत सेवा (Product Repair Service)**– एक निश्चित समय के पश्चात् उत्पाद के पुर्जे, मशीन, इसका कोई हिस्सा खराब हो जाता है या टूट जाता है। ऐसी दशा में विक्रेता निःशुल्क या कुछ शुल्क लेकर इस उत्पाद की मरम्मत कर देता है।

5. **उत्पाद के अतिरिक्त पुर्जो को उपलब्ध करने की सेवा (Available of Spare parts Service)**– यद्यपि उत्पाद की किस्म की दृष्टि से 'OK' प्रमाण–पत्र होता है। फिर भी अपवाद में उत्पाद उपयोगी साबित नहीं हो पाता है या रख–रखाव में कमी रह जाती है, या क्रेता पूर्णतः परिचालन प्रशिक्षण नहीं ले पाता है या उत्पाद का कोई 'हिस्सा या पुर्जा' टूट जाता है तो उसके अतिरिक्त पुर्जो को उपलब्ध कराने की सेवा प्रदान की जाती है।

6. **उत्पाद गारण्टी या वारण्टी सेवा (Product Gurantee or Warrenty)**– विक्रय–पश्चात् सेवा में उत्पाद गारन्टी या वारण्टी सेवा भी सम्मिलित है। इसमें एक निर्माता क्रेता को यह विश्वास दिलाता है कि यदि उत्पाद उसकी आशा के अनुकूल न निकले तो उसके हित की सुरक्षा, जैसे मूल्य लौटा दिया जायेगा, उत्पाद की मरम्मत निःशुल्क कर दी जायेगी एवं उत्पाद की निश्चित समय में उचित साफ–सफाई कर दी जायेगी।

विक्रयोपरान्त सेवाओं की आवश्यकता (Need of After-sale Service)

आधुनिक युग के नये एवं जटिल उत्पाद, तकनीकी जटिलता एवं उनके अनेक प्रकार के उपयोग को देखते हुए विक्रेता एवं क्रेता के लिए ऐसी सेवा की आवश्यकता अधिक है। इसके अतिक्ति निम्नलिखित कारणों से भी विक्रय–पश्चात् सेवा आवश्यक है–

7. **घेरलू उपभोक्ता (Domestic Consumer)** – आज के युग में न केवल संगठनात्मक ग्राहक, अपितु घरेलू उपभोक्ता भी अनेक तकनीकी उत्पादों का उपयोग एवं क्रय करते हैं, जैसे–वाटर फिल्टर मशीन, वेक्यूम क्लीनर, मिक्सी, ओवन, टेप, टी.वी. आदि। इनमें समय–समय पर खराबी या गड़बड़ी होने लग जाती है या आती रहती है। ऐसी दशा में विक्रेता की सेवाओं की आवश्यकता होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **सेवाओं की कीमत (Price of Service)**– आज उत्पाद के मूल्य की तुलना में सेवाओं की कीमत अधिक बढ़ रही है। ऐसी दशा में प्रत्येक क्रेता यह चाहता है कि न्यूनतम व्यय या बिना व्यय के ऐसी सेवाएँ मिल जाये। इसलिए विक्रय–पश्चात् सेवा आवश्यक है।

2. **तत्काल सेवा (Quick Service)**– आज की जिन्दगी इतनी तेज हो गयी है कि प्रत्येक क्रेता उत्पाद के खराब होने पर तत्काल सेवा चाहता है जिसे उसका विक्रेता ही सुनिश्चित कर सकता है।

3. **अतिरिक्त पुर्जो की आपूर्ति (Supply of Spare Parts)**– आजकल प्रत्येक पुर्जा नकली मिलता है। इससे बचने के लिए क्रेता यही चाहता है कि विक्रेता अतिरिक्त पुर्जा स्वयं लाये और हमारी समस्या दूर कर दे। ऐसी दशा में यह कार्य विक्रेता के लिए आसान है।

विक्रयोपरान्त सेवाओं के तरीके (Methods of After-sale Services)–

अनेक कारणों से विक्रय–पश्चात् सेवा की आवश्यकता होती है। किन्तु कौन–से तरीके हों? इसके लिए ये तरीके या उपाय बताये जा सकते है –

1. उत्पादक अथवा निर्माता को अपनी संस्था में एक पृथक से विक्रय–पश्चात् सेवा विभाग या अनुभाग की स्थापना करनी चाहिए। इस विभाग का यह कार्य है कि क्रेता की शिकायत आने पर रजिस्टर में लिखे, सम्बन्धित विक्रेता अथवा तकनीकी विशेषज्ञ को सुचित करे और सेवा करने के पश्चात् रजिस्टर में उल्लिखित करे।

2. विक्रय–पश्चात् सेवा न केवल उचित अवधि में अपितु ग्राहक को अपेक्षित सेवा उपलब्ध करानी चाहिए। इसके अलावा सेवा करने के दौरान ही उसकी यदि कोई शिकायत हो तो उसका समाधान कर देना चाहिए।

3. विक्रेता को चाहिए कि वह उचित मूल्य पर अतिरिक्त पुर्जे उपलब्ध कराये।

4. उत्पाद की गारण्टी अवधि में विक्रेता को चाहिए कि उत्पादों की रख–रखाव की समुचित देख–रेख करे।

5. विक्रय –पश्चात् सेवा विभाग या उप–विभाग को शिकायतों की सूचना निःशुल्क प्रदान करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

प्र□न बोध –

लघुतरात्मक प्र□न–

1. उत्पाद ब्राण्ड से आप क्या समझते है ?
2. एक अच्छे ब्राण्ड की विशेषताएँ बताइयें ?
3. विक्रयोंपरान्त सेवा क्या है ? समझाइयें ?

निम्बन्धात्मक प्र□न –

1. ट्रेडमार्क से आप क्या समझते है एवं इसकी विशेषताएँ बताइयें।
2. ब्राण्ड के विभिन्न प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. ट्रेडमार्क से आपका क्या आशय है ? ब्राण्ड एवं ट्रेडमार्क में अन्तर बताइयें।
4. विक्रयोपरान्त सेवा पर एक लेख लिखियें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्पाद जीवन–चक्र की अवधारणा

[Product Life Cycle Concept]

उत्पाद जीवन चक्र एक विशिष्ट अवधारणा है जो किसी उत्पाद के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को प्रकट करती है। जिस प्रकार एक मानव का जीवन चक्र विभिन्न क्रमागत अवस्थाओं से बना हुआ है, ठीक उसी प्रकार एक उत्पाद का जीवन–चक्र भी विभिन्न अवस्थाओं से बना हुआ है। एक मानव जीवन में क्रमशः जन्म, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आती है। उसी प्रकार एक उत्पाद के जीवन में भी प्रस्तुतीकरण, विकास, परिपक्वता, संतृप्ति, पतन आदि अवस्थाएँ आती है।

उत्पाद जीवन चक्र का अर्थ

उत्पाद जीवन चक्र किसी उत्पाद के जीवन की उन अवस्थाओं का क्रमागत अनुक्रम है जिन्हें उत्पाद अपने जीवन काल के दौरान पूरा करता है। उत्पाद जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में उत्पाद प्रस्तुतीकरण से लेकर बाजार पतनावस्था तक उत्पाद विक्रय का क्रम आता है। अतः एक उत्पाद का अपने जीवनकाल में प्रस्तुतीकरण, विकास, परिपक्वता, संतृप्ति, पतन आदि अवस्थाओं से गुजरना ही उत्पाद जीवन चक्र कहलाता है।

जिस प्रकार एक मानव को अपने जीवनकाल में शैशव, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था से गुजरना पड़ता है, उसी प्रकार प्रत्येक उत्पाद को भी विभिन्न अवस्थाओं – प्रस्तुतीकरण, विकास, परिपक्वता, पतन एवं अप्रचलन से गुजरना पड़ता है, इसे ही उत्पाद जीवन चक्र कहते है। किन्तु, कभी–कभी मानव जीवन चक्र की तरह उत्पाद जीवन भी अचानक ही किसी भी अवस्था में समाप्त हो सकता है।

परिभाशाएँ

फिलिप कोटलर के अनुसार, ''उत्पाद जीवन–चक्र किसी उत्पाद के विक्रय इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं को जानने का प्रयास है।''

आर्क पैटन के अनुसार, ''एक उत्पाद का जीवन–चक्र अनेक बातों में मानवीय जीवन–चक्र के साथ समानता रखता है, उत्पाद का जन्म होता है, उसकी आवेगपूर्ण वृद्धि होती है, प्रबल परिपक्वता पर पहुँचता है और तत्पश्चात् पतन को प्राप्त होता है।''

लिपसन एवं डारलिंग के अनुसार, ''उत्पाद जीवन–चक्र से आशय बाजार स्वीकरण की उन अवस्थाओं से है जिनमें एक उत्पाद की अपने बाजार प्रस्तुतकीरण से लेकर बाजार–विकास बाजार संतृप्ति, बाजार पतन एवं बाजार मृत्यु की अवस्थाएँ सम्मिलित होती है।''

इस प्रकार उत्पाद जीवन चक्र से आशय कोई भी वस्तु जिसे कि अपने जीवनकाल में विभिन्न स्थितियों में से गुजरना पड़ता है, वह उत्पाद जीवन चक्र कहलाता है। यह हो सकता है कि अलग–अलग वस्तुओं का जीवन चक्र अलग–अलग हो। क्योंकि कुछ वस्तुएँ तो नाशवान होती हैं तो कुछ टिकाऊ होती है। उदाहरण– फैशनेवल कपड़े, जो कि फैशन परिवर्तन के कारण शीघ्र ही अप्रचलित हो जाते है। इसके विपरीत मशीन, टेलीफोन, पंखा एवं अन्य औद्योगिक माल का जीवन चक्र कई दशकों तक रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ उत्पाद ऐसे होते है, जिन्हें प्रारम्भिक अवस्था को पूरा करने में ही कई वर्ष लग जाते है जबकि कुछ उत्पाद कुछ सप्ताह में ही प्रारम्भिक अवस्था को पूरा कर लेते है। यह आवश्यक नही है कि सभी उत्पाद प्रारम्भिक अवस्था में सफल हो, कुछ असफल भी हो जाते है।

उत्पाद जीवन चक्र की वि□ाशताएँ

उत्पाद जीवन चक्र अवधारणा के सम्बन्ध में इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है –

1. प्रत्येक उत्पाद का जीवन चक्र ठीक उसी तरह से चलता है **जिस प्रकार किसी जीवित प्राणी का जीवन चक्र चलता है।**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. प्रत्येक उत्पाद का जीवन चक्र सामान्यतः **विभिन्न क्रमागत अवस्थाओं** को पार करता हुआ आगे बढ़ता है।

3. सामान्यतः प्रत्येक उत्पाद के जीवन चक्र की **कुछ प्रमुख अवस्थाएँ** होती है, उनमें प्रमुख हैं : उत्पाद जन्म एवं प्रस्तुतीकरण, बाजार विकास, परिपक्वता, संतृप्ति तथा पतन।

4. इन विभिन्न अवस्थाओं में उत्पाद का **विक्रय एवं उससे अर्जित लाभ बढ़ता तथा घटता है।**

5. सभी उत्पादों के जीवन चक्र की प्रत्येक **अवस्था की आयु एकसमान** नहीं होती है। प्रत्येक अवस्था की आयु उत्पाद की नवीनता से बढ़ायी जा सकती है।

6. कोई भी उत्पाद अपने जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं को **एकसमान गति से पार नहीं करता है।**

7. जीवन चक्र की प्रत्येक अवस्था में **उत्पाद की बाजार स्थिति बाजार परिस्थितियों** से प्रभावित होती है।

8. उत्पाद का जीवन चक्र **जीवित प्राणी की तुलना में प्रायः सीमित होता है।**

9. प्रत्येक उत्पाद के जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में **भिन्न–भिन्न प्रकार की उत्पादन, विपणन, वित्तीय, मानव संसाधन व्यूहरचनाओं** की आवश्यकता पड़ती है।

उत्पाद जीवन चक्र की अवस्थाएँ

(Stages of Product Life Cycle)

उत्पाद विकास अवस्था से लेकर पतन से मृत्यु तक की उत्पाद जीवन–चक्र अवधारणा को छः अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है, जो निम्नानुसार है –

1. **उत्पाद विकास अवस्था (Product development stage)** – इसे उत्पाद की जन्मावस्था भी कह सकते है। उत्पाद जीवन चक्र का प्रारम्भ उत्पाद विकास की प्रक्रिया के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। उत्पाद विकास प्रक्रिया में उत्पाद की सर्वप्रथम जाँच विपणन की जाती है। तत्पश्चात् उसका व्यवसायीकरण किया जाता है। इस अवस्था में उत्पाद का विक्रय प्रारम्भ नहीं होता है। जबकि निवेश लागतें बहुत अधिक होती हैं। फलतः इस अवस्था में उत्पाद से लाभ होने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है।

2. **प्रस्तुतीकरण अवस्था (Introduction stage)** – उत्पाद विकास की प्रक्रिया सम्पन्न होने के साथ ही उत्पाद को बाजार में प्रस्तुत किया जाता है। यह उत्पाद की **''बाल्यावस्था''** है। इस अवस्था में बहुत कम उपभोक्ता एवं व्यापारी इसे जानते है। इसके गुणों से भी बहुत लोग परिचित नहीं होते हैं। अतः इस अवस्था में उत्पाद का बाजार में कोई विशेष स्थान नहीं होता है। फलतः इसकी माँग भी बहुत सीमित होती है। संक्षेप में, इस अवस्था में सामान्यतः उत्पाद की स्थिति इस प्रकार होती है–

   (i) उत्पाद की मांग बहुत कम होती है।

   (ii) उत्पाद की माँग में वृद्धि दर भी बहुत कम होती है।

   (iii) माल की माँग भी कुछ उपभोक्ताओं तक ही सीमित होती है।

   (iv) उत्पाद से लाभ बहुत कम होते हैं या उससे हानि भी हो सकती है।

   (v) कम लाभों या हानि का प्रमुख कारण उत्पादन एवं संवर्द्धन लागतों का अधिक होना ही होता है।

   (vi) माल के वितरण के लिए मध्यस्थों को आकर्षित करने तथा माल का भण्डार बनाने के लिए बहुत अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(vii) संवर्द्धनात्मक साधनों पर भी व्यय अधिक होता है।

3. **विकास अवस्था (Growth stage)** – यदि उत्पाद बाजार में प्रवेश करने के बाद उपभोक्ताओं को अपेक्षित संतुष्टि प्रदान कर पाता है, तो वह विकास अवस्था को प्राप्त करता है। इस अवस्था में उत्पाद का विक्रय तीव्र गति से बढ़ता है। विद्यमान उपभोक्ता तो उत्पाद का क्रय करते ही है साथ ही नये उपभोक्ता भी उत्पाद क्रय करने लगते हैं। संतुष्ट उपभोक्ताओं द्वारा उत्पाद की प्रशंसा करने से उत्पाद का विक्रय और भी तीव्र गति से बढ़ता है।

   उत्पाद का विक्रय बढ़ते जाने से बाजार में नई प्रतिस्पर्धी संस्थाए भी जन्म लेते लगती हैं। वे अपने उत्पादों को नवीन लक्षणों के साथ प्रस्तुत करती है। इससे बाजार का विस्तार होने लगता हैं। बाजार में मध्यस्थों की संख्या भी बढ़ती है तथा इनके पास भी स्टॉक रहने से उत्पाद का विक्रय और अधिक बढ़ जाता हैं। इस अवस्था में उत्पाद का मूल्य, संवर्द्धनात्मक व्यय आदि का स्तर भी सामान्यतः पूर्ववत् ही बना रहता है।

   उत्पाद विकास अवस्था में लाभों में वृद्धि होती है। इसका प्रमुख कारण विक्रय संवर्द्धन एवं उत्पादन की लागतें समान बनी रहती हैं जबकि विक्रय अधिक होने से प्रति इकाई लागत कम हो जाती है। इस अवस्था में संस्था अपने विकास को तीव्र करने पर ध्यान देने लगती है। वह उत्पादों की किस्म सुधारने तथा उत्पादों में नवीन लक्षणों का विकास करने पर ध्यान भी देती है। इतना ही नहीं, संस्था नये बाजार क्षेत्रों में प्रवेश करने तथा वितरण के नये माध्यमों को अपनाने का भी प्रयास करती हे। समय आने पर संस्था अपने उत्पादों के मूल्यों में भी कमी करती है ताकि अधिकाधिक ग्राहकों को आकर्षित किया जा सकें।

4. **बाजार परिपक्वता अवस्था (Maturity stage)** – प्रत्येक उत्पाद के जीवन में एक ऐसी अवस्था भी आती है, जब उसके विक्रय की विकास की गति स्थिर हो जाती है तथा धीरे धीरे कम होने लगती है। यही अवस्था उत्पाद की परिपक्वता की अवस्था के नाम से जानी जाती है। इससे उसके लाभ भी कम होने लगते है तथा प्रतिस्पर्धा भी तीव्र होने लगती है। ऐसे में संस्था को संवर्द्धनात्मक साधनों का उपयोग बढ़ाना पड़ता है, जिससे लाभों पर और भी दबाव बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में उत्पाद पंक्ति को भी ऊपर एवं नीचे बढ़ाया जाता है। किन्तु इसके परिणामस्वरूप भी लागतों में वृद्धि होती है तथा लाभों पर और दबाव बढ़ता है।

   विक्रय वृद्धि दर में गिरावट होने से बाजार में उत्पादों एवं उत्पादकों दोनों की ही संख्या में वृद्धि होती है। इससे प्रतिस्पर्धा बढ़ती है, मूल्यों में गिरावट आने लगती है तथा विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन व्ययों में वृद्धि होने लगती हैं। इतना ही नहीं, प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए उत्पाद में सुधार करने हेतु शोध एवं विकास के व्यय भी करने पड़ते है। इस सबका अन्तोगत्वा प्रभाव लाभों में कमी के रूप में ही होता है। ऐसे में कमजोर उत्पादकों को प्रतिस्पर्धी से बाहर होना पड़ता है। केवल सुदृढ़ संस्थाएँ ही ऐसी प्रतिस्पर्धा में टिकी रहती है।

5. **बाजार संतृप्ति अवस्था (Saturation stage)** – उत्पाद ज्यों–ज्यों संतुष्टि अवस्था की ओर अग्रसर होता है, त्यों–त्यों परिपक्वता की स्थिति में पायी जाने वाली सभी स्थितियाँ और अधिक प्रखर होने लगती हैं। दूसरे शब्दों में, प्रतिस्पर्धा और तीव्र हो जाती है, सम्पूर्ण बाजार अनेक ब्राण्ड के उत्पादों से संतृप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में संस्थाएँ विद्यमान उत्पादों के नये उपयोग खोजकर या फैशन में परिवर्तन करके उत्पादों का विक्रय करने का प्रयास करती हैं। ऐसे में मध्यस्थों की भूमि भी बढ़ जाती है। तब संस्थाएँ अपनी लागतों को घटानें के तरीके ढूँढ़ने लगती है।

6. **बाजार पतन अवस्था (Market Decline stage)** – जीवन–चक्र की इस अवस्था में उत्पाद का चमकता सूर्य डुबने की ओर बढ़ता हैं। नये या प्रतिस्थापन उत्पाद बाजार में आने से विद्यमान उत्पादों का विक्रय निरन्तर गिरता जाता है।

   उत्पाद के इस अवस्था में पहुँचने पर विक्रय गिरने के कुछ भिन्न कारण होते हैं। जैसे–उपभोक्ताओं की रूचि में परिवर्तन, तकनीक में परिवर्तन, अत्यधिक प्रतिस्पर्धा आदि। इन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सब कारणों से विक्रय तथा लाभों में भारी कमी होने लगती हैं। ऐसे में कई संस्थाएँ अपना कारोबार भी बन्द कर देती है। जो संस्थाएँ टिकी रहती हैं, वे भी अपने उत्पादों की संख्या को घटा लेती हैं इतना ही नही वे छोटे बाजार क्षेत्रों तथा छोटे मध्यस्थों को भी छोड़ देती हैं। वे अपने संवर्द्धनात्मक व्ययों में भी कटौती कर लेती हैं। अन्ततः वे अपने उत्पादों के मूल्य को भी घटा लेती है।

उत्पाद जीवन चक्र के दौरान विपणन व्यूहरचनाएँ

(Marketing Strategies during product life cycle)

उत्पाद जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न–भिन्न प्रकार की विपणन व्यूहरचनाओं को अपनाने की आवश्यकता पड़ती है। अवस्था के अनुरूप कुछ विपणन व्यूहरचनाएँ निम्नानुसार हो सकती है :

1. **उत्पाद विकास अवस्था (Product development stage)** – उत्पाद विकास की अवस्था में किसी विशेष विपणन व्यूहरचना को अपनाने की आवश्यकता नहीं होती है। इस अवस्था में उत्पाद के सकल बाजार परीक्षण करने एवं ग्राहाकों की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने योग्य उत्पाद के विकास करने पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है।

2. **प्रस्तुतीकरण या प्रवे□ा अवस्था (Introduction stage)** – इस अवस्था में जनता एवं मध्यस्थ उत्पादों के सम्बन्ध में बहुत कम जानते हैं। यदि जानकारी हो तो विपणन उत्पादों को छोड़कर नये उत्पादों को अपनाने से संकुचाते है। इसके अतिरिक्त भी नया उत्पाद सभी स्थानों के मध्यस्थों के पास उपलब्ध भी नहीं होता है। अतः उत्पाद प्रवेश अवस्था में निम्नांकित विपणन व्यूहरचनाएँ अपनायी जा सकती है।

   (i) उत्पाद के लिए **सघन विज्ञापन अभियान** चलाया जाना चाहिये जिससे जनता एवं मध्यस्थों को उत्पाद के सम्बन्ध में व्यापक जानकारी हो सके,

   (ii) उत्पाद के लिए **समुचित विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रम** लागू करना चाहिए। इस कार्यक्रम में उपभोक्ता तथा मध्यस्थ संवर्द्धन विधियों दोनों को ही अपनाना चाहिए।

   (iii) उत्पाद मूल्य **सामान्य लाभ की नीति पर** आधारित होना चाहिए। अतः लागत + विधि से मूल्य निर्धारित करना चाहिए।

   (iv) **चुनिन्दा आधार पर मध्यस्थों** की नियुक्ति करनी चाहिए।

3. **विकास अवस्था (Growth stage)** – इस अवस्था में संस्था के उत्पादों का विक्रय बढ़ने लगता हैं। अतः प्रति इकाई संवर्द्धनात्मक व्यय, वितरण व्यय, उत्पादन व्यय में कमी आती है। फलतः संस्था के प्रति इकाई एवं कुल लाभों में वृद्धि होती है। लाभों में वृद्धि को देखकर बाजार में नये उत्पाद आने लगते है और प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगती है। अतः मूल्य वृद्धि करना सम्भव नहीं होता है। ऐसी स्थिति में निम्नांकित प्रकार की व्यूहरचनाएँ अपनायी जा सकती है।

   (i) इस अवस्था में उत्पाद की किस्म में सुधार किया जाना चाहिए।

   (ii) उत्पाद में नये–नये गुणों का समावेश करना चाहिए।

   (iii) उत्पाद के नये मॉडल प्रस्तुत करने चाहिए।

   (iv) उत्पाद को नये बाजार क्षेत्रों में प्रस्तुत करना चाहिए।

   (v) उत्पाद पर पर्याप्त गारण्टी एवं अन्य सुविधाएँ उपलब्ध करनी चाहिए।

   (vi) मध्यस्थों की संख्या बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(vii) विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन अभियान का क्षेत्र विस्तृत करना चाहिए।

(viii) अधिक ग्राहकों को आकर्षित करने हेतु उचित समय पर मूल्य घटाने पर भी विचार करना चाहिए।

4. **परिपक्वता अवस्था (Maturity Stage)**– इस अवस्था में संस्था को भीषण प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। फलतः विक्रय बढ़ने की गति मन्द पड़ जाती है, प्रतिस्पर्धा बढ़ने के साथ–साथ लाभों में भी कमी आने लगती हैं ऐसे में केवल सुदृढ आर्थिक स्थिति वाली तथा बाजार चुनौतियों का मुकाबला करने वाली संस्थाएँ ही बाजार में अपना अस्तित्व बनाये रख पाती है। ऐसी अवस्था में निम्नांकित प्रकार की व्यूहरचनाएँ अपनाना लाभदायी हो सकता है।

(i) शोध एवं विकास के प्रयास तेज करके उत्पाद में नवीनता लाने का उपाय करना चाहिए। उससे संस्था के रंग, रूप, किस्म आदि में परिवर्तन करना चाहिए।

(ii) उत्पाद मिश्रण में परिवर्तन करना चाहिए।

(iii) उत्पाद के नवीन उपयोग ढूँढ़ना चाहिए तथा नये उपभोक्ता/प्रयोगकर्ता खोजने चाहिए।

(iv) नये उपभोक्ताओं तथा प्रतिस्पर्धियों के ग्राहको को आकर्षित करने के लिए मूल्यों में कमी करने पर भी विचार करना चाहिए।

(v) विज्ञापन अभियान में अधिक पैनापन लाना चाहिए।

(vi) विक्रय संवर्द्धन साधनों को अधिक आक्रामक रूप में अपनाना चाहिए।

(vii) बड़े–बड़े मध्यस्थों या बड़े फुटकर व्यापार गृहों की सेवाएँ लेनी चाहिए।

(viii) ग्राहकों को नयी एवं अधिक सुविधाएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध करनी चाहिये।

5. **संतप्ति अवस्था (Stauration Stage)** – उत्पाद जीवन चक्र की इस अवस्था में प्रतिस्पर्धा और भीषण हो जाती है। बाजार में अनेक प्रतिस्पर्धी ब्राण्डों के उत्पाद अत्यन्त प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर उपलब्ध होते हैं। बाजार में सस्ते स्थानापन्न उत्पाद भी उपलब्ध होने लगते है। सभी उत्पाद सभी स्थानों पर आसानी से उपलब्ध होने लगते हैं। फलतः मूल्य तथा लाभ घटने लगते है। अतः ऐसी अवस्था में भी उन सभी विपणन व्यूहरचनाओं को अधिक प्रभावी ढंग से अपनाया जा सकता है जो परिपक्वता अवस्था में अपनायी जा सकती हो। इनके अतिरिक्त, संस्थाओं को अपनी लागतों को घटानें के उपाय भी प्रारम्भ करने पड़ते है।

6. **पतन अवस्था (Decline Stage)** – इस अवस्था के आने पर उत्पाद की माँग एवं उसके विक्रय में धीरे–धीरें कमी होने लगती है। अन्य नये, अधिक उन्नत एवं प्रतिस्थापन्न उत्पाद बाजार में अपना स्थान बनाने लगते है। अन्ततः संस्था के उत्पादों का पतन प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु पतन की गति को रोकने हेतु निम्नांकित विपणन व्यूहरचनाएँ अपनायी जा सकती है:

(i) उत्पादों का बाजार में अस्तित्व बनाये रखने हेतु प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने की योजना बनानी चाहिए।

(ii) सभी प्रकार की लागतों में कमी लाने के उपाय करने चाहिए ताकि लाभों में भारी कमी न आये।

(iii) कुछ हानिप्रद उत्पादों को अन्य संस्थाओं को बेचकर हानि से बचने का भी प्रयास करना चाहिए।

(iv) अलाभकारी मध्यस्थों को हटाने पर विचार करना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(v) संवर्द्धनात्मक प्रयासों पर व्यय न्यूनतम करना चाहिए।

(vi) विज्ञापन भी आवश्यकतानुसार ही देना चाहिए।

(vii) परिस्थितियों के अनुरूप उत्पाद मूल्य में कटौती भी करनी चाहिए।

उत्पाद जीवन चक्र को प्रभावित करने वाले घटक

उत्पाद जीवन चक्र को अनेक घटक प्रभावित करते है। उन घटकों में से प्रमुख घटक निम्नानुसार है :–

1. **तकनीकी परिवर्तन की गति (Speed of technological Development)** – तकनीकी परिवर्तन की गति उत्पादों के जीवन चक्र को प्रभावित करती है। नवीन तकनीकी के विकास से विद्यमान उत्पादों में परिवर्तन किया जा सकता है तथा नवीन उत्पादों का निर्माण भी किया जा सकता है। इन दोनों ही स्थितियों में विद्यमान उत्पादों का जीवन चक्र छोटा हो जाता है। तकनीकी विकास की गति जितनी अधिक होगी विद्यमान उत्पादों में परिवर्तन एवं नये उत्पादों के निर्माण की गति भी उतनी ही अधिक होगी। फलतः विद्यमान उत्पादों का जीवन चक्र भी उसी गति से छोटा हो जायेगा। विपरीत स्थिति में उनका जीवन चक्र अपेक्षाकृत लम्बा होगा।

2. **बाजार स्वीकरण की गति (Rate of market acceptance)** – उत्पाद की बाजार की गति भी उत्पाद जीवन चक्र को प्रभावित करती है। यदि बाजार की उत्पाद स्वीकरण की गति तेज है तो उत्पाद जीवन चक्र प्रायः छोटा हो जाता है। यदि बाजार की उत्पाद स्वीकरण की गति धीमी है तो उत्पाद जीवन चक्र लम्बा खिंच जाता है। इसके पीछे तर्क यह है कि यदि बाजार की उत्पाद स्वीकरण की गति तीव्र होने पर वह बाजार नये एवं प्रतिस्थापन्न उत्पादों को भी आसानी से स्वीकार कर लेगा। फलतः विद्यमान उत्पाद का जीवन चक्र छोटा हो जायेगा। यह उल्लेखनीय है कि भारत के ग्रामीण बाजारों की तुलना में शहरी बाजार में उत्पाद स्वीकरण की गति तीव्र है। अतः शहरों में उत्पाद जीवन चक्र छोटा होता है जबकि गाँवों में अपेक्षाकृत लम्बा होता है।

3. **स्थानापन्न उत्पादों की उपलब्धता एवं विकास (Availability and Development of Substitute Products)** – जब किसी उत्पाद का स्थानापन्न उत्पाद बाजार में उपलब्ध नहीं होता है, तब तक विद्यमान उत्पाद बिकता रहता है। इसलिए उत्पाद जीवन–चक्र लम्बा हो जायेगा अन्यथा छोटा हो जायेगा। इसके अतिरिक्त जब किसी स्थानापन्न उत्पाद का विकास हो जाता है तो उत्पाद का जीवन–चक्र छोटा हो जायेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्थानापन्न उत्पादों की उपलब्धता एवं विकास उत्पाद जीवन–चक्र को प्रभावित करता है।

4. **प्रतिस्पर्धा की स्थिति (State of Competition)** – बाजार में विद्यमान प्रतिस्पर्धा की स्थिति भी उत्पाद जीवन चक्र को प्रभावित करती है। यदि बाजार में नये उत्पादों को बिना किसी विशेष प्रतिस्पर्धा के प्रस्तुत किया जा सकता है तो विद्यमान उत्पादों का जीवन चक्र छोटा ही रहेगा। किन्तु, यदि बाजार में कड़ी प्रतिस्पर्धा है तो कोई भी नया एवं स्थानापन्न उत्पाद आसानी से बाजार में प्रवेश नहीं कर सकेगा। फलतः विद्यमान उत्पाद का जीवन–चक्र अधिक लम्बा हो जायेगा।

5. **संस्था की जोखिम वहन करने की क्षमता (Risk bearing capacity of the organization)** – संस्था की जोखिम उठाने की क्षमता उस संस्था के उत्पादों के जीवन चक्र को प्रभावित करती है। जिस संस्था की जोखिम उठाने की क्षमता अधिक होती है वह विज्ञापन, प्रचार–प्रसार, उत्पाद नवीकरण आदि पर भारी व्यय कर सकती है तथा बाजार की चुनौतियां का सफलतापूर्वक सामना कर सकती है। फलतः उस संस्था के उत्पादों का जीवन चक्र लम्बा किया जा सकता है। किन्तु, विपरीत स्थिति में संस्था बाजार चुनौतियों का सामना नहीं कर सकेगी। अतः उसके उत्पादों का जीवन चक्र छोटा हो जायेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. **संस्था की आर्थिक एवं प्रबन्धकीय क्षमता (Economic and managerial capacity of the organization)**– जिन संस्थाओं की आर्थिक एवं प्रबन्धकीय क्षमता ठोस होती है उन संस्थाओं के उत्पादों को बाजार से उखाड़ फेंकना किसी भी प्रतिस्पर्धी संस्था के लिए बहुत कठिन होता है। फलतः सुदृढ आर्थिक एवं प्रबन्धकीय क्षमता वाली संस्थाओं के उत्पादों का जीवन चक्र लम्बा चलता है। विपरीत स्थिति में जीवन चक्र सीमित ही रहता है।

7. **संस्था की ख्याति एवं छवि (Goodwill and image of the organization)** – उत्पाद निर्माण एवं विपणन करने वाली संस्था की ख्याति एवं छवि भी उत्पाद जीवन चक्र को प्रभावित करती है। अच्छी ख्याति एवं छवि वाली संस्थाओं के उत्पादों का जीवन चक्र प्रायः लम्बा होता है। उनके उत्पाद सामान्यतः बेमौत नहीं मरते है। किन्तु, जिन संस्थाओं की ख्याति एवं छवि ठीक नहीं होती है उनके उत्पादों पर ग्राहकों को पूरा यकीन एवं भरोसा नही होता है। अतः लोग उनके उत्पादों का उपयोग करना आसानी से छोड़ देते है। फलतः उन उत्पादों का जीवन चक्र छोटा ही रह जाता है।

8. **उत्पादों को पूर्ण वैधानिक संरक्षण (Full Legal Protection to Products)** सरकारें उत्पादों को पूर्ण संरक्षित करने हेतु अनेक कानून, (जैसे–पेटेन्ट, कॉपीराइट एवं ट्रेडमार्क अधिनियम) बनाती हैं एवं उनमें समय–समय पर संशोधन तथा परिवर्तन करती है, परिणामस्वरूप उत्पाद जीवन–चक्र लम्बा होगा। इसके विपरीत जब कानूनों के अन्तर्गत उत्पादों को वैधानिक संरक्षण नहीं मिलता है तो प्रतिस्पर्द्धी उत्पादों की नकल करते हैं तो मूल उत्पादों का जीवन चक्र छोटा हो जायेगा।

9. **उत्पाद नियमन व्यवस्था (Product regulatory system)** देश की उत्पाद नियमन व्यवस्था उत्पादों के जीवन चक्र को छोटा या बड़ा कर सकती है। उदाहरणार्थ, देश की नियमन व्यवस्था पर्यावरण संरक्षण हेतु वाहनों के उपयोग हेतु कुछ मानदण्ड निर्धारित करती है। ऐसी स्थिति में जो वाहन निर्धारित मानदण्डों को पूरा नहीं करेंगे उन्हें उपयोग में नहीं लाया जा सकेगा। फलतः उन वाहनों का जीवन चक्र छोटा हो जायेगा। इसी प्रकार दवाओं का जीवन चक्र सरकारी नियमन व्यवस्था से प्रभावित होता रहता है। नवीन शोध परिणामों को ध्यान में रखकर सरकार कई दवाओं को बाजार में बेचने पर प्रतिबन्ध लगा देती है। इस प्रकार देश की नियमन व्यवस्था भी उत्पाद जीवन चक्र को प्रभावित करती हैं।

उत्पाद जीवन–चक्र का महत्त्व (Importance of Product Life Cycle)

उत्पाद जीवन–चक्र अवधारणा, मानव जीवन–चक्र अवधारणा की तुलना में काफी सरल होती है। इतने पर भी मानव जीवन–चक्र की भाँति, उत्पाद जीवन–चक्र का अध्ययन विपणन प्रबन्धकों एवं विपणनकर्त्ताओं को अमूल्य जानकारी उपलब्ध कराने में सहयोगी होता है। इसका कारण यह है कि इसके अध्ययन से संस्थाओं के जीवन को गतिशीलता प्रदान की जा सकती है, प्रतिस्पर्द्धी स्थिति को बनाये रखा जा सकता है, लाभों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, नये उत्पाद प्रस्तुतीकरण के समय को पहचाना जा सकता है और विपणन कार्यक्रमों को प्रभावी रूप प्रदान किया जा सकता है।

संक्षेप में, उत्पाद जीवन–चक्र के महत्व को इन बिन्दुओं की सहायता से समझा जा सकता है।

1. **उत्पाद नियोजन में सहायक (Helps in product planning)**– उत्पाद जीवन–चक्र, उत्पाद नियोजन में सहायक होता है। इसका कारण यह है कि प्रतिस्पर्द्धियों द्वारा अपनायी जाने वाली व्यूहरचनाओं की जानकारी हो जाती है, विद्यमान उत्पादों के जीवन–चक्र की अवस्था को समझकर विद्यमान उत्पादों में सुधार करने एवं नवीन उत्पादों का विकास करने के लिए आवश्यक नियोजन किया जा सकता है। इस प्रकार उत्पाद जीवन–चक्र को उत्पाद नियोजन उपकरण के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

2. **विक्रय पूर्वानुमान में सुविधा (Facilitates in Sales Forecasting)**– विपणनकर्त्ता उत्पाद जीवन–चक्र की जानकारी कर यह अनुमान लगाने में सफल हो सकता है कि कब, किस उत्पाद का एवं कितना विक्रय होने की सम्भावना है। वह उत्पाद जीवन–चक्र को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

समझकर विभिन्न अवस्थाओं–परिपक्वता, संतृप्ति, अवनति एवं पतन की अवस्था आदि में आने वाली समस्याओं का पूर्वानुमान द्वारा पता लगाकर उचित समाधान के लिए समय पर विपणन व्यूहरचनाओं का निर्माण कर सकता है।

3. **विपणन कार्यक्रम की आव□यकता का ज्ञान (Knowledge of Marketing Programme's Need)**–उत्पाद जीवन–चक्र की पृथक्–पृथक् अवस्थाओं के लिए अलग अलग विपणन कार्यक्रमों की आवश्यकता होती है। एक ही प्रकार के विपणन कार्य उत्पाद की अलग–अलग अवस्थाओं में एक–सा परिणाम नहीं देते है। इस सम्बन्ध में **जॉन एसमालवुड़** ने उदाहरण दिया कि –

   (i) उत्पाद प्रस्तुतीकरण एवं विकासावस्था के समय विक्रय संवर्द्धन की आवश्यकता अधिक होती है, और

   (ii) उत्पाद पतनावस्था में विक्रय संवर्द्धन लाभदायक नहीं होगा।

4. **विपणन व्यूहरचना का आधार (Basis of Marketing Strategy)** – उत्पाद जीवन–चक्र विपणन व्यूहरचनाओं का आधार है। इसलिए उत्पाद जीवन–चक्र की विभिन्न अवस्थाओं को विपणनकर्ता यथोचित विपणन कार्यक्रमों द्वारा परिवर्तित कर न केवल उत्पाद लागतों को कम कर सकता है अपितु उत्पाद को पतनावस्था की ओर जाने से रोक सकता है।

5. **विभिन्न उत्पादों की महत्ता समझने हेतु (To Understand the Importance of Different Product)**– विभिन्न उत्पादों के जीवन–चक्र का सूक्ष्म अध्ययन कर यह ज्ञान किया जा सकता है कि कौन–से उत्पाद ऐसे है जिसके विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन पर व्यय करने से संस्था के लाभों में वृद्धि हो सकती है।

6. **नये उत्पादों का विकास (Development of New Products)** – यह अटल सत्य है कि मानव अमर नही है, उसी प्रकार उत्पाद भी स्थायी नहीं है अर्थात् उनका पतन अवश्य है। अतः यह विचार एक विपणनकर्ता का ध्यान संस्था के विद्यमान उत्पादों के स्थानापन्न की ओर से ध्यान आकर्षित करता है।

7. **मूल्य निर्धारण में सहायक (Facilitates Product Pricing)**–उत्पाद जीवन–चक्र की जानकारी होने से विपणकर्त्ता को उत्पादों का मूल्य निर्धारित करने में भी सहायता करता है।

   (i) उत्पाद की प्रवेशावस्था में उत्पाद का मूल्य अधिक निर्धारित किया जा सकता है।

   (ii) परिपक्वता अवस्था एवं संतृप्ति अवस्था में उत्पाद का मूल्य अधिक नही रखा जा सकता है।

   इस प्रकार की जानकारी होने से विपणकर्ता को अपने उत्पादों के मूल्य निर्धारण में काफी सहायता मिलती है।

8. **लाभानुमानों की जानकारी (Knowledge of Profit-forecasting)** – उत्पाद जीवन–चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में लाभानुमानों की जानकारी हो सकती है क्योंकि लाभों पर उत्पाद जीवन–चक्र का प्रभाव होता है। उदाहरण के तौर पर, उत्पाद प्रस्तुतीकरण की अवस्था में लाभ न होकर हानि ही होती है, परिपक्वता एवं संतृप्ति अवस्था में लाभों की दरों में गिरावट की प्रवृत्ति पायी जाती है।

9. **संवर्द्धनात्मक निर्णयों में सहायक (Facilitates Promotional Decisions)**–व्यावसायिक जगत में उत्पाद अथवा सेवा की जानकारी देने के लिए अनके संवर्द्धनात्मक साधनों या माध्यमों का उपयोग किया जाता है, जैसे– विज्ञापन, प्रचार–प्रसार, व्यक्तिगत विक्रय, विक्रय संवर्द्धन एवं जन–सम्पर्क आदि। उत्पाद जीवन–चक्र की विभिन्न अवस्थाएँ यह बताने में सक्षम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है कि किस साधन या माध्यम का उपयोग कब, किस रूप में, किस सीमा तक एवं कितनी तेजी के साथ करना है। ऐसी दशा में विपणनकर्ता आसानी से निर्णय लेकर साधनों का उपयोग कर सकता है।

10. **लाभों में वृद्धि (Increase in Profit)**–उत्पाद जीवन–चक्र द्वारा संस्था के लाभों को बढ़ाने की योजना बनायी जा सकती है। यह कार्य उत्पाद जीवन–चक्र प्रस्तुतीकरण को कम करके या उत्पाद की विकास अवधि को लम्बा करके किया जा सकता है।

11. **उत्पादन निवे□ा निर्णय में सहायक (Facilitates Decisions for Investment)**–उत्पाद जीवन–चक्र अवधारणों को जानकर उत्पादों की सफलता या असफलता के समय का अनुमान लगाया जा सकता है। इसी के आधार पर विपणनकर्ता यह योजना बना सकता है कि किस उत्पाद का निर्माण और बाजार में प्रस्तुत करने के लिए निवेश किया जाए एवं किसमें नहीं? इस प्रकार उत्पाद जीवन–चक्र के ज्ञान से सही उत्पाद पर सही समय पर निवेश कर लाभ उठाया जा सकता है।

12. **उत्पाद नियन्त्रण में सहायता (Helps in Product Control)**–उत्पाद जीवन–चक्रों का अध्ययन करके विपणकर्त्ता आसानी से उत्पाद नियन्त्रण भी कर सकता है। जैसे कब किस नये उत्पाद को बाजार में प्रस्तुत करना है, किस उत्पाद में सुधार करना है और किसमें नहीं, कब एवं किस उत्पाद को बाजार से बाहर करना है आदि। इसी प्रकार उत्पाद जीवन–चक्र के अध्ययन से संस्था अपने नवीन उत्पाद की जीवन–चक्र अवस्था ज्ञात कर सकती है और उत्पाद विक्रय सम्बन्धी नीतियों की समीक्षा कर उत्पाद विकास के लिए समय पर कोई उपयुक्त निर्णय भी ले सकती है।

प्र□न बोध –

लघुतरात्मक प्र□न–

1. उत्पाद जीवन चक्र से आप क्या समझते है ?
2. उत्पाद जीवन चक्र की विशेषताएँ बताईयें।
3. बाजार प्रस्तुतीकरण अवस्था में कौन–कौन सी विपणन व्यूहरचनाएँ अपनायी जानी चाहिए ?
4. बाजार परिपक्वता अवस्था में अपनायी जाने वाली विपणन व्यूहरचनाओं का उल्लेख कीजिए ?

निम्बन्धात्मक प्र□न –

1. उत्पाद जीवन चक्र की परिभाषा दीजिए। उत्पाद जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
2. उत्पाद जीवन चक्र को प्रभावित करने वाले घटकों की विवेचना कीजिए।
3. विपणन प्रबन्धक की दृष्टि से उत्पाद जीवन चक्र के महत्व को समझाईयें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Section – C

अध्याय– प्रथम

मूल्य, छूट एवं बट्टा

मूल्य (Price)–

मूल्य निर्धारण विपणन कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसका आधुनिक अर्थव्यवस्था, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान हैं। प्रत्येक कम्पनी के लिए मूल्यों का निर्धारण करना आवश्यक होता है क्योंकि इसके बिना वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय–विक्रय असम्भव है कोई भी निर्माण/फर्म/उपक्रम/व्यावसायिक प्रतिष्ठान तभी सफलता प्राप्त कर सकता है, बाजार मे टिक सकता है, भावी प्रगति कर सकता है जब मूल्य निर्धारण का कार्य पूर्ण सूझबूझ, योग्यता एवं अनुभव के आधार पर किया जाए।

कीमत का अर्थ (Meaning and Definitions of Price)–

सामान्य अर्थ में जब ग्राहक कोई वस्तु/सेवा क्रय करने के बदले मुद्रा के रूप में जो मात्रा देता है मूल्य कहलाता है।

एफ.ई. क्लार्क के अनुसार– कीमत किसी भी वस्तु या सेवा का बाजार मूल्य है जिसे मुद्रा में प्रकट किया जाता है।

वाल्टन हेमिल्टन के अनुसार– कीमत उन सभी दशाओं का मौद्रिक सार है जो एक वस्तु को मूल्य प्रदान करता है।

इस प्रकार मूल्य का अर्थ किसी भी वस्तु या सेवा के उस मौद्रिक प्रतिफल से है जो इस वस्तु या सेवा को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता/उपयोगकर्ता द्वारा दिया जाता है।

मूल्य निर्धारण का अर्थ एवं परिभाशा (Meaning and Definitions of Pricing)–

संकुचित अर्थ में, मूल्य निर्धारण का अर्थ किसी वस्तु या सेवा में मौद्रिक मूल्य निर्धारित करने से है। किन्तु विस्तृत अर्थ में, मूल्य निर्धारण वह कार्य एवं प्रक्रिया है। जिसे वस्तु के विक्रय से पूर्व निर्धारित किया जाता है एवं जिसके अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के उद्देश्यों, मूल्य को प्रभावित करने वाले घटकों, वस्तु का मौद्रिक मूल्य, मूल्य नीतियों एवं व्यूहरचनाओं का निर्धारण किया जाता है।

प्रो. कोरी के अनुसार– ''किसी समय विशेष पर ग्राहकों के लिए उत्पाद के मूल्य को परिमाणात्मक रूप में (रूपयों में) परिवर्तित करने की कला कीमत निर्धारण है।''

इस प्रकार मूल्य निर्धारण एक प्रबन्धकीय कार्य एवं प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत लाभप्रद विक्रय हेतु मूल्यों के उद्देश्यों, उपलब्ध मूल्य लोचशीलता, मूल्यों को प्रभावित करने वाले घटकों, वस्तु का मौद्रिक मूल्य, मूल्य नीतियों एवं व्यूहरचनाओं का निर्धारण, क्रियान्वयन एवं नियंत्रण सम्मिलित है।

मूल्य निर्धारण की मुख्य वि□ाशताएँ निम्नलिखित हैं –

1. इसमें वस्तु या सेवा का मौद्रिक मूल्य निर्धारण किया जाता है।
2. मूल्य निर्धारण का कार्य वस्तु एवं सेवा की बिक्री से पूर्व किया जाता है।
3. यह एक प्रक्रिया है क्योंकि वस्तुओं का मूल्य निर्धारण करने के लिए एक निश्चित क्रम का उपयोग किया जाता है, जेसे– मूल्य निर्धारण के उद्देश्यों, मूल्य को प्रभावित करने वाले घटकों, वस्तु का मौद्रिक मूल्य, मूल्य नीतियों एवं व्यूहरचनाओं का निर्धारण, मूल्य निर्धारित करना एवं अनुगमन करना आदि।
4. यह किसी वस्तु के मूल्य को परिमाणात्मक रूप से (रूपयों में) परिवर्तित करने की कला है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. यह एक प्रबन्धकीय कार्य भी है क्योंकि इसमें मूल्य निर्धारण की योजना बनाने से लेकर उसका क्रियान्वयन एवं नियंत्रण किया जाता है।

मूल्य निर्धारण के उद्देश्य (Objectives of Pricing)–

अधिकांश निर्माताओं का मूल्य निर्धारण का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है। इसे अल्पकाल एवं दीर्घकाल दोनों में ही कमाया जा सकता है। अतः निर्माता को यह निर्णय भी करना पड़ता है कि यह लाभ अल्पकाल में कमाना है या दीर्घकाल में।

मूल्य निर्धारण के मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सहायक एवं अन्य उद्देश्य हैं –

1. **मूल्यों में स्थिरता** – ऐसे उद्योग जहाँ उतार–चढ़ाव अधिक मात्रा में आते हैं, वहाँ पर निर्माता मूल्यों में स्थिरता लाना चाहते हैं। ऐसी संस्थाएँ जो सामाजिक उत्तरदायित्व एवं सेवा की भावना को महत्व देती है, वे अधिकतम ऐसा करती है। सभी उद्योग आपस में संयोजित होकर माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन करने का प्रयास करते हैं। इसके अलावा बढ़ते हुए मूल्यों के समय अपने विज्ञापनों में फुटकर मूल्य घोषित करती है जिससे उपभोक्ता भ्रम में नहीं रहता है।

2. **विनियोगों पर निर्धारित प्रतिफल** – प्रत्येक निर्माता मूल्यों का निर्धारण इस प्रकार करता है कि उसे अपने विनियोगों पर लाभ एक निष्चित दर के रूप में अवश्य मिल जाये। ऐसा उद्देश्य अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन हो सकता है। वह यह भी निर्धारित करता है कि अपनी पूँजी पर कितना प्रत्याय प्राप्त करना चाहता है। ऐसी नीति उन संस्थानों द्वारा अपनायी जाती है जो वस्तुओं को ऐसे क्षेत्रों में विक्रय करते हैं, जहाँ उनको संरक्षण प्राप्त है।

3. **बाजार की मलाई उतारना** – मूल्य निर्धारण के इस उद्देश्य के अन्तर्गत वस्तु को बहुत ऊँचे मूल्य पर बाजार में प्रस्तुत किया जाता है ताकि बहुत अधिक लाभों के रूप में बाजार की मलाई उतारी जा सके। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि वस्तु नई हो, उसकी प्रतिस्पर्द्धी वस्तुएँ बाजार में उपलब्ध न हो, क्रेता अधिक मूलयों से प्रभावित न होते हो। इनके अभाव में मूल्यों में परिवर्तन किया जाता है।

4. **प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना या रोकना** – कई कम्पनियाँ इस उद्देश्य से भी मूल्य निर्धारित करती है। ऐसे उद्योगों में जहाँ कीमत नेता विद्यमान हो और वस्तु उच्च प्रमापीकृत हो तो अधिकांश कम्पनियाँ नेता का अनुकरण नीति अपनाती है। इसमें कीमत नेता के बराबर ही अन्य कम्पनियाँ अपने उत्पाद का मूल्य निर्धारण करके मूल्य प्रतिस्पर्द्धा का सामना करती है। इसके विपरीत कुछ कम्पनियाँ प्रतिस्पर्द्धा को रोकने के उद्देश्य से भी मूल्य निर्धारित करती है।

5. **लाभों को अधिकतम करना** – मूल्य निर्धारण के अन्य सभी उद्देश्यों की तुलना में लाभों को अधिकतम करने के उद्देश्य को अधिकांश कम्पनियों द्वारा अपनाया जाता है। यदि यह दीर्घकालीन हो तो कम्पनी एवं समाज दोनों के लिए हितकर होता है क्योंकि इससे साधनों का उचित बँटवारा होता है।

6. **अस्तित्व की रक्षा** – कई कम्पनियाँ परिस्थितियों को देखकर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए मूल्य निर्धारण करती है। उदाहरण के तौर पर, तीव्र प्रतिस्पर्द्धा, उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं में परिवर्तन अथवा अत्यधिक क्षमता, वस्तु के अप्रचलित होने का भय आदि।

7. **बाजार प्रवेशक** – कुछ संस्थाएँ बाजार प्रवेश की दृष्टि से भी मूल्य निर्धारण करती है। इसलिए उनके द्वारा वस्तुओं का मूल्य कम रखा जाता है। लेकिन ऐसा उसी दशा में सम्भव हो सकता है, जब बाजार का बहुत ही मूल्य सचेतक हो, वस्तु की प्रति इकाई से लागत कम हो। वस्तुओं के मूल्यों में कमी किये जाने पर प्रतियोगी फर्मे निरूत्साहित हो और नई वस्तु को लोगों द्वारा अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना लेने की सम्भावना हो।

8. **उत्पाद–रेखा सवंर्द्धन** – कुछ संस्थाएँ मूल्य निर्धारण उत्पाद रेखा संवर्द्धन करने के उद्देश्य से भी करती है। इसमें लोकप्रिय वस्तु का मूलय रखा जाता है। लेकिन उस वस्तु के क्रेता को एक ओर वस्तु क्रय करने के लिए बाध्य होना पड़ता है, जिसका निर्यात एवं विक्रय यह संस्था कर रही है तथा जो लोकप्रिय नहीं है। परिणामस्वरूप कम लोकप्रिय वस्तु भी बाजार में आ जाती है एवं कुल विक्रय बढ़ने से लाभों में भी वृद्धि हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9. **अन्य उद्देश्य**– (अ) समाज कल्याण का उद्देश्य, (2) विकलांगों की सेवा, (3) बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों की सहायता आदि।

विपणन संमिश्र में कीमत निर्धारण का महत्व (Importance of Pricing in Marketing Mix)–

प्रत्येक फर्म के लिए उत्पादों और सेवाओं की कीमतों का तय करना आवश्यक होता है, कारण कि इसके बिना उत्पाद व सेवाओं का क्रय–विक्रय सम्भव नहीं हो पाता। उत्पद सम्बन्धी कीमत नीतियाँ और मूलय निर्णयन फर्म के लाभ–हानि को प्रभावित करते हैं। किसी फर्म की सफलता या विफलता उसके प्रबन्धकों द्वारा अपनाई जाने वाली कीमत नीतियों व निर्णयों से प्रभावित होती है। अतः एक फर्म के लिए स्वस्थ कीमत नीतियों के विकास के महत्व को इन्कार नहीं किया जा सकता है।

विपणन संमिश्र में विशेषतः उत्पाद मूल्य सम्बन्धी निर्णयों का विशेष महत्व निम्न कारणों से है–

1. **विपणन लक्ष्य की प्राप्ति का प्रभावशाली हथियार**– कीमत विपणन संमिश्र के चार महत्वपूर्ण– उत्पाद, स्थान, संवर्द्धन और मूल्य में से एक घटक है। किन्तु मूल्य निर्धारण करते समय विपणन मिश्रण के अन्य घटको–उत्पाद मध्यस्थ तथा संर्वद्धनात्मक घटकों को भी ध्यान में रखना चाहिए इसका कारण है कि इनमें से किसी भी एक घटक में परिवर्तन होने से अन्य सभी घटकों में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखना आवश्यक है। कीमत विणन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निम्न कारणों से प्रभावशाली हथियार है।

   a) 'कीमत' ग्राहकों में उत्पाद छवि का विकास करती है। 'कीमत' उत्पाद के प्रति ग्राहक धारणा को अनुकूल अथवा प्रतिकूल बनाती है।

   b) अनेक विक्रय संवर्द्धन तकनीकों के लागू करने के पश्चात भी उत्पाद की बिक्री इस बात पर निर्भर करेगी कि उसका मूल्य अपेक्षित मूल्य सीमा में या नहीं।

   c) उत्पाद नियोजन भी उत्पाद मूल्य से प्रभावित होता है। जैसे– उत्पाद की किस्म में सुधार तब ही किया जाएगा जबकि ग्राहक किस्म के सुधार के लिए अतिरिक्त कीमत देने को तैयार हो।

   d) यदि किसी उत्पाद का मूल्य उचित नही है तो उसके वितरण में कठिनाई आ सकती है क्योंकि उसकी बिक्री के लिए मध्यस्थ आसानी से नहीं मिलते है।

   e) उत्पाद के विज्ञापन और वैयक्तिक विक्रय पर खर्च की जाने वाली राशि भी उत्पाद मूल्य से प्रभावित होती है। अर्थात यदि वस्तु में इस प्रकार के व्ययों को उठाने की क्षमता है तो ऐसे व्यय किये जा सकते है अन्यथा नहीं।

2. **उत्पाद का मूल्य मांग पर निर्धारण**– उत्पाद के मूल्यों में कमी या वृद्धि से उसकी माँग का निर्धारण होता हैं उत्पाद–कीमत फर्म के प्रतिस्पर्धी व बाजार अंश को प्रभावित करती है, जिससे उत्पाद–कीमत, फर्म की आय और लाभों पर गहरा प्रभाव डालती है। किसी भी फर्म की आय विक्रय की गई इकाईयों और प्रति इकाई कीमत के गुणनफल के बराबर होती है तथा विक्रय की गई इकाईयों की लागत को उनसे प्राप्त आय में से घटाने पर लाभ की राशि ज्ञात होती है।

3. **लागत निर्धारण**– उत्पाद लागते किसी सीमा तक उत्पाद कीमत का परिणाम है। क्योंकि उत्पाद– लागते स्वयं उनकी कीमतों द्वारा नापी जाती है। इस प्रकार लागत–निर्धारण भी कीमतों पर निर्भर करता है।

4. **सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की एक बुनियादी विनियन्त्रक**– उत्पाद की बाजार कीमत मजदूरियाँ, किराया–भाड़ा, ब्याज और लाभों को प्रभावित करती है। इस रूप में कीमत **सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की एक बुनियादी विनियन्त्रक** है। उत्पादन–मूल्य फर्म के साधनों के वितरण को प्रभावित करते हैं। ऊँची मजदूरियाँ श्रम को, ऊँची ब्याज दरें पूँजी को, ऊँचा किराया भूमि को और ऊँचा लाभ साहसियों को आकर्षित करता है।

5. **कीमतों का निर्धारण प्रधान क्रिया**– पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमतों को एक प्रधान क्रिया माना जाता है। यह एक धुरी है जिसके चारों ओर अर्थव्यवस्था चक्कर लगाती है। अतः कीमत निर्धारण सम्बन्धी निर्णयो में किसी प्रकार की अपूर्णताएँ सम्पूर्ण प्रणाली में अनेक प्रकार की कमियों को जन्म देती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. **मुद्रा–स्फीति को नियन्त्रण में लाने का हथियार**– विश्वव्यापी मुद्रा स्फीति ने उत्पाद–मूल्य निर्धारण की महत्ता को और भी बढ़ा दिया है। **मुद्रा–स्फीति को नियन्त्रण में लाने के लिए** विभिन्न पक्षों का ध्यान उत्पाद मूल्यों के नियन्त्रण की ओर आकर्षित हुआ है। अनेक देशों की सरकारों ने आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को नियमित और नियन्त्रित करने के लिए नियम बनाए हैं।

   अभावग्रस्त अर्थव्यवस्थाओं और विकासमान राष्ट्रों में उत्पाद–कीमतों पर और भी विशेष ध्यान दिया जाता है। कारण कि ऐसी अर्थव्यवस्थाओं और राष्ट्रों में एक ओर उत्पादन के साधन कम होते हैं तो दूसरी ओर अधिकतर जनसंख्या गरीब होती है।

7. **भावी निर्णयों में समन्वय**– मूल्य नीतियाँ **भावी निर्णयों में समन्वय** का कार्य करती हैं। फर्म के लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके। फर्म के मूल्यों में अनेक पक्ष प्रभावित होते हैं जैसे– मध्यस्थ, पूर्तिकर्ता, सरकार, कम्पनी के प्रबन्धक, कर्मचारी उपभोक्ता इत्यादि। अतः कीमत निर्णयों को बड़े ध्यान से लिया जाता है।

8. **वि□ोश बाजारों में उत्पाद विक्रय हेतु मूल्य निर्धारण**– विपणन मूल्य नीतियों की महत्ता उस बाजार स्थान की विशेषताओं पर निर्भर करती है जहाँ विपणन **उत्पाद का विक्रय** करना चाहता है। उन बाजारों में जहाँ कड़ी प्रतिस्पर्धा, नये उत्पाद प्रवेश की अधिक आवृत्ति, प्रतिस्पर्द्धियों के लागत ढाँचे में अन्तर होता है वहाँ मूल्य निर्धारण का विशेष महत्व होता है।

मूल्य नीतियों के प्रकार (Types of Price Policies)–

एक उत्पादक द्वारा व्यवहार में विभिन्न प्रकार की मूल्य–नीतियाँ प्रयोग में लाई जाती है। यह संस्था के उद्देश्य पर निर्भर करता है कि वह अपने अनुकूल कौन–सी नीति अपनाएँ। विभिन्न प्रकार की मूल्य नीतियाँ निम्न है।

1. **लोच□ीलता के आधार पर** – लोचशीलता के आधार पर मूल्य नीतियों को दो भागों में बांटा जा सकता है।

   a) **एक मूल्य नीति** – इस मूल्य नीति के अन्तर्गत समस्त क्रेताओं से एक ही मात्रा में क्रय की जाने वाली वस्तु के लिए एक ही मूल्य लिया जाता है। एक बार जो मूल्य निर्धारित कर दिए जाते हैं उनमें सामान्यतया दीर्घकाल तक परिवर्तन नहीं किए जाते। उत्पाद लागतों में बढ़ जाने पर साधारणतया उत्पाद–मूल्यों में परिवर्तन न किया जाकर, उत्पाद के पैकेट को छोटा कर दिया जाता है।

   b) **लचीली मूल्य नीति** – इस मूल्यनीति में ग्राहकों के अनुसार उत्पाद के मूल्यों का निर्धारण किया जाता है। दूसरें शब्दों में, एक ही मात्रा में उत्पाद क्रय करने पर ग्राहकों को अलग–अलग मूल्यों पर उत्पाद बेचा जाना, इस नीति की प्रमुख विशेषता है। किसी ग्राहक से लिया जाने वाला मूल्य, उसकी देय क्षमता, मोल–भाव करने की शक्ति, ग्राहक का विक्रेता से सम्बन्ध इत्यादि पर निर्भर करता है। प्रायः यह नीति अप्रमापित वस्तुओं के विक्रेता, वस्त्र विक्रेता, अनाज विक्रेता इत्यादि द्वारा अपनाई जाती है।

2. **मूल्य स्तर के आधार पर** – मूल्य स्तर के आधार पर तय की गई मूल्य नीतियाँ निम्न प्रकार की होती हैं–

   a) **प्रतिस्पर्धा व मिलन नीति** – इस प्रकार की मूल्य नीति के अन्तर्गत एक फर्म द्वारा उत्पाद मूल्य प्रतियोगी उत्पादों के मूल्यों व प्रतियोगी फर्मो द्वारा की जाने वाली प्रतिस्पर्धा को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते हैं। प्रतियोगी फर्म द्वारा मूल्य अधिक अथवा कम किये जाने पर फर्म भी अपने उत्पाद मूल्यों में अनुकूल परिवर्तन करती है। यह नीति अत्यधिक प्रतिस्पर्धा की स्थिति में अपनाई जाती है।

   b) **बाजार–मूल्यों के अधीन अथवा ऊपर नीति** – ''बाजार मूल्यों के अधीन नीति'' से हमारा आशय बाजार में प्रचलित मूल्यों की तुलना में एक फर्म द्वारा उत्पाद का मूल्य अधिक रखे जाने से है। इस नीति का उद्देश्य बाजार में शीघ्र प्रवेश करना अथवा बाजार का विस्तार करना होता है। ''बाजार–मूल्यों से ऊपर नीति'' का अभिप्राय उस मूल्य नीति से है जिसमें एक फर्म अपने उत्पाद का मूल्य प्रचलित बाजार का मूल्य से अधिक ऊँचा निर्धारित करती है। इस प्रकार की नीति उन संस्थाओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

द्वारा अपनाई जाती है जिन्हें अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हो चुकी है और जिनके उत्पादों की छवि अच्छी है। इसमें विज्ञापन और सम्वर्द्धन पर भी फर्म द्वारा अधिक खर्चा किया जाता है।

3. **वि□ोशता के आधार पर** – विशेषता के आधार पर मूल्य–नीतियाँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं–

a) **ललचाने वाली मूल्य नीति** – यह वह मूल्य नीति है जिसमें दो विभिन्न मूल्यों वाले उत्पादों का निर्माण किया जाता है और एक उत्पाद का कम व दूसरे उत्पाद का अधिक मूल्य रखा जाता है। सर्वप्रथम ग्राहक को कम मूल्य वाला उत्पाद दिखाया जाता है। इसके पश्चात् अधिक मूल्य वाला उत्पाद दिखाकर पहले वाले उत्पाद की कमियों को बतलाया जाता है ताकि ग्राहक अधिक मूल्य वाला उत्पाद क्रय कर ले।

b) **मूल्य रेखा नीति** – इस मूल्य नीति में एक फर्म अपने उत्पादों के मूल्य इस प्रकार निश्चित करती है कि दो मूल्यों में एक निश्चित अन्तर बना रहे। उदाहरणार्थ एक चप्पल बनाने वाली फर्म चप्पलों के मूल्य रूपये 16, रूपये 18, रूपये 20, रूपये 22, रूपये 24 और रूपये 26 निश्चित करती है तो ऐसी मूल्य नीति को ''मूल्य रेखा नीति'' कहा जाता है।

c) **पूर्ण उत्पाद रेखा मूल्य नीति**–एक संस्था जब अनेक उत्पादों का निर्माण करती है तो उसके लिए प्रत्येक उत्पाद की स्थायी लागत निकालना कठिन हो जाता है। इस प्रकार की परिस्थिति में पूर्ण उत्पाद रेखा मूल्य नीति अपनाई जाती है। इस नीति के अन्तर्गत उत्पादों की माँग के आधार पर कुछेक उत्पादों की अधिक कीमत, कुछेक की कम तथा शेष की मध्यम कीमत तय कर दी जाती है जिससे कुल स्थायी उत्पाद लागत निकल आती है और संस्था के लाभों में वृद्धि होती है।

d) **मलाई उतारने वाली मूल्य नीति**–इस नीति के अन्तर्गत उत्पाद का मूल्य अधिक रखा जाकर अत्यधिक लाभार्जन का प्रयत्न किया जाता है। यह मूल्य नीति उन उत्पादों के लिये ठीक है जिन्हें वर्तमान में किसी प्रकार की प्रतियोगिता का सामना नहीं करना पड़ता। यह विधि को अपनाने पर एक फर्म को बहुत लाभ होता है। नये प्रतियोगियों के प्रवेश करने पर अथवा स्थानापन्न वस्तुओं का विकास हो जाने पर फर्म द्वारा उत्पादों के मूल्यों में कमी कर दी जाती है।

e) **नेता अनुकरण मूल्य नीति** – अगर एक फर्म अपने उत्पादों का मूल्य प्रतिस्पर्धी परन्तु ख्याति प्राप्त फर्म के उत्पादों के मूल्यों के समान रखती है तो इसे ''प्रतिस्पर्धी नीति' अथवा नेता 'अनुकरण मूल्य नीति' कहा जाता है।

f) **बाजार–प्रवे□ाक मूल्य नीति** – यह नीति उस समय अपनाई जाती है जबकि किसी नये उत्पाद को बाजार में लाया जाता है। फर्म द्वारा नव–उत्पाद का मूल्य इतना कम रखा जाता है कि बाजार में उसकी माँग उत्पन्न की जा सके और प्रतियोगी फर्मो के सामने टिका जा सके।

g) **हानि नेता मूल्य नीति** – इस नीति के अन्तर्गत एक फर्म द्वारा अपने कुछ प्रमुख और ख्यातिपूर्ण उत्पादों के मूल्यों में कटौती कर दी जाती है और इसका अत्यधिक विज्ञापन किया जाता है। इसके पीछे मान्यता यह रहती है कि इन उत्पादों को जब ग्राहक क्रय करने आयेंगे तब उनके द्वारा फर्म फर्म के अन्य उत्पादों का भी क्रय किया जायेगा।

h) **इकाई मूल्य नीति** – इस मूल्य नीति के अन्तर्गत प्रत्येक उत्पाद और उसके पैकेट के आकार के अनुसार उत्पाद के पैकेट पर लिखे हुए मूल्यों के साथ उत्पाद की प्रति इकाई के मूल्य लिखे जाते हैं। इससे उत्पाद की खरीद में सुविधा रहती है।

i) **मनोवैज्ञानिक मूल्य नीति** – यह वह मूल्य नीति है जिसमें उत्पादों के मूल्य इस प्रकार रखे जाते हैं कि उनका ग्राहकों पर यह मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़े कि उत्पादों के मूल्य कम हैं। उदाहरणार्थ, किसी उत्पाद का मूल्य रूपये 10 के बाजय रूपये 9.95 रखा जाये तो ग्राहक को यह लगता है कि उत्पाद का मूल्य कम है।

4. **भौगोलिक स्थिति के आधार पर** – क्रेता दूर–दूर क्षेत्रों तक फैले हुए होते हैं। क्रेता के स्थान तक माल पहुँचाने में यातायात सम्बन्धी अनेक प्रकार के खर्चे करने पड़ते हैं। यह यातायात सम्बन्धी खर्चे साधारणतया क्रेता द्वारा वहन किये जाते है। परन्तु क्रेताओं की असुविधाओं को दूर करने के लिए अनेक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बार विक्रेता इन व्ययों को किसी सीमा तक स्वयं वहन करता है। वह उत्पाद का मूल्य निर्धारण करते समय उसके द्वारा वहन किये गये यातायात के खर्चे को ध्यान में रखता है और उसी के अनुसार उत्पाद का मूल्य निर्धारित करता है। इस सम्बन्ध में निम्न मूल्य नीतियाँ काम में लाई जाती हैं–

a) **उत्पादन केन्द्र मूल्य–नीति** – इसमें उत्पाद के मूल्य में उत्पाद को क्रेता के स्थान तक पहुँचाने सम्बन्धी यातायात खर्च सम्मिलित नहीं किया जाता। उत्पाद की सुपुर्दगी क्रेता को फैक्टरी के द्वार पर अथवा गोदाम पर ही की जाती है। अतः फैक्टरी के द्वार से क्रेता के गोदाम तक उत्पाद को ले जाने की जोखिम क्रेता पर रहती है।

b) **किराया सोख मूल्य–नीति** – इस प्रकार की मूल्य नीति के अन्तर्गत एक उत्पादक द्वारा क्रेता के स्थान पर वस्तु को पहुँचाने पर लगने वाले किराये के कुछ अंश को वहन किया जाता है। यह नीति उन क्रेताओं को लाभ देने के लिए अपनाई जाती है जो प्रतियोगी फर्मो के नजदीक रहते हैं। उदाहरणार्थ, सीमेंट निर्माण करने वाली फर्में

c) **क्षेत्रीय सुपुर्दगी मूल्य नीति** – इस मूल्य नीति के अन्तर्गत उत्पाद की बिक्री के लिए देश को विभिन्न क्षेत्रों में विभक्त कर लिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र के लिए फर्म द्वारा उत्पाद मूल्य तय कर दिये जाते हैं। क्षेत्र विशेष के किसी भी भाग में रहने वाले ग्राहक को एक ही पूर्व निर्धारित मूल्य पर फर्म द्वारा उत्पाद का वि5य किया जाता है।

d) **एक समान सुपुर्दगी मूल्य–नीति** – यह वह मूल्य नीति है जिसमें ग्राहकों को चाहे वे देश के किसी भी भाग में रहते हों, एक ही मूल्य पर उत्पाद बेचा जाता है। इस प्रकार की नीति के अन्तर्गत निर्धारित मूल्य को F.O.B. at Buyer's location postage stamp price भी कहते हैं। भारत सरकार के डाकघर (Post office) अपनी सेवाओं के लिए इसी प्रकार की मूल्य–नीति प्रयोग में लेते हैं। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति द्वारा जयपुर में मद्रास अथवा अजमेर भेजे गये पोस्टकार्ड सम्बन्धी सेवा के लिए मूल्य, भारतीय डाकघरों द्वारा एकसा रखा जाता है। इस प्रकार की नीति लागू करने से विक्रेताओं को प्रबन्धकीय नियन्त्रण और विज्ञापन में सुविधा रहती है।

मूल्य सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Affecting Price of a Product/Service)

मूल्य निर्धारण सम्बन्धी निर्णय प्रायः लागत पर आधारित होते हैं। लागत को मूल्य का एक प्रमुख अंग कहा जाता है। परन्तु मूल्य निर्धारण केवल लागत से ही प्रभावित नहीं होते हैं, अपितु अनेक घटक से प्रभावित होते है।

संक्षेप में, मूल्य निर्धारण को प्रभावित करने वाले घटक निम्नलिखित है–

1. **वस्तु की माँग** – किसी भी नई वस्तु के लिए माँग का अनुमान लगाना एक कठिन कार्य है। लेकिन प्रतिस्पर्द्धी वस्तुओं की बिक्री को ध्यान में रखकर माँग का अनुमान लगाया जा सकता है। अतः वस्तु की माँग के अनुरूप ही मूल्य निर्धारण किया जाना चाहिए। वस्तु की माँग निम्न प्रकार की होती है–

   a. **पूर्णतया लोचदार माँग**– जब वस्तु की कीमत में परिवर्तन नहीं होने पर भी अथवा अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन होने पर, माँग में बहुत अधिक कमी या वृद्धि होती है, तब वस्तु की माँग को पूर्णतया लोचदार कहा जाता है।

   b. **पूर्णतया बेलोचदार माँग**– जब किसी वस्तु की कीमत में बहुत अधिक परिवर्तन होने पर उस वस्तु की माँग में कोई परिवर्तन नहीं होता है, तो वह पूर्णतया बेलोचदार माँग कही जाती है।

   c. **लोचदार माँग**– जब माँग का आनुपातिक परिवर्तन कीमत के आनुपातिक परिवर्तन के बराबर होता है तो लोच इकाई के बराबर होती है।

   d. **अत्यधिक लोचदार माँग**– जब किसी वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन, कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो इसे अधिक लोचदार माँग कहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

e. **बेलोचदार माँग**– जब मांग का आनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु की कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो इस स्थिति को बेलोच माँग कहते हैं।

अतः एक निर्माता को अपनी वस्तु के मूल्य नियोजित करते समय वस्तु की मांग का विस्तार से अध्ययन कर लेना चाहिए कि उपर्युक्त प्रकारों में से वह किस प्रकार की है ताकि उसी के अनुसार मूल्यों का निर्धारण किया जा सके। उदाहरण के तौर पर, जब वस्तु की माँग सापेक्षिक बेलोचदार माँग होती है तो वस्तु का मूल्य ऊँचा रखा जा सकता है। वस्तु का ऊँचा मूल्य उसकी माँग में कमी कर सकता है, जबकि निम्न मूल्य माँग में वृद्धि कर सकता है।

2. **वस्तु की लागत** – मूल्य निर्धारण को प्रभावित करने वाले घटकों में वस्तु की लागत भी है। वस्तु की लागतों में स्थायी लागत, चल लागत एवं संवृद्धि लागत आदि को शामिल किया जाता है। कोइ भी निर्माता बिना अपनी कुल लागत को प्राप्त किये, वस्तु का विक्रय नहीं करता है। वह स्थिति जहाँ पर वस्तु की लागत, विक्रय मूल्य के बराबर हो जाती है, उसे सम– विच्छेद बिन्दु (Break-even Point) कहते हैं।

3. **वितरण–माध्यम** – वस्तु किन–किन वितरण माध्यमों/मार्गो से उपभोक्ता तक पहुँचती है। यह भी कीमत को प्रभावित करता है। यदि निर्माण तथा उपभोक्ता के मध्य कोई मध्यस्थ है तो उन सभी मध्यस्थों को उचित लाभ देते हुए वस्तु का मूल्य अधिक निर्धारित करना होगा। इसके विपरीत यदि वितरण मार्ग छोटा है तो वस्तु का मूल्य कम निर्धारित किया जायेगा। अतः वस्तु का मूल्य निर्धारण करते समय वस्तु के वितरण माध्यम पर विचार कर लेना चाहिए।

4. **उत्पाद की वि□ोशताएँ** – उत्पाद की विशेषताएँ भी मूल्य निर्धारण को प्रभावित करती हैं। ये विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं–

   a. **उत्पाद का जीवन चक्र**– उत्पाद का जीवन चक्र चार अवस्थाओं से होता हुआ चलता हैं– बाजार प्रवेश की अवस्था में उत्पाद की माँग उत्पन्न करना आवश्यक होता है, अतः उत्पाद का मूल्य कम रखा जाता है, उत्पाद बाजार विकास या वृद्धि की अवस्था में पहुँच जाता है तो मूल्य में स्थायित्व रखते हुए ग्राहकों को आकर्षित किया जाता है, एवं जब बाजार परिपक्वता एवं उसके पश्चात् अवनति की अवस्था में पहुँच जाता है तो उत्पाद के मूल्यों में कमी की जाती है। इसके अतिरिक्त बिक्री को बनाये रखने के लिए संवर्द्धनात्मक उपायों को भी अपनाया जाता है।

   b. **उत्पाद की ना□ावानता**– यदि उत्पाद की विशेषता शीघ्र सड़ जाने या खराब हो जाने की है तो उसका मूल्य ऐसा निश्चित किया जाना चाहिए कि उसकी बिक्री जल्दी से जल्दी हो जाये।

   c. **उत्पाद का प्रतिस्थापन**– प्रतिस्थापित वस्तुओं की दशा में मूल्य कम ही निर्धारित करना चाहिए।

   d. **उत्पाद की मांग का स्थगन**– यदि उत्पाद अति–आवश्यक है तो अधिक मूल्य पर बेचा जा सकता है। इसके विपरीत उत्पाद आरामदायक या विलासिता की श्रेणी में आता है तो उत्पाद का मूल्य अधिक नहीं रखा जाना चाहिए अन्यथा उपभोक्ता उस क्रय को स्थगित कर सकता है।

5. **ग्राहकों की वि□ोशताएँ** – यदि ग्राहक औद्योगिक वस्तु/माल को खरीदने वाले हैं तो उसे वस्तु बहुत ही प्रतियोगी मूल्य पर देनी होगी। इसके विपरीत ग्राहक उपभोक्ता वस्तु वाला है तो कोई भी मूल्य लिया जा सकता है। इसी प्रकार बड़ी मात्रा में वस्तुएँ क्रय की जाती है तो विपणन लागत कम आयेगी। इसलिए मूल्य कम रखा जाना चाहिए अन्यथा अधिक क्योंकि कम मात्रा में क्रय करने से विपणन लागत अधिक आती है।

6. **व्यापारिक परम्पराएँ** – मूल्य निर्धारण करते समय व्यापारिक परम्पराओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। जैसे– बिजली के पंखे, सिलाई मशीने, फ्रीज, कम्प्यूटर, टेप, सी.डी. प्लेयर आदि के लिए गारन्टी देना एवं आश्वासन देना एक परम्परा बन गयी है अर्थात इनके मूल्यों में सेवा मूल्य भी जोड़ा जाता है।

7. **प्रतियोगिता** – मूल्य निर्धारण को प्रतियोगिता/प्रतिस्पर्द्धा भी प्रभावित करती है।

   a. उसी प्रकार की वस्तु से प्रतियोगिता होने पर, जैसे– कोका–कोला पेय निर्माताओं के मूल्यों पर निगाह रखता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

b. प्रतिस्थापन वस्तुओं से प्रतियोगिता होने की सम्भावनायें, जैसे– जूट के बोरों को प्रतियोगिता मोटे कागज या प्लास्टिक के थैलों से हो सकती है। अतः इनके निर्माता इन वस्तुओं के मूल्यों पर अपनी नजर रखते हैं।

c. वस्तु के निर्माता कम होने पर, जैसे– ट्रक बनाने वाली संस्थाएँ। यदि किसी वस्तु की प्रतियोगिता कम है तो मूल्य अधिक रखे जा सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वस्तु का मूल्य निर्धारित करते समय प्रचलित प्रतियोगिता, प्रतिस्थापन वस्तुओं की प्रतियोगिता तथा निर्माताओं की संख्या कम या अधिक होने पर अधिक ध्यान रखना चाहिए।

8. **निर्माता के उद्देश्य** – मूल्य निर्धारित करते समय निर्माता के उद्देश्य को भी ध्यान में रखा जाता है। यह उद्देश्य मलाई उतारने वाले, स्थिर मूल्य वाले, अधिकतम लाभ वाले, बिक्री या विनियोग पर निश्चित प्रतिशत वाले, प्रतियोगियों को हतोत्साहित करने वाले तथा प्रतियोगिता से मिलने वाले आदि हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, मलाई उतारने वाले उद्देश्य में वस्तु को बहुत ऊँचे मूल्य पर बाजार में प्रस्तुत किया जाता है।

9. **क्रेता की विशेषताएँ** – क्रेता की व्यक्तिगत विशेषताएँ या लक्षण, जैसे– क्रय व्यवहार, वस्तु सम्बन्धी ज्ञान, तुलनात्मक अध्ययन की योग्यता, विवेकशीलता, सोच– विचार, जागरूकता आदि भी मूल्य निर्धारण को प्रभावित करते हैं। जैसे– व्यापारी या औद्योगिक क्रेता पूर्ण जानकारी एवं सोच–विचार के साथ माल खरीदता है। अतः उसे बेचने वाले उत्पादों का मूल्य अत्यन्त ही प्रतियोगी होता है। इसके विपरीत उपभोक्ता वस्तुओं के क्रेता विशेष छानबीन नहीं करते हैं। अतः उनसे अधिक मूल्य लिया जा सकता है।

10. **संस्था की आन्तरिक व्यवस्था** – मूल्य निर्धारण को संस्था की आन्तरिक व्यवस्था क्या है, भी प्रभावित करती है। यदि उच्च प्रबन्ध स्तर पर मूल्य निर्धारण की व्यूहरचना तैयार की जाती है तो वस्तुओं के विभिन्न मूल्य स्तर तय किये जाते हैं। इसके विपरीत मध्य प्रबन्ध स्तर की दशा में वास्तविक मूल्य निर्धारित किया जाता है। इसी प्रकार मूल्य निर्धारण करने वाले अधिकारियों का वर्ग, अधिकारों का केन्द्रीकरण या विक्रेन्द्रीकरण भी मूल्य निर्धारित को प्रभावित करता है।

11. **संसाधनों की लागत** – प्रत्येक निर्माता को उत्पादों के निर्माण हेतु अनेक संसाधनों, जैसे– मानव, सामग्री, मशीन, मुद्रा एवं शक्ति के साधन आदि की आवश्यकता होती है। इनकी प्राप्ति एवं उपयोग की लागत भी संस्था के उत्पादों के मूल्य को प्रभावित करती है। यदि ये साधन सहज एवं सस्ते मिल जाते हैं तो उत्पादों का मूल्य कम रखा जाता है, अन्यथा अधिक रखा जाता है क्योंकि इनकी लागत बढ़ जाती है।

12. **विपणन सम्मिश्रण** – विपणन सम्मिश्रण के अनेक घटकों–उत्पाद, स्थान, संवर्द्धन आदि में मूल्य भी एक घटक है। अतः वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करते समय इन घटकों को ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि इनमें से किसी भी एक घटक में परिवर्तन किया जाये या हो जाये तो इसका अन्य घटकों पर भी प्रभाव पड़ता है। जैसे– स्थान अर्थात वितरण कार्य से है। यदि वस्तुओं को प्रत्यक्ष वितरण किया जाए तो मूल्य कम होगा अन्यथा अधिक क्योंकि प्रत्येक माध्यम को सेवा के बदले कुछ प्रतिफल देना आवश्यक है।

13. **बाह्य वातावरण** – देश में प्रचलित आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं अन्य दशायें भी वस्तुओं के मूल्य निर्धारण को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, जब देश में आर्थिक तेजी चल रही होती है जो वस्तुओं का मूल्य नीचे स्तर पर रखा जाता है। इसी प्रकार जब सरकार मूल्यों पर नियंत्रण करने का दृष्टिकोण रखती है तो मूल्य नीचे स्तर पर रखना होता है।

14. **सरकारी नियम एवं नीतियाँ** – मूल्य निर्धारण को सरकारी नियम एवं नीतियाँ भी प्रभावित करती हैं। सरकार समय–समय पर वस्तुओं के सम्बन्ध में न केवल नियम बनाती है अपितु उनमें परिवर्तन एवं संशोधन भी करती है, जैसे– औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, उपभोक्ता, संरक्षण अधिनियम, एम.आर.टी.पी. एक्ट, आवश्यक वस्तु अधिनियम एवं औद्योगिक नीति, लाइसेन्स नीति, निर्यात–आयात नीति आदि। अतः मूल्य निर्धारण में इनके वैधानिक प्रावधानों को ध्यान में रखना पड़ता है।

मूल्य निर्धारण की विधियाँ

(Methods of Price Determination)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विभिन्न विद्वानों ने मूल्य निर्धारण की भिन्न–भिन्न विधियाँ बतायी हैं। लेकिन मुख्य रूप से इन्हें निम्नलिखित पर आधारित कर स्पष्ट किया जा सकता है–

(I) लागत पर आधारित विधियाँ,

(II) माँग या बाजार की दशाओं पर आधारित विधियाँ,

(III) लागत एवं माँग पर आधारित

(IV) प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित विधियाँ,

(V) आयात पर आधारित विधि, एवं

(VI) नियंत्रित मूल्य विधि।

प्रत्येक विधि का विवेचन इस प्रकार है–

(I) लागत पर आधारित विधियाँ (Methods Based On Cost)–

1. **लागत–वर्धन विधि (Cost Plus Method)–** मूल्य निर्धारण की इस विधि में उत्पाद का मूल्य निर्धारण करने के लिए उत्पाद की प्रति इकाई कुल लागत में अपेक्षित लाभ की निश्चित राशि अथवा लागत पर अपेक्षित लाभ प्रतिशत राशि जोड़ दी जाती है। सूत्र रूप में–

विक्रय मूल्य = प्रति इकाई लागत + इकाई पर इच्छित लाभ

Selling Price = Unit Total Cost + Desired Unit Profit

उदाहरण के लिए, रिनोल्ड रिफिल की लागत 6 रूपये आती है तो इसमें 20 प्रतिशत की दर से लाभ जोड़कर यह रिफिल 7.20 रू. में बेची जा सकती है।

इस विधि को अपनाने में यह मान लिया जाता है कि वस्तुओं की बिक्री निर्धारित मूल्य पर हो जायेगी। यदि किसी प्रकार इतनी बिक्री न हो सके तो बची हुई इकाइयों को अधिक मूल्य पर बेचा जाना चाहिए। तभी इच्छित लाभ मिल सकता है। लेकिन साधारणतया यह सम्भव नहीं होता है–

लागत–वर्धन विधि में निम्न गुण हैं–

(i) यह विधि सरल एवं समझने योग्य है।

(ii) यह विधि लाभ की राशि को सुनिश्चित करती है।

(iii) यह विधि सामाजिक दृष्टि से उचित है। इसका कारण यह है कि इसमें सभी प्रकार के उत्पादों का समान विधि से मूल्य निर्धारण किया जाता है।

(iv) इस विधि में प्रतिस्पद्धियों में अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा नहीं होती है।

(v) यह विधि सबसे अधिक अपनायी जाती है क्योंकि यह परिवर्तनशील परिस्थितियों में भी उपयुक्त रहती है।

लागत–वर्धन विधि में निम्नलिखित दोष (Demerits) हैं–

(i) इस विधि में केवल लाभ की राशि पर ध्यान दिया जाता है, माँग एवं प्रतिस्पर्द्धा पर नहीं। परिणामस्वरूप संस्था में कई अच्छे उत्पादों का उत्पादन होने लगता है, जिन पर लागत अधिक आती है। इसलिए उनकी बिक्री करना एक कठिन कार्य है।

(ii) इस विधि में उत्पाद की सीमान्त लागत को ध्यान में नहीं रखा जाता है।

(iii) यह विधि नये उत्पादों का मूल्य निर्धारण करने के लिए उपयुक्त नहीं है।

(iv) इसमें वह निर्माता ही बाजार में अपना स्थान बना पाता है जिसकी लागत प्रति इकाई सबसे कम हो अन्यथा नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **अपेक्षित प्रति□ात लाभ विधि (Expected Percentage Profit Method)**– मूल्य निर्धारण करने की अपेक्षित प्रतिशत लाभ विधि या मार्कअप विधि में विक्रय राशि की एक निर्धारित प्रतिशत राशि उत्पाद की प्रति इकाई लागत में जोड़ दी जाती है। सूत्र रूप में

$$\text{विक्रय मूल्य} = \frac{\text{औसत प्रति इकाई लागत}}{1 - \text{अपेक्षित मार्क – अप का प्रतिशत}}$$ **अथवा**

$$Selling\ Price = \frac{Average\ per\ Unit\ Cost}{1 - Expected\ Percentage\ of\ Mark-up}$$

उदाहरण के लिए, एक नई मोटर साइकिल की औसत उत्पादन लागत 40,000 रू. आती है। यदि मार्क–अप 20 प्रतिशत निश्चित किया जाता है तो उत्पाद का मूलय यह होगा–

$$\text{विक्रय मूल्य} = \frac{40,000}{1.20\%}\ \text{रू} \quad = \quad \frac{40,000}{0.80} = 50,000\ \text{रू.}$$

अपेक्षित प्रतिशत लाभ विधि में निम्नलिखित गुण (Merits) है–

(i) मूल्य निर्धारण में कठिनाई नहीं आती है क्योंकि उत्पाद की माँग के बजाय उत्पाद की लागत को आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

(ii) इस विधि में मूल्यों को बार–बार परिवर्तित करने की आवश्यकता नहीं होती है।

(iii) मूल्य प्रतिस्पर्द्धा की सम्भावना कम है।

(iv) सामाजिक दृष्टि से यह विधि ठीक है क्योंकि उत्पाद में कमी होने पर भी उत्पाद के मूल्य मार्क–अप मूल्य से अधिक नहीं दिये जाते हैं।

अपेक्षित प्रतिशत लाभ विधि में निम्नलिखित दोष हैं–

(i) उत्पादों की बिक्री करना सहज कार्य नहीं।

(ii) उत्पादों की सीमान्त लागत को ध्यान में नहीं रखा हैं।

(iii) इस विधि से नये उत्पादों का मूल्य निर्धारण करना उपयुक्त नहीं है।

3. **लक्षित प्रति□ात विधि (Target Return Method)**– मूल्य निर्धारण की इस विधि में उत्पाद का उतना मूल्य निर्धारित किया जाता है जिससे कि विनियोजित पूँजी पर पूर्व–निर्धारित प्रति इकाई लाभ अर्जित किया जा सके। इसलिए तीन बातों की गणना की जाती है– (i) कुल उत्पादन लागत की उत्पादन की प्रमापित मात्रा, (ii) ब्रेक–इवन–मात्रा (अर्थात् उत्पादन की वह मात्रा जो किसी विशिष्ट मूल्य पर कूल आय एवं कुल लागत को बराबर करती है) और (iii) वह अनुमानित पूँजी जो एक इकाई के उत्पादन के लिए आवश्यक है।

लक्षित प्रतिफल मूल्य की गणना इस सूत्र द्वारा की जा सकती है–

प्रति इकाई

$$\text{विक्रय मूल्य} = \text{परिवर्तनशील लागत} + \frac{\text{स्थाई लागत}}{\text{प्रमापित उत्पादन इकाइयाँ}} + \frac{(\text{अपेक्षित लाभ})\ x\ (\text{विनियोजित पूँजी})}{\text{प्रमापित उत्पादन इकाइयाँ}}$$

अथवा

Per Unit

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$\text{Selling Price} = \text{Covertable} + \frac{Fixed\ Cost}{Standard\ Production\ Units} + \frac{(Desired\ Profit)\ x\ (Invested\ Capital)}{Standard\ Production\ Units}$$

उदाहरण के लिए, प्रत्यक्ष प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत 6 रू, कुल स्थायी लागत 8,00,000 रू., प्रमापित उत्पाद मात्रा 4,00,000 इकाइयाँ, लक्षित प्रतिफल की दर 20 प्रतिशत, विनियोजित पूँजी 20,00,000 रू. है तो इस विधि के अन्तर्गत विक्रय मूल्य इस प्रकार ज्ञात किया जायेगा–

$$\text{विक्रय मूल्य} = 6 + \frac{8,00,000}{4,00,000} + \frac{20x20,00,000}{100x4,00,000} = 6 + 2 + \frac{4}{4} = 9 \text{ रू.}$$

इस प्रकार स्पष्ट है कि लक्ष्य प्रतिफल प्राप्त करने के लिए 9 रू. प्रति इकाई मूल्य रखना होगा। लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि कुल विनियोग पर इच्छित प्रतिफल की दर प्राप्त करने के लिए पूर्वानुमानित कुल विक्रय आय कुल लागतों से अधिक होनी चाहिए।

लक्षित प्रतिशत विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

(i) यह एक दीर्घकालीन विधि है।

(ii) एक या सीमित क्रेता है तो उचित लाभ जोड़कर मूल्य बताने से उनको औचित्य का तर्क दिया जा सकता है।

(iii) सार्वजनिक उपयोग वाली सेवाओं (जैसे– रेल, विमान, डाकघर आदि) में यह काफी उपयोगी विधि है।

(iv) सेवा संगठन अपनी एकाधिकारी स्थिति का अनुचित लाभ नहीं उठा सकते हैं।

लक्षित प्रतिशत विधि में निम्नलिखित दोष हैं–

(i) यह उद्देश्य–परक विधि नहीं है।

(ii) यह व्यावहारिक विधि नहीं है।

(iii) संयुक्त लागत विधि में वस्तुओं की लागत का उचित अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

(iv) यह विधि पूर्णतया लागत अवधारणा पर निर्भर करती है, जबकि वास्तविकता यह है कि लागत मूल्यों का

नियंत्रण नहीं करती है बल्कि मूल्य लागत को नियंत्रित करती है। अतः यह अवधारणा उचित नहीं है।

(v) इसमें वस्तु की माँग एवं प्रतियोगिता जो कि सैद्धान्तिक दृष्टि से मूल्य निर्धारण के महत्वपूर्ण घटक हैं,

पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है जो कि अनुचित है।

4. **सीमान्त लागत मूल्य विधि (Marginal Cost Pricing Method)**– मूल्य निर्धारण की इस विधि में सीमान्त लागत अथवा एक अतिरिक्त इकाई पर आने वाली लागत के आधार पर मूल्य निर्धारित किये जाते हैं। एक अतिरिक्त इकाई के निर्माण में जो अतिरिक्त लागत आती है उसको सीमान्त लागत कहते हैं। अतः इस विधि में सीमान्त लागत को आधार मानकर उसमें इच्छित लाभ जोड़कर मूल्य निर्धारित किये जाते हैं।

सीमान्त लागत मूल्य विधि को अंशदान मूल्य (Contribution Pricing) भी कहलाते हैं क्योंकि इसमें वह मूल्य निर्धारित किया जाता है जिससे कि उत्पाद की सभी स्थायी एवं परिवर्तनशील लागतों का कुछ भाग वसूल किया जा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सीमान्त लागत मूल्य विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

(i) यह विधि मन्दीकाल में उपयोगी रहती है।

(ii) निजी ब्राण्ड का उपयोग करने वाली संस्था के लिए लाभदायक है।

(iii) यह विधि वहाँ उपयोगी है, जहाँ पर स्थापित उत्पादन क्षमता का सम्पूर्ण उपयोग नहीं हो रहा हो।

(iv) नये उत्पादों का बाजार में प्रवेश कराना आवश्यक हो या उन्हें बाजार में जमाना हो।

(v) यह विधि कर्मचारियों के लिए लाभदायक है क्योंकि उत्पादों की माँग नहीं होने के बावजूद भी उन्हें सेवा में रखने हेतु अपनायी जाती है।

सीमान्त लागत मूल्य विधि में निम्नलिखित दोश है–

(i) इस विधि में स्थायी व्ययों पर विचार नहीं किया जाता है।

(ii) यह अल्पकालीन विधि है क्योंकि आगे चलकर स्थायी व्ययों को वसूल करना आवश्यक हो जाता है।

(iii) यह विधि लम्बे समय में संस्था के लाभों एवं ख्याति पर विपरीत प्रभाव डालती है।

(iv) इस विधि का अधिकाधिक उपयोग करने से संस्था को हानि हो सकती है।

(II) माँग या बाजार की द□ाओं पर आधारित विधियाँ

(Methods Based on Conditions of Demand or Market)–

1. **क्षमतानुसार मूल्य विधि** – मूल्य निर्धारण की इस विधि में उत्पादों का पहले से न तो कोई मूल्य निर्धारित होता है और न ही मूल्य निर्धारण की कोई व्यवस्थित प्रक्रिया अपनायी जाती है, अपितु उपभोक्ता की भुगतान क्षमता आंक कर/देखकर मूल्य निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार इस विधि के अन्तर्गत विक्रेता वही मूल्य ले लेता है जो उपभोक्ता स्वेच्छा से देने को तैयार हो जाता है। इसलिए इस विधि को 'लचीली मूल्य विधि' भी कहते है।

क्षमतानुसार मूल्य विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

(i) इस विधि के अपनाने से अच्छा लाभ कमाया जा सकता है क्योंकि भिन्न–भिन्न क्रेताओं से भिन्न–भिन्न मूल्य वसूल किये जाते हैं।

(ii) इस विधि में व्यापारी स्वतंत्र रहता है।

(iii) यह अल्पकाल के लिए अच्छी विधि है।

(iv) इस विधि में प्रतिस्पर्द्धा देखकर अधिक या कम मूल्य वसूला जा सकता है।

(v) यह अप्रमापित वस्तुओं के लिए उपयुक्त है।

क्षमतानुसार मूल्य विधि में निम्नलिखित दोश हैं–

(i) यह विधि संस्था के लिए दीर्घकाल में अच्छी नहीं हो सकती है।

(ii) ग्राहक को वास्तविक मूल्य का पता लग जाने पर उसका ऐसे विक्रेताओं से विश्वास उठ जाता है और उससे वस्तुएँ खरीदना बंद कर देता है।

(iii) यदि व्यापारी ग्राहक को पहचानने में थोड़ी सी भी चूक कर देता है तो ग्राहक हाथ से निकल जाता है।

(iv) इस विधि में फर्म को प्रशासनिक कठिनाई भी उठानी पड़ती है।

(v) एकाधिकारी फर्म के लिए ठीक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **बाजार–भेदन विधि** – मूल्य निर्धारण की इस विधि के अन्तर्गत उत्पाद का इस उद्देश्य से बहुत उचित या कम मूल्य रखा जाता है कि बाजार में न केवल माँग उत्पन्न की जा सके अपितु प्रतियोगी फर्मो का मुकाबला भी किया जा सके। जब बाजार में फर्म वे उत्पाद की माँग अच्छी हो जाती है, फिर अन्य लाभकारी नीति अपना कर मूल्य निर्धारण किया जाता है।

बाजार–भेदन विधि में निम्नलिखित गुण है–

(i) इस विधि से बाजार को भेदकर उत्पादों को प्रवेश कराना सरल है।

(ii) इस विधि से बाजार में उत्पादों की माँग का निर्माण करना सहज है।

(iii) प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला भी किया जा सकता है।

(iv) व्यापक पैमाने पर उत्पादन कर विभिन्न आन्तरिक एवं ब्राह्य बचतें की जा सकती हैं।

बाजार–भेदन विधि में निम्नलिखित दोश हैं–

(i) इस विधि के अपनाने से व्यापारी को हानि हो सकती है।

(ii) प्रतिस्पद्धियों की व्यूहरचना की जानकारी न होने की दशा में उनका सामना करना कठिन हो जाता है।

(iii) उत्पाद के ऊँचे मूल्य रखने पर सरकारी हस्तक्षेप का भय हो सकता है।

3. **उपयोगिता या अवबोधित मूल्य विधि** – मूल्य निर्धारण की इस विधि में उत्पाद का मूल्य ग्राहक द्वारा उस वस्तु में अनुभव की गयी उपयोगिता पर आधारित होता है, अर्थात् उत्पाद का मूल्य वही रखा जाता है जो उपभोक्ता का उस उत्पाद के सम्बन्ध में उपयोगिता– अवबोध मूल्य (Buyers Perception of Value) होता है। इसलिये इस विधि को 'उपयोगी मूल्य कीमत' (Value in Use Price) विधि भी कहते हैं।

उपयोगिता मूल्य विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

(i) इस विधि से उत्पाद की उपयोगिता कितनी है, का पता लग जाता है।

(ii) इसमें उपयोगिता को आधार मानकर उत्पाद का मूल्य अधिक या कम रखा जा सकता है।

(iii) इस विधि से उपभोक्ताओं के अस्तित्व में उत्पाद की श्रेष्ठ छवि बनती है।

(iv) उपभोक्ता उत्पाद के लाभों एवं महत्व को जानता है। इसलिए उसे अधिक मूल्य देने में कोई कष्ट नहीं होता है।

(v) यह लाभ देय विधि है क्योंकि उपभोक्ता किसी उत्पाद की जितनी उपयोगिता का अवबोधन करता है, उतना ही अधिक मूलय देने को तैयार हो जाता है।

उपयोगिता मूल्य विधि में निम्नलिखित दोश हैं–

(i) यह मनोवैज्ञानिक विधि होने के कारण उपभोक्ता के मन में किस उत्पाद की उपयोगिता है और किसकी नहीं, जानना एक कठिन कार्य है।

(ii) उपयोगिता–अवबोध जानना एक कठिन प्रक्रिया है।

(iii) इस विधि को सभी उत्पादों की बिक्री में लागू नहीं किया जा सकता है।

4. **जाँच विपणन विधि** – मूल्य निर्धारण की जाँच विपणन विधि में विभिन्न उप–बाजारों में विभिन्न मूल्यों से उत्पाद जाँच विपणन करके एक माँग अनुसूची बनायी जाती है। इसके पश्चात् इसमें विभिन्न मूल्यों पर होने वाले कुल विक्रय की मात्रा एवं आय को दर्शाया जाता है तथा जिस मूल्य पर सर्वाधिक विक्रय की मात्रा या आय प्राप्त होती है, उसे ही उत्पाद के मूल्य हेतु चुन लिया जाता है।

जाँच विपणन विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

(i) इस विधि में व्यापारियों को उप–बाजार की जाँच करने का अवसर मिल जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) यह एक व्यावहारिक विधि है क्योंकि उत्पाद के विभिन्न मूल्यों की पहले से ही जाँच कर ली जाती है।

(iii) उत्पादों के मूल्य वास्तविक दशाओं के निकट होते हैं।

जाँच विपणन विधि में निम्नलिखित दोश हैं–

(i) यह खर्चीली विधि है क्योंकि उत्पाद जाँच बार–बार करनी पड़ती है।

(ii) इस विधि को अनियंत्रित बाजारों में नहीं अपनाया जा सकता है।

5. **पूर्वानुमान विधि** – मूल्य निर्धारण की इस विधि के अन्तर्गत किसी भावी निश्चित अवधि के लिए उत्पाद के विक्रय (मूल्य एवं मात्रा दोनों) के सम्बन्ध में उचित तथ्यों, कारणों एवं सूचनाओं के आधार पर विधिवत् अनुमान लगाया जाता है।

पूर्वानमान विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

(i) प्रतिस्पर्द्धा का आसानी से सामना किया जा सकता है।

(ii) नये उत्पादों का विकास किया जा सकता है।

(iii) नये बाजार क्षेत्रों का विकास किया जा सकता है।

(iv) स्कन्ध संग्रहण एवं नियन्त्रण की समस्या का निवारण सहज हो जाता है।

पूर्वानुमान विधि में निम्नलिखित दोश हैं–

(i) बिक्री का अनुमान लगाना कठिन है।

(ii) इस विधि में प्रायः काफी अनुमान लगाने पड़ते है जिससे अन्तिम पूर्वानुमान ही शुद्धता में बाधा आती है।

(iii) व्यवहार में, एक निश्चित समयाविधि में तेज वृद्धि दर को कायम रखना बहुत कठिन होता है।

(III) लागत–माँग पर आधारित विधियाँ (Methods Based on Cost Demand)–

मूल्य निर्धारण की इस विधि में दो तत्वों–लागत एवं माँग पर विचार किया जाता है। इसके लिए दो अनुसूचियाँ बनायी जाती है। पहली अनुसूची में पिछले लागत–आँकड़ों के आधार पर फर्म की स्थायी लागतों (fixed Costs) एवं परिवर्तनशील लागतों (Variable Costs) को दर्शाया जाता है। दूसरी अनुसूची में विभिन्न स्तरों पर उपभोक्ता की माँग की मात्रा (Quantity or Demand) एवं प्राप्त होने वाली आय (Total Revenue) को दर्शाया जाता है। इसके पश्चात् इन दोनों अनुसूचियों में दर्शाये गये लागत के आँकड़ों एवं विक्रय की मात्रा को एक साथ रखकर 'सम–विच्छेद विश्लेषण' (Break-even Analysis) किया जाता है। इससे यह पता हो जाता है कि विक्रय की कुल मात्रा एवं कुल आय में सन्तुलन किस विक्रय मूल्य पर हो सकता है। इसीलिए मूल्य निर्धारण की इस विधि को ''लागत–मात्रा–लाभ विश्लेषण'' (Cost-Volume-Profit Analysis) अथवा 'सम–विच्छेद विधि' (Break-even Method) भी कहते हैं। अतः यह वह विधि है जिसमें उत्पाद एवं विक्रय का वह स्तर निर्धारित किया जाता है, जहाँ कुल लागत (Total Cost) कुल आगम (Total Revenue) के बराबर (TC=TR) होती है। यह निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

(i) कुछ लागतें स्थिर रहती हैं तो कुछ उत्पादन के साथ–साथ परिवर्तनशील है।

(ii) लागतों को स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों में सरलता से विभाजित किया जा सकता है।

(iii) उत्पादन मात्रा एवं विक्रय मात्रा में परिवर्तन होने पर भी विक्रय मूल्य वही रहता है।

(iv) केवल एक ही वस्तु का उत्पादन अथवा विक्रय होता है।

(v) सामान्य मूल्य स्थिर रहते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उदाहरण– प्रमापित उत्पादन 1,500 इकाइयाँ, स्थायी लागतें 10,000 रू., परिवर्तनशील लागतें 5 रू. प्रति इकाई एवं विक्रय मूल्य 25 रू. प्रति इकाई। इन आँकड़ों के आधार पर सम–विच्छेद विक्रय की गणना इस सूत्र से की जा सकती है।

$$\text{सम–विच्छेद (इकाइयाँ)} = \frac{\text{स्थायी लागतें}}{\text{विक्रय मूल्य–औसत परिवर्तनशील लागतें}}$$

$$= \frac{10,000}{25-5} = \frac{10,000}{20} = 50,000 \text{ इकाइयाँ}$$

सम–विच्छेद (राशि) = 50,000 x 25 = 12,50,000

यदि विक्रमय मूल्य 30 रू. प्रति इकाई हो तो सम–विच्छेद विश्लेषण इस प्रकार होगा–

$$\text{सम–विच्छेद विक्रय राशि} = \frac{10,000}{30-5} = \frac{10,000}{25} = 400 \text{ इकाइयाँ,}$$

सम–विच्छेद विक्रय राशि = 400x30 = 12,000

लागत–मात्रा आधारित विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

(i) इस विधि में विपणन कम्पनियाँ सम्भावित हानियों से सुरक्षा कर सकती है।

(ii) सम–विच्छेद बिन्दु का इकाइयों एवं मात्राओं में गणना करना सहज है।

लागत–मात्रा आधारित विधि में निम्नलिखित दोश हैं–

(i) सम–विच्छेद बिन्दु की मान्यताएँ अव्यवहारिक एवं वास्तविक है।

(ii) सम–विच्छेद बिन्दु से मूल्य का निर्धारण करना एक कठिन प्रक्रिया है।

(iii) इस विधि से मूल्य निर्धारण करने के लिए अनेक प्रबन्धकीय निर्णयों को भी ध्यान में रखा जाता है। लेकिन इसमें ऐसा नहीं हो पाने से उचित मूल्य निर्धारित नहीं हो पाता है।

(IV) प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित विधियाँ (Methods based on Competition)–

1. **विद्यमान दर मूल्य विधि (Going Rate Pricing Method)**– मूल्य निर्धारण की इस विधि में जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि उत्पाद का मूल्य प्रतिस्पर्द्धियों के समान या उससे कुछ कम या अधिक हो सकता है। इस प्रकार यह एक ऐसी विधि है जिसमें उत्पाद का मूल्य वही निर्धारित किया जाता है जो अन्य प्रतिस्पर्द्धी संस्थाएँ मूल्य रखती है। इसलिए इसे प्रथागत या सममूल्य विधि भी कहते हैं।

विद्यमान दर मूल्य विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

(i) इस विधि से फर्मो को उचित लाभ अर्जित के अवसर मिलते हैं।

(ii) इस विधि से औद्योगिक सहयोग का वातावरण बनता है क्योंकि यह पूर्णतः सामूहिक विवेक एवं बुद्धिमानी पर आधारित है।

(iii) यह व्यावहारिक विधि है क्योंकि इसके द्वारा निर्धारित उत्पाद मूल्य समस्त औद्योगिक इकाइयों के द्वारा वसूल किये जाने वाले उत्पाद मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(iv) इस विधि द्वारा निर्धारित मूल्यों के कारण उत्पाद–मूल्य प्रतियोगिता की सम्भावना कम हो जाती है।

विद्यमान पर मूल्य विधि में निम्नलिखित दोश हैं–

(i) इस विधि में लागत तत्व पर अधिक विचार नहीं किया गया है।

(ii) इस विधि में जब सममूल्य निर्धारित कर दिया जाता है तो भिन्न मूल्य निर्धारित करना कठिन हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **सील बन्द या टेण्डर मूल्य विधि (Sealed Bid or Tender Pricing Method)**– इस विधि के अन्तर्गत प्रतियोगी फर्मो द्वारा निर्धारित (Quoted) किये जाने वाले मूल्यों का ध्यान में रखकर मूल्य निर्धारण किया जाता है, न कि उत्पाद की लागत एवं माँग पर। इस विधि में एक फर्म प्रतियोगी फर्म द्वारा निर्धारित किये गये मूल्यों का अनुमान लगाती है। फिर वह प्रतियोगियों की अपेक्षा सबसे कम मूल्य निर्धारित करती हैं यदि वह बहुत मूल्य तय कर देती है तो लागत वसूल नहीं होने की संभावना रहती है और अधिक मूल्य तय करने पर काम हाथ से निकल जाने की सम्भावना रहती है। अतः इस दुविधा से बचने के लिए फर्म ऐसा मूल्य तय करती है जिससे अपेक्षित लाभ प्राप्त कर सके।

सीलबन्द मूल्य विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

(i) फर्म उचित मूल्य विकसित कर सकती है जो सभी फर्मो के लिए ठीक है।

(ii) इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है, जब उत्पाद की लागतें स्थिर रहती हैं।

(iii) इस विधि में उचित मूल्य निर्धारित कर लाभ कमाया जा सकता है।

सीलबन्द मूल्य विधि में निम्नलिखित दोश हैं–

(i) उत्पाद की लागत कितनी है, की दृष्टि से उचित मूल्य का निर्धारण बहुत कठिन होता है।

(ii) इस विधि के अपनाने से फर्म की जोखिम बढ़ जाती है। जिससे हानि हो सकती है।

(iii) प्रतियोगी फर्मो की मूल्य नीतियों को ठीक से समझना आवश्यक है अन्यथा अनुबंध हाथ से निकल सकता है।

(V) आयात पर आधारित विधियाँ (Methods based on Import)–

मूल्य निर्धारण की इस विधि के अन्तर्गत आयातित मूल्य की लागत की गणना (उत्पाद की लागत + भाड़ा + बीमा व्यय + आयात शुल्क + अन्य खर्चे) करके उसे भारतीय मुद्रा में परिवर्तित किया जाता है। इसके पश्चात् आयात के स्थानापन्न उत्पाद का मूल्य निर्धारित किया जाता है। इसलिए इसे 'आयात स्थानापन्न उत्पाद मूल्य विधि' अथवा 'आयातित लागत मूल्य विधि' भी कहते हैं।

आयात पर आधारित विधि प्रतिस्पर्द्धी या स्थानापन्न उत्पादों का विदेशों से आयात करने की दशा में ही उपयुक्त है। लेकिन यह विधि आयातित उत्पाद एवं देशी उत्पादों में अन्तर अधिक होने पर उपयुक्त नहीं है।

(VI) नियंत्रित मूल्य विधि (Regulated Pricing Method)–

मूल्य निर्धारण की इस विधि में सरकार आवश्यक वस्तुओं, जीवन–रक्षक दवाओं, आधारभूत साधनों का मूल्य निर्धारण एवं नियंत्रण किया जाता है, जैसे– खाद, चीनी, पेट्रोल, डीजल, रसोई गैस, विद्युत, पानी, स्टील, टी.बी., हृदय रोग, कैंसर आदि। सरकार कुछ उत्पादों के मूल्य हेतु कभी–कभी अनुदान या सहायता भी देती है। इस मूल्य निर्धारण का विधि का उद्देश्य कमजोर एवं पिछड़े वर्गों का उचित मूल्य पर आवश्यक उत्पाद उपलब्ध कराना होता है।

मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया/कार्यविधि

(Process/Procedure of Price Determination)

उत्पाद की कीमत का निर्धारण लागत व लाभों को जोड़कर किया जाता है लेकिन इससे उत्पाद बाजार से बाहर हो सकते है। मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो कि प्रतिस्पर्द्धी मूल्यों को भी ध्यान में रखती हो एवं संयंत्र की उत्पादन क्षमता का वर्ष पर्यन्त भी पूर्ण उपयोग हो।

सामान्यतया विभिन्न स्तरों पर मांग एवं लागतें पृथक–पृथक होने के कारण मूल्य निर्धारण की सर्वमान्य प्रक्रिया का अभाव है। लेकिन मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया के महत्वपूर्ण कदम निम्न है।

1. **उत्पाद की माँग का अनुमान लगाना** – मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया में पहला कदम उत्पाद की माँग का अनुमान लगाना होता है, विशेषतया नये उत्पाद के सम्बन्ध में। इसका कारण यह है कि नये उत्पाद की माँग के बारे में विक्रेता को न तो ज्ञान होता है और न ही अनुभव।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्पाद की माँग का अनुमान लगाने के लिए निम्नलिखित दो कार्य करने होते हैं–

a) **ग्राहकों द्वारा उत्पाद के सम्भावित मूल्य** – ये वे मूल्य हैं जिन्हें ग्राहक जाने या अनजाने में उचित समझते हैं। नये उत्पाद के सम्बन्ध में ग्राहकों द्वारा बतायी मूल्य सीमा के अन्तर्गत किसी भी बिन्दु पर मूल्य तय किया जा सकता है। किन्तु प्रतिस्पर्द्धी के अभाव में नये उत्पाद का प्रारम्भिक मूल्य अधिकतम बिन्दु पर निश्चित किया जाता है। फिर भी उत्पाद के सम्भावित मूल्य का पता लगाने के लिए ये स्त्रोत काम में लाये जा सकते हैं– फुटकर एवं थोक व्यापारी, सम्भावित ग्राहक एवं विभिन्न बाजार खण्ड़ों में उत्पाद के विभिन्न मूल्यों का परीक्षण आदि।

b) **विभिन्न मूल्यों पर विक्रयानुमान लगाना** – यदि उत्पाद की माँग लोचदार है तो बिक्री बढ़ाने एवं लाभों को अधिकतम करने के लिए उसका मूल्य कम रखना चाहिए। इसके विपरीत उत्पाद–माँग की लोच, बेलोच है तो उत्पाद का मूल्य कम रखने पर भी उसकी बिक्री में वृद्धि भी की जा सकती है। अतः बेलोच माँग वाले उत्पाद के लिए अधिक मूल्य रखने से लाभों को अधिकतम किया जा सकता है।

2. **प्रतिस्पर्द्धी प्रतिक्रिया का अनुमान लगाना एवं प्रभावों का वि□लेशण करना** – मूल्य निर्धारण को प्रक्रिया में दूसरा कदम प्रतिस्पर्द्धी प्रतिक्रिया का अनुमान लगाना एवं प्रभावों का विश्लेषण करना आवश्यक है ताकि उपभोक्ताओं को आकर्षित किया जा सके। लेकिन वास्तविक प्रतिस्पर्द्धा तो समान एवं स्थानापन्न उत्पादों के कारण ही होती है। गलाघोट प्रतिस्पर्द्धा की दशा में प्रतिस्पर्द्धी अपने उत्पादों के मूल्यों को बहुत घटा सकते हैं और कभी–कभी तो वे सम्पूर्ण मूल्य संरचना में परिवर्तन कर देते है। ऐसी दशा में उनकी प्रतिक्रिया का अनुमान लगाना आवश्यक है। यदि तत्काल प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मूल्य एवं मूल्य संरचना में तत्काल परिवर्तन किया जाता है तो उसका मुकाबला करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रतिस्पर्द्धियों के उत्पादों, उनकी लागतें, बाजार अंश एवं उनकी क्रियाओं आदि के सम्बन्ध में रचनाएँ भी एकत्रित करते रहना चाहिए।

3. **बाजार अं□ा का निर्धारण** – मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया का तीसरा कदम, बाजार, अंश या भाग का निर्धारण करना आता है। यहाँ बाजार अंश को अभिप्राय उत्पाद की कुल माँग के उस भाग से है जिस पर निर्माता/विक्रेता नियंत्रण करना चाहता है। बाजार अंश बनाये रखने एवं उसमें वृद्धि करने वाले उद्देश्यों से प्रभावित निर्माताओं के उत्पाद मूल्य समान नहीं होते हैं। अतः बाजार अंश का निर्धारण करते समय अग्रलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए–

a) उत्पादों का सम्भावित मूल्य क्या है? सामान्यतः कम मूल्य से अधिक बाजार अंश प्राप्त किया जा सकता है, जबकि अधिक मूल्य से नहीं।

b) बाजार के अंश को प्रभावित करने वाले घटकों, जैसे– उत्पाद की प्रकृति, उत्पादन क्षमता, माँग सम्बन्धी अनुमानों, प्रतिस्पर्द्धी प्रभावों, प्लान्ट क्षमता, प्लान्ट विस्तार की लागतें एवं संवर्द्धनात्मक साधनों का उपयोग आदि को ध्यान में रखना चाहिए।

एक फर्म अपनी उत्पादन क्षमता से बाजार अंश अधिक निश्चित करती हैं तो प्राप्त आदेशों को पूरा नहीं कर सकेगी। यदि उत्पाद की माँग अच्छी है, परन्तु फर्म भावी प्रतियोगिता के डर से प्लान्ट क्षमता का विस्तार करना उचित नहीं समझती है तो इस प्रकार की परिस्थितियों में उत्पाद के प्रारम्भिक मूल्य ऊँचे स्तर पर रखे जाने चाहिए।

4. **मूल्य निर्धारण के उद्दे□यों का चयन** – निर्धारण की प्रक्रिया में चौथा कदम मूल्य निर्धारित के उद्देश्य हैं? उद्देश्य इनमें से कोई भी हो सकते है –

(a) विनियोगों पर निर्धारित प्रतिफल।
(b) प्रतिस्पर्द्धी का सामना करना या रोकना।
(c) लाभों को अधिकतम करना।
(d) उत्पाद रेखा संवर्द्धन।
(e) बाजार प्रवेश।
(f) विक्रय मात्रा को अधिकतम रखना।
(g) बाजार भाग या हिस्सा।
(h) अस्तित्व की रक्षा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपर्युक्त उद्देश्यों में से एक या अधिक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले उत्पाद मूल्य का चयन करना चाहिए। यदि लाभों को अधिकतम करना है तो ऊँचे मूल्य रखने होंगे, यदि बाजार में प्रवेश करना है तो नीचे मूल्य रखने होंगे।

5. **मूल्य नीति एवं रीति–नीति का चुनाव** – मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया का पाँचवा कदम मूल्य नीति एवं रीति–नीति के चुनाव से सम्बन्धित है। ये अनेक प्रकार की हो सकती है, जैसे– एक मूल्य नीति, नेता मूल्य नीति, पूर्ण रेखा मूल्य नीति, प्रतियोगिता मिलन मूल्य नीति, ललचाने वाली मूल्य नीति, बाजार प्रवेशक मूल्य रीति–नीति एवं मलाई उतारने वाली मूल्य रीति–नीति आदि।

   एक नये उत्पाद के सम्बन्ध में मूल्य निर्धारण करते समय असामान्य मूल्य रीति–नीति, बाजार प्रवेश मूल्य रीति–नीति और नेता अनुकरण रीति–नीति में किसी एक का चुनाव किया जाता है। प्रत्येक मूल्य रीति–नीति के गुण–दोष हैं। किन्तु इनका तुलनात्मक अध्ययन कर मूल्य नीति एवं रीति–नीति का चुनाव करना चाहिए।

6. **फर्म की विपणन नीतियों पर विचार करना** – मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया के छठे चरण में फर्म की विपणन नीतियों पर विचार किया जाता है जो निम्नलिखित से सम्बन्धित हो सकती है–

   a) **उत्पाद नीतियाँ** – उत्पाद नीतियों के अन्तर्गत यह अध्ययन करना आवश्यक है कि उत्पाद टिकाऊ या नाशवान है, उत्पाद को किन–किन उपयोगों के लिए खरीदा या बेचा जा सकता है, उत्पाद को किन–किन माध्यमों से होते हुए उपभोक्तओं तक पहुँचाना है, उत्पाद रेखा सम्बन्ध नीति क्या है, उत्पाद का मौलिक विकास किस प्रकार किया जायेगा आदि। इन जानकारियों को करने के पश्चात् मूल्य निर्धारण कार्य सरल हो जाता है।

   b) **वितरण नीतियाँ** – उत्पादों के वितरण माध्यम के सम्बन्ध में नीति क्या है? मध्यस्थों को प्रोत्साहित करने एवं बिक्री में रूचि लेने के लिए छूट या बट्टे की दर क्या होगी? यह जानकारी मूल्य निर्धारण में बड़ी सहायक होती है, क्योंकि फर्म द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता तक उत्पाद पहुँचाने का मूल्य भिन्न–भिन्न होता है।

   c) **संवर्द्धन नीतियाँ** – उत्पाद मूल्य निर्धारण हेतु यह जानना भी आवश्यक है कि विक्रय संवर्द्धन पर किया जाने वाला व्यय कितना होगा, इसे कौन वहन करेगा, क्या इसे मूल्य में सम्मिलित किया जायेगा आदि?

7. **विशिष्ट मूल्य का चुनाव** – मूल्य निर्धारण प्रक्रिया के सातवें कदम में विशिष्ट मूल्य का चुनाव किया जाता है। लेकिन चुनाव करने के पूर्व उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं के अनुसार मूल्य निर्धारण की विधियों में से उचित एवं उपयुक्त विधि का चुनाव किया जा सकता है। इसी प्रकार मूल्य निर्धारण को प्रभावित करने वाले घटकों को ध्यान में रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण बाजार के लिए मूल्य निर्धारण से पूर्व जांच विपणन करके मूल्य की व्यावहारिकता की जाँच कर लेनी चाहिए।

   इस प्रकार मूल्य निर्धारण प्रक्रिया के इस कदम में उपरोक्त कदमों एवं अन्य बिन्दुओं पर एक साथ तुलनात्मक विचार करते हुए किसी विशिष्ट मूल्य का चुनाव करना चाहिए।

8. **अनुगमन**–मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया के अन्तिम कदम में यह देखा जाता है कि चयनित विशिष्ट मूल्य को लागू अर्थात अनुगमन किया है या नहीं? इसके लिए निर्धारित मूल्य को मूल्य सूची (Price List) पर चढ़ाया जाता है। लेकिन मूल्य सूची पर चढ़ाने के पश्चात् या पूर्व में उस मूल्य पर सम्बन्धित पक्षकारों की प्रतिक्रिया जाननी चाहिए। इसके लिए विभिन्न पक्षकारों, जैसे– संस्था के विक्रेताओं, मध्यस्थों, उपभोक्ताओं आदि से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना चाहिए। उपयुक्त समय आने पर उस मूल्य में संशोधन एवं परिवर्तन करने का विचार रखना चाहिए।

बट्टा एवं छूट (Discount and Rebate)–

बट्टे का आशय– Meaning of Discount

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ग्राहकों को अधिक क्रय हेतु प्रोत्साहित करने अथवा शीघ्र भुगतान के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से उनको कुछ छूटे प्रदान की जाती है जिन्हें बट्टा कहते है। मूल्यों में विभिन्न प्रकार की छूट दिये जाने के कारण ग्राहकों से एक ही वस्तु का भिन्न–भिन्न मूल्य वसूल किया जाता है इसलिए इसे मूल्य भिन्नता नीतियाँ भी कहते है। ये निम्न प्रकार की होती है।

1. **नगद बट्टा नीति**–यह वह नीति है जिसमें विक्रेता ग्राहक को क्रय के समय या निर्धारित अवधि में भुगतान कर देने पर बीजक मूल्य पर एक निश्चित प्रतिशत का बट्टा काटता है। ऐसा बट्टा माल को सस्ता बना देता है तथा विक्रेता को मूल्य समय पर प्राप्त हो जाने से वसुली में समय तथा धन खर्च नहीं करना पड़ता है। पूँजी संकट भी हल होता रहता है।

2. **परिमाण बट्टा नीति** – यह वह नीति है जिसमें विक्रेता फर्म क्रेता को उसके द्वारा की गई खरीद की मात्रा के अनुपात में बट्टा देती है ताकि अधिकाधिक खरीद करने हेतु क्रेता प्रोत्साहित हो सके। उदाहरण के लिए यदि विक्रेता फर्म यह तय करती है कि प्रत्येक ग्राहक को जो 5,000 रू. का माल एक साथ खरीदेगा यानी एक क्रयादेश के अन्तर्गत खरीदेगा, उसे 3 प्रतिशत बट्टा दिया जावेगा। ऐसी परिमाण बट्टा नीति को **'असंचयी परिमाण बट्टा नीति'** (Non-Cumulative Quantity Discount Policy) कहते हैं। ऐसी नीति में जो क्रेता निर्धारित मात्रा से कम का क्रयादेश देता है, उसे यह बट्टा नहीं दिया जाता है। इसके विपरीत यदि विक्रेता थोड़ी मात्रा में क्रय करने पर कम दर से तथा अधिक मात्रा में क्रय करने पर ऊँची दर से बट्टा देने की नीति अपनाता है, तो ऐसी नीति को **''संचयी परिमाण बट्टा नीति''** (Cumulative Quantity Discount Policy) कहते हैं। इस नीति में बट्टा दरें निम्नानुसार रखी जा सकती है–

क्रय परिमाण	**बट्टा**
2000 रू. तक	कोई बट्टा नही
2,001 रू. से 5000 रू. तक	3 प्रतिशत बट्टा
5,001 रू. से 10,000 रू. तक	5 प्रतिशत बट्टा
10,001 रू. से 20,000 रू. तक	7 प्रतिशत बट्टा
20,001 से ऊपर	10 प्रतिशत बट्टा

3. **व्यापारिक बट्टा नीति** – यह वह नीति है जिसके अन्तर्गत 'निर्माता' द्वारा थोक एवं फुटकर व्यापारियों को अथवा ''थोक व्यापारी'' द्वारा फुटकर व्यापारियों को उनके ग्राहकों को दी जाने वाली सेवाओं व सुविधाओं की क्षतिपूर्ति हेतु सूची मूल्य (List Price) पर बट्टा दिया जाता है। ऐसा बट्टा ''कार्यात्मक बट्टा'' भी कहलाता है। कारण कि क्रेताओं को साख सुविधाएँ देने, अधिक स्टॉक रखने या विज्ञापन कार्य करने आदि की क्षतिपूर्ति के लिए ऐसा बट्टा दिया जाता है।

4. **गैर–मौसम बट्टा नीति** – यह वह नीति है जिसमें गैर–मौसम में क्रेताओं द्वारा की जाने वाली खरीद पर बट्टा दिया जाता है। व्यवहार में, सर्दी में पंखे, कूलर या रेफ्रीजरेटर खरीदने पर बट्टा दिया जाता है। इसी प्रकार, गर्मियों में गर्म कपड़े या ऊन खरीदने पर बट्टा दिया जाता है।

छूट का अर्थ (Meaning of Rebate)–

छूट का अर्थ क्रय मूल्य की उस मात्रा से है जो विक्रेता द्वारा क्रेता को लौटा दिया जाता है। अन्य शब्दों में, रिबेट वह छूट है जो एक विक्रेता द्वारा पहली बार माल क्रय करने पर अथवा परीक्षण के तौर पर माल क्रय करने पर क्रेता को प्रदान की जाती है। **फिलिप कोटलर** के शब्दों में,

''यह वह छूट है जो माल के क्रय करने के पश्चात् निर्माता द्वारा प्रदान की जाती है, न कि फुटकर व्यापारी द्वारा। इसके लिए क्रेता को छूट पाने के लिए माल का क्रय करना पड़ता है, माल के क्रय का बिल/प्रमाण निर्माता के पास भेजना पड़ता है और तब निर्माता उस क्रेता को क्रय मूल्य में से पूर्व निर्धारित राशि वापस लौटा देता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस प्रकार रिबेट क्रय मूल्य का वह भाग है जो विक्रेता, क्रेता को वापस लौटा देता है ताकि वह बार–बार माल खरीदता रहे।

बट्टा एवं छूट में अन्तर (Difference in Discount and Rebate)–

मूल्य निर्धारण बट्टे एवं छूट का विशेष स्थान है। इसे समान अर्थों में प्रयोग किया जाता है क्योंकि इससे दोनों विक्रेताओं एवं क्रेताओं को लाभ होता है तथा इनका उद्देश्य अधिक से अधिक माल बेचना एवं खरीदना होता है। किन्तु फिर भी इनमें कुछ अन्तर है, जो इस प्रकार हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अन्तर का आधार	बट्टा या कटौती	छूट
1. अर्थ	यह वह छूट है जो ग्राहकों द्वारा एक निर्धारित अर्थ में माल का क्रय करने अथवा एक निर्धारित राशि या मात्रा से अधिक क्रय करने पर प्रदान की जाती है।	जबकि यह वह छूट या रिवेट है जो एक विक्रेता द्वारा पहली बार माल क्रय करने अथवा परीक्षण के तौर पर माल क्रय करने पर क्रेता को दी जाती है।
2. प्रमाण	बट्टे को प्राप्त करने के लिए अलग से प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह तो माल का क्रय करने के समय तुरन्त मूल्य में से घटा दिया जाता है।	जबकि छूट पाने के लिए क्रेता को माल के क्रय का प्रमाण देना होता है।
3. प्राप्तकर्ता	यह किसी भी प्रकार के ग्राहकों, जैसे– मध्यस्थों एवं सभी उपभोक्ताओं को दिया जा सकता है।	जबकि छूट प्रायः उपभोक्ताओं एवं घरेलू ग्राहकों को ही दी जाती है।
4. उपलब्धता	यह कभी भी दिया जा सकता है।	जबकि छूट नये उत्पाद को बाजार में प्रस्तुत करते समय अथवा नये ग्राहकों को परीक्षण हेतु माल क्रय करने के लिए प्रेरित करने के लिये दी जाती है।
5. प्रकार	बट्टे अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे– नकद, व्यापारिक, मात्रा–संचयी एवं असंचयी और गैर–मौसमी बट्टा आदि।	जबकि छूट के कोई प्रकार नहीं हैं क्योंकि यह केवल प्रथम क्रय धन राशि पर दी जाती है।

बोध प्र□न–

लघुत्तरात्मक प्र□न–

1. मूल्य निर्धारण की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए?
2. मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए?
3. विभिन्न मूल्य नीतियों की विवेचना कीजिए?

निबन्धात्मक प्र□न–

1. कीमत से आप क्या समझते है? विपणन में मूल्य निर्धारण का महत्व समझाइये?
2. किसी उत्पाद के मूल्य निर्धारण को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों को स्पष्ट रूप से समझाइये?
3. बट्टा व छूट का अर्थ बताते हुए इनमें अन्तर स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वितरण के माध्यम

Distributions channals

वितरण के माध्यम–थोक व्यापारी–फुटकर व्यापारी–

वितरण के माध्यम (Distribution Channals)–

किसी भी उत्पादक का लक्ष्य केवल माल का उत्पादन करना नहीं बल्कि उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर, उचित स्थान पर, उचित समय पर एवं उचित मात्रा में वस्तु उपलब्ध कराना है। वर्तमान तकनीकी युग में जहाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है, वहाँ उत्पादक द्वारा स्वयं यह कार्य पूरा नहीं किया जा सकता है। उपभोक्ता अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र में फैले होने के कारण व बाजार अन्तर्राष्ट्रीय होने के कारण, उत्पादक एवं उपभोक्ताओं के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने एवं उत्पादन तथा वितरण में विशिष्टीकरण का प्रयोग बढ़ जाने के कारण वस्तुओं के स्वामित्व हस्तान्तरण के लिए उत्पादक और अन्तिम उपभोक्ता के बीच विभिन्न वितरण माध्यमों का प्रयोग किया जाता है।

वितरण माध्यम का अर्थ –

सरल अर्थ में वितरण माध्यम वह है जिनके द्वारा एक निर्माता अपने उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुँचाता है।

विलियम जै. स्टैण्टन के अनुसार– ''एक उत्पाद के लिए वितरण वाहिका (जिसे कभी–कभी व्यापार वाहिका भी कहा जाता है) वह मार्ग है जिसे माल के अधिकार को उत्पादक से अन्तिम उपभोक्ता या औद्योगिक प्रयोगकर्ता तक पहुँचाने के काम में लाया जाता है।''

फिलिप कोटलर के मतानुसार– ''प्रत्येक उत्पादक विभिन्न विपणन मध्यस्थों को जो फर्म के लक्ष्यों को सर्वोत्तम ढ़ंग से पूरा करते हैं, परस्पर जोड़ने की कोशिश करता है। विपणन माध्यमों का यह सेट विपणन मार्ग को लाता है। इसको व्यापारिक मार्ग तथा वितरण मार्ग भी कहते है।''

अमरीकी विपणन संघ के अनुसार– ''वितरण–माध्यमों से आशय निजी कम्पनी के आन्तरिक संगठन इकाइयों के ढाँचे तथा कम्पनी के एजेन्ट या डीलर एवं थोक तथा फुटकर व्यापारियों से है, जिनके माध्यम से कोई वस्तु, उत्पाद या सेवा का विपणन किया जाता है।''

वितरण माध्यम की वि□ाशताएँ निम्नलिखित है –

1. वितरण–माध्यम एक मार्ग है जिससे होकर उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक माल पहुँचता है।
2. इसके अन्तर्गत वस्तुओं के स्वत्वाधिकार के हस्तान्तरण में सहयोग देने वाले सभी प्रतिनिधियों एवं मध्यस्थों को सम्मिलित किया जाता है। जैसे– एजेन्ट, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी, आढ़तिया, निर्यात, एजेन्ट, दलाल, नीलामकर्त्ता एवं अग्रेषण एजेन्ट आदि।
3. ये आर्थिक संस्थाओं की रीतियाँ हैं जिनके माध्यम से एक उत्पादक अपना माल प्रयोगकर्त्ताओं के हाथों में सौंपता है।
4. वितरण के माध्यमों में मध्यस्थों द्वारा वस्तु या माल में कोई खास परिवर्तन नहीं किया जाता है। यदि ऐसा किया जाता है तो जहाँ से परिवर्तन किया गया, वहीं से नया वितरण–माध्यम या मार्ग प्रारम्भ हो जाता है।
5. इसमें उन संस्थाओं (जैसे– रेलवे, भण्डार, ट्रक्स, बैंक एवं बीमा आदि) को सम्मिलित नहीं किया जाता है जो वस्तुओं के लाने–ले जाने से सम्बद्ध है।
6. ये स्थान उपयोगिता, समय उपयोगिता एवं अधिकार उपयोगिता का सृजन करते है।
7. एजेन्ट विक्रेता आदेश देकर भी उपभोक्ता को भौतिक वस्तुएँ भेज देते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वितरण माध्यम की भूमिका या महत्व

Role or Importance of Distribution Channals

वितरण–माध्यमों का मुख्य कार्य उत्पादन एवं उपभोग को परस्पर सम्बन्धित करना है। वितरण– माध्यमों के कार्यों का उल्लेख करते हुए **रिचार्ड बु□ाकिर्क** ने कहा कि, ''वितरण–माध्यम आर्थिक संस्थाओं की वे प्रणालियाँ या पद्धतियाँ हैं, जिनके माध्यम से एक उत्पादक अपना माल प्रयोगकर्त्ताओं के हाथ में सौंपता है।''

वितरण–माध्यमों अथवा मध्यस्थों द्वारा निम्नलिखित कार्य किये जाते हैं–

1. **स्वत्व या स्वामित्व हस्तान्तरण** – वितरण–माध्यमों का प्रथम कार्य वस्तुओं का स्वत्व या स्वामित्व हस्तान्तरण करना है। यह कार्य क्रय–विक्रय एवं विनिमय की वार्ताओं के माध्यम से किया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि इस पर ही वस्तुओं का भौतिक वितरण एवं गमनागमन निर्भर करता है और इससे ही वह प्रेरित होता है। इस प्रकार वस्तुओं के वितरक अथवा मध्यस्थ ही वस्तुओं के स्वामित्व हस्तान्तरण में सहायक होते हैं।

2. **वित्त प्रबन्धन** – आज के युग में प्रत्येक उत्पादक को वित्त की कमी होती है जिसकी पूर्ति करने का कार्य वितरण–माध्यम या मध्यस्थ करता है। यह कार्य निम्नलिखित दो तरीके से करता है–

   a. उत्पादकों या निर्माताओं को आदेश देते समय अग्रिम धन भेजकर, एवं

   b. उत्पादकों को साख–सुविधा प्रदान कर।

मध्यस्थ न केवल उपभोक्तओं को ही साख–सुविधाएँ प्रदान करते हैं, अपितु थोक व्यापारी एवं फुटकर व्यापारी को भी साख–सुविधाएँ प्रदान करते हैं तथा फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं को साख सुविधाएँ प्रदान करते हैं।

3. **सूचनाओं का विनिमय** – आज व्यापक स्तर पर उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के मध्य बहुत अधिक दूरी उत्पन्न हो चुकी है। वितरण–माध्यमों एवं मध्यस्थों के अभाव में दोनों ही सीधा सम्पर्क नहीं कर सकते हैं। इसलिए वितरण–माध्यमों के बीच मध्यस्थों का यह सीधा सम्पर्क करना होता है। इस प्रकार वितरण–माध्यम, निर्माताओं एवं उपभोक्ताओं के मध्य वस्तुओं, बाजारों, किस्म, फैशन एवं माँग आदि के बारे में विभिन्न सूचनाओं का विनिमय करते हैं। फलस्वरूप ये वांछित परिवर्तन करने में सहायक होते हैं।

4. **मूल्य निर्धारण** – वितरण–माध्यम के रूप में कार्य करने वाली संस्थाएँ, निर्माता तथा क्रेताओं को मूल्य निर्धारण करने में सहायता करती है। वितरण–माध्यम या मध्यस्थ समय–समय पर बाजारों, मूल्यों, प्रतिस्पर्द्धा, क्रेताओं की क्रय शक्ति एवं लागतों के बारे में एवं उपभोक्ताओं को सूचनाएँ प्रदान करते हैं। फलस्वरूप उनके लिए वस्तुओं के मूल्य निर्धारण का कार्य सहज हो जाता है।

5. **विक्रय संवर्द्धन** – वितरण–माध्यमों में सम्मिलित होने वाले मध्यस्थ अपने क्षेत्रों में विज्ञापन एवं संवर्द्धन क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं ताकि वस्तुओं की बिक्री एवं संस्था की ख्याति बढ़ सके। मध्यस्थों को इन क्रियाओं पर होने वाले खर्चों को पूरा करने हेतु अनेक बार उत्पादकों एवं निर्माताओं से आर्थिक सहायता भी प्राप्त होती है। इसी प्रकार मध्यस्थों को निर्माताओं एवं उत्पादकों द्वारा विज्ञापन सामग्री, क्रय–बिन्दु प्रदर्शन हेतु साज–सज्जा, सामान, विक्रय साहित्य, मुफ्त वितरण हेतु नमूने, डायरियाँ एवं कलैण्डर आदि वस्तुएँ भी उपलब्ध करायी जाती हैं।

6. **माँग का पूर्वानुमान** – मध्यस्थ, बाजार एवं उपभोक्तओं का अध्ययन करके आने वाले समय में उस वस्तु की सम्भावित माँग का अनुमान लगा लेते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादक, उत्पादन की मात्रा के प्रति इतना सचेत हो जाता है कि वह अति–उत्पादन की जोखिम से बच जाता है।

7. **कच्चा–माल एवं अन्य सामग्रियों की उपलब्धि** – मध्यस्थ लोगों द्वारा उत्पादकों को कच्चा–माल, पूँजी, यंत्र, कुशल श्रमिक एवं अन्य सामग्रियाँ एकत्रित करके सुगमतापूर्वक उपलब्ध करायी जाती है, मध्यस्थ इस बात से पूर्णतः अवगत होते हैं कि बाजार में किसी वस्तु की कितनी माँग है एवं उसका उत्पादन कितनी मात्रा में करना चाहिए। उनकी यह जानकारी उत्पादकों को माल खरीदने एवं बेचने में सहायता करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. **उपयोगिता का सृजन** – मध्यस्थ का कार्य समाज में वस्तुओं की उपयोगिताओं (जैसे– रूप, स्थान, समय, अधिकार आदि) का सृजन करना है। वे कच्चे माल को मण्डी तक लाने से स्थान उपयोगिता, कुछ समय तक संग्रह करने से समय उपयोगिता एवं आवश्यकतानुसार वस्तुओं का विक्रय करने से अधिकार उपयोगिता का सृजन करते हैं।

9. **बाजार विस्तार** – वितरण–माध्यमों से देश–विदेशों में उत्पादकों की वस्तुओं के बाजार का विस्तार होता है। थोक व्यापारी उत्पादकों से भारी मात्रा में सामान खरीदकर फुटकर व्यापारियों को थोड़ी–थोड़ी मात्रा में बेचते रहते हैं। इन मध्यस्थों का उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है। इसलिए उत्पादकों की वस्तुओं की माँग में वृद्धि करने में सहायक होते है।

10. **उपभोक्ताओं की सेवाएँ** – मध्यस्थ उपभोक्ताओं के निकटतम स्थान पर पहुँचकर वस्तुएँ बेचने का कार्य करते हैं। प्रायः उपभोक्ताओं को कई प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होती है। ये उनकी अभिरूचियों के अनुरूप ही वस्तुएँ अपने पास रखते हैं एवं अन्य मध्यस्थ से व्यवस्था भी कर देते हैं। फलस्वरूप उपभोक्ताओं को अपनी मनपसन्द वस्तुएँ खरीदने का अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त मध्यस्थ ग्राहकों को साख सुविधाएँ भी प्रदान करते हैं।

11. **संग्रह कार्य** – मध्यस्थ विक्रय हेतु वस्तुएँ अपनी दुकानों एवं गोदामों में एकत्रित कर लेते हैं। थोक व्यापारी, उत्पादक को प्रायः अग्रिम आदेश भेज देते हैं जिससे वस्तु तैयार होते ही उनके गोदामों में आ जाती है। इसी प्रकार उपभोक्ता भी फुटकर व्यापारियों से अपनी आवश्यकतानुसार माल खरीदते रहते हैं। अतः उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं को ही अपने पास वस्तुओं के अनावश्यक संग्रह की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

12. **उत्पादकों को उचित मूल्य** – चूँकि मध्यस्थ को विभिन्न क्षेत्रों एवं बातों का ज्ञान, अनुभव एवं सम्पर्क होने के कारण वे उत्पाद को उनके उत्पादन का उचित मूल्य दिलवाने में सहायक होते हैं। इस सम्बन्ध में **प्रो. फिलिप कोटलर** ने कहा कि, ''मध्यस्थ का अनुभव, विशिष्ट ज्ञान, उनके सम्पर्क साधन तथा उनके कार्य का पैमाना उत्पादक को बहुत अधिक लाभ पहुँचाता है।''

13. **श्रेणीयन कार्य** – वितरण माध्यमों के द्वारा मध्यस्थ विभिन्न वस्तुएँ एवं एक ही वस्तु की अनेक किस्मों का क्रय करते हैं। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा एक ही वस्तु की अनेक किस्मों को उनके गुणों के अनुसार श्रेणीयन भी किया जाता है क्योंकि अलग–अलग श्रेणी के माल के क्रेता भी अलग–अलग होते हैं।

14. **पूरक उत्पादों के विक्रय से मुक्ति** – वितरण माध्यमों के मध्यस्थ उत्पादकों को अपने मूल उत्पाद के साथ पूरक उत्पादों के विक्रय से मुक्ति प्रदान करते हैं, जैसे– सुई के लिए धागा, पैन के साथ इंक या रिफिल, मोबाइल के साथ जार्चर एवं टूथपेस्ट के साथ ब्रश आदि। इस प्रकार मध्यस्थ की सेवाएँ उपलब्ध होने के परिणामस्वरूप धागा, इंक या रिफिल, चार्जर एवं ब्रश बनाने तथा बेचने की आवश्यकता नहीं है।

15. **ग्राहकों से सम्पर्क में सुविधा** – मध्यस्थ उत्पादकों एवं ग्राहकों के मध्य कड़ी के रूप में कार्य करते हैं। इसलिए इनसे सम्पर्क बनाये रखने में सुविधा होती है। परिणामस्वरूप ग्राहकों की इच्छाओं, आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं समस्याओं आदि की जानकारी हो जाती है। इसके अतिरिक्त उत्पादक, उपभोक्ताओं को इन मध्यस्थों के द्वारा अपने उत्पादों एवं नीतियों के सम्बन्ध में आवश्यकत सूचनाएँ भी पहुँचाते हैं।

वितरण माध्यमों के प्रकार (Types of Distribution Channels)–

किसी वस्तु या माल को उत्पादकों या निर्माताओं से उपभोक्ताओं या प्रयोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए अनेक प्रकार या माध्यम होते हैं। वितरण–माध्यमों को वस्तु की प्रकृति के आधार पर मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(I) उपभोक्त वस्तुओं/माल के वितरण–माध्यम, एवं

(II) व्यावसायिक या औद्योगिक माल के वितरण–माध्यम।

प्रत्येक माध्यमों का विवरण इस प्रकार है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(I) उपभोक्ता वस्तुओं/माल के वितरण–माध्यम (Distribution Channels of Consumer's Products or Goods)–

1. **उत्पादक → उपभोक्ता अर्थात प्रत्यक्ष वितरण (Producer to Consumer or Direct Distribution)**– वितरण के इस माध्यम में उत्पादकों का उपभोक्ताओं से सीधा सम्बन्ध होता है और उनको माल का प्रत्यक्ष वितरण कर दिया जाता है। माल को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए उत्पादक या तो स्वयं अपनी विक्रय दुकान (Selling Depot) खोलता है अथवा अपने ही किसी विक्रेता अथवा डाक के माध्यम से माल पहुँचाता है। जैसे–भारत में बाटा शू कम्पनी एवं लिबर्टी आदि अपनी दुकानों के माध्यम से जूतों का विक्रय करती है।

2. **उत्पादक → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता (Producer → Retailer → Consumer)**– इसमें उत्पादक एवं उपभोक्ता के मध्य एक मध्यस्थ फुटकर व्यापारी होता है। इसके अन्तर्गत उत्पादक अपने माल का विक्रय बड़े–बड़े फुटकर व्यापारियों से करते हैं जिनकी दुकानें शहर में प्रसिद्धि प्राप्त होती हैं एवं यह फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं के आवश्यकतानुसार वस्तु का विक्रय करते रहते हैं। मुख्य रूप से सामान्य एवं निश्चित मूल्य वाली वस्तुओं के लिए यही वितरण–माध्यम अपनाती है, जैसे– पंखों, सिलाई मशीनों एवं मोटरगाड़ियों आदि की बिक्री सीधी फुटकर व्यापारी को हो जाती है जो उपभोक्ताओं को इनका विक्रय करते हैं।

3. **उत्पादक → थोक व्यापारी → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता (Producer → Wholesaler → Retailer → Consumer)**– वितरण के इस माध्यम में उत्पादक अपने माल का विक्रय थोक व्यापारी को करते हैं, व्यापारी थोड़ी–थोड़ी मात्रा में फुटकर व्यापारियों को माल बेचते हैं और फुटकर व्यापारी ग्राहकों को उनकी आवश्यकतानुसार वस्तु का विक्रय करते हैं।

4. **उत्पादक → एजेन्ट → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता (Producer → Agents → Retailer → Consumer)**– अनेक उत्पादक अपने माल का विक्रय थोक व्यापारी को न करके उसके स्थान पर उत्पादक एजेन्ट या विक्रय एजेन्ट या अन्य किसी प्रकार के एजेन्ट या दलाल को नियुक्त करना अधिक उपयुक्त समझते हैं उत्पादक एजेन्ट को समस्त माल भेजते हैं, लेकिन स्वामित्व हस्तान्तरण नहीं करते हैं। यह एजेन्ट बड़े फुटकर व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित करते हैं जो उपभोक्ताओं की आवश्यकतानुसार माल का विक्रय करते हैं।

5. **उत्पादक → एजेन्ट → थोक व्यापारी → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता (Producer → Agents → Wholesaler → Retailer → Consumer)**– कभी–कभी उत्पादक अपने माल का वितरण छोटे फुटकर व्यापारियों के माध्यम से करना अधिक उपयुक्त समझता है। जिनसे एजेन्ट द्वारा सम्पर्क करना कठिन होता है। इस स्थिति में उत्पादक अपने माल का विक्रय एजेन्ट को करता है, एजेन्ट विभिन्न थोक व्यापारियों को इनका विक्रय करता है, थोक व्यापारी छोटे–छोटे फुटकर व्यापारियों को माल का विक्रय करते हैं।

(II) व्यावसायिक या औद्योगिक माल के वितरण–माध्यम (Distribution Channels of Business or Industrial Good)–

1. **निर्माता → औद्योगिक प्रयोक्ता (Manufacturer to Industrial Users)**– वितरण के इस माध्यम को सीधी पद्धति या सीधा मार्ग भी कहते हैं क्योंकि इसमें निर्माता एवं औद्योगिक प्रयोक्ता के मध्य सीधा सम्बन्ध रहता है। बड़े–बड़े औद्योगिक ग्राहकों, जैसे– रेलवे, विद्युत माल का वितरण प्रत्यक्ष ही होता है।

2. **निर्माता → औद्योगिक वितरक → औद्योगिक प्रयोक्ता (Manufacturer → Industrial Distributor → Industrial Users)**– इसमें औद्योगिक वितरक जो कि विभिन्न कम्पनियों के वितरक का कार्य करते हैं, की सेवाएँ प्राप्त की जाती हैं। भवन निर्माण सामग्रियों एवं औजार आदि के लिए यह प्रणाली अपनायी जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **निर्माता → एजेन्ट → औद्योगिक प्रयोक्ता (Manufacturer → Agent → Industrial Users)**– वितरण के इस माध्यम में निर्माता एक एजेन्ट की नियुक्ति कर देता है। यह माध्यम उन फर्मो में अधिक उपयोगी है, जहाँ निजी विपणन विभाग नहीं होते हैं।

4. **निर्माता → एजेन्ट → औद्योगिक वितरक → औद्योगिक प्रयोक्ता (Manufacturer → Agent → Industrial Distributor → Industrial Users)**– जहाँ पर माल को औद्योगिक प्रयोक्ताओं के पास विकेन्द्रीकरण के कारण सीधा पहुँचना सम्भव नहीं होता है, वहाँ इस प्रकार के माध्यम का उपयोग किया जाता है।

वितरण प्रणाली के प्रकार

Type of Distribution Channels

वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के तीन तरीके काम में लाये जाते हैं–

(i) प्रत्यक्ष वितरण माध्यम (Types of Distribution Channels)

(ii) अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम (Indirect Distribution Channels)

(iii) दोहर वितरण माध्यम (Dual Distribution Channels)

I. प्रत्यक्ष वितरण माध्यम

(Direct Distribution Channel)

वितरण की यह वह प्रणाली है जिसमें निर्माता अपनी वस्तुओं को अपनी ही दुकानों या शाखाओं या प्रतिनिधियों, आदि के माध्यम से सीधा ही उपभोक्ता तक पहुँचाता है। इस प्रणाली के माध्यम से वस्तुएँ पहुँचाने के पाँच साधन हैं–

(i) स्वयं की दुकानें, (ii) स्वयं के विक्रयकर्त्ता, (iii) डाक द्वारा आदेश, (iv) टेलीफोन, (v) विक्रय मशीन

1. **स्वयं की दुकानें** – इसमें निर्माता अपनी स्वयं की फुटकर दुकानें भिन्न–भिन्न स्थानों पर खोलता है जहाँ उसकी वस्तुओं की बिक्री की जाती है। भारत में जय इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड कलकत्ता द्वारा निर्मित उषा पंखे व उषा सिलाई की मशीनें इसी कंपनी की फुटकर दुकानों के द्वारा बेचे जाते हैं। बाटा इंडिया लिमिटेड कलकत्ता द्वारा निर्मित जूते एवं चप्पल उसी की फुटकर दुकानें बेचती हैं। हाल ही में कुछ कपड़ा बनाने वाली मिलों द्वारा भी इस पद्धति को अपनाया गया है और उन्होंने अपनी दुकानें बड़े–बड़े शहरों में खोल दी है जैसे कैलिको मिल्स की दुकानें, टाटा ग्रुप के मिलों की दुकानें, मफतलाल ग्रुप के मिलों की दुकानें आदि। इस प्रकार की दुकानें दो प्रकार की होती हैं–

(अ) **स्वयं के प्रद□ान गृह या दुकानें** – इस प्रकार के प्रदर्शन गृह या दुकानें निर्माता मुख्य–मुख्य शहरों व स्थानों पर खोल देते हैं। यह गृह या दुकानें काफी बड़े एवं आकर्षक रूप से सजी रहती हैं तथा इन दुकानों अथवा गृहों के बाहर संस्था का नाम बहुत ही बड़े अक्षरों में लिखा रहता है साथ ही बड़ी–बड़ी कांच की अलमारियों में वस्तुएँ बहुत ही अच्छे ढ़ंग से सजी हुई प्रदर्शित की जाती हैं। इन दुकानों पर निर्माता का ही माल बिकता है तथा विक्रयकर्ता भी निर्माता के ही वेतनभोगी कर्मचारी होते हैं। इन दुकानों व प्रदर्शन गृहों पर निर्धारित मूल्य ही लिया जाता है तथा उसके द्वारा निर्धारित नीतियों का ही अनुसरण किया जाता है।

(ब) **विक्रय भाखाएँ या श्रृंखला भण्डार** – इसमें एक ही स्वामित्व के अधिकार में है और एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत एक ही प्रकार का माल कई भण्डार बेचते हैं। इन भण्डारों का स्वामित्व साधारणतया निर्माता के पास होता है। इन भण्डारों की खरीदारी, विज्ञापन, कार्यविधि, भण्डारों का डिजाइन व कर्मचारियों से संबंधित केन्द्रीत संगठन के हाथों में होती है। बिक्री का माल भी केन्द्रीय भण्डारों से ही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उप–भण्डारों को पहुँचाया जाता है। भंडारों के प्रबन्ध के लिए केन्द्रीय दफ्तर होता है। जो भंडार बड़े होते हैं व प्रांतीय स्तर पर दफ्तर रखते हैं और प्रधान कार्यालय राष्ट्रीय स्तर पर होते हैं।

2. **स्वयं के विक्रयकर्त्ता** – इस प्रकार की विक्रय वस्तु में वस्तु के निर्माता द्वारा विक्रयकर्त्ताओं की नियुक्ति की जाती है। ये विक्रयकर्त्ता समय–समय पर संभावित ग्राहकों से संपर्क स्थापित करते हैं और उनको ग्राहक बना लेते हैं। यदि वस्तु छोटी है या उपयोग योग्य वस्तु है तो विक्रयकर्त्ता उसको अपने साथ एक गाड़ी में उचित प्रकार से रखकर संभावित ग्राहकों के यहाँ जाकर रूकता है, माल बेचता है और तुरंत भुगतान ले लेता है। इस प्रणाली को घर–घर में विक्रय भी कहते हैं। इस प्रकार के उदाहरण में चाय कंपनियों व साबुन कंपनियाँ आती हैं। यदि माल औद्योगिक है, जैसे मशीनें, वाटरकूलर, टाइपराइटर आदि तो विक्रयकर्त्ता माल का आदेश लेकर कंपनी को भेज देता है और कंपनी माल भेजने की व्यवस्था करती है। आजकल इस प्रथा का चलन काफी जोरों पर है।

3. **डाक द्वारा आदे□ा** – डाक द्वारा भी एक निर्माता अपनी वस्तुओं को बेच सकता है। इसमें डाक से ही आदेश आते हैं और इन आदेशों की पूर्ति भी डाक के माध्यम से ही होती है। वस्तु के मूल्य का भुगतान भी डाक द्वारा ही मिलता है। अतः इस प्रकार की संस्थाओं को डाक आदेश गृह कहते है।

इस तरीके में विज्ञापन का काफी महत्व है। प्रत्येक विक्रेता सूचीपत्रों, समाचार पत्रों एवं विज्ञापन आदि के माध्यम से ग्राहक को माल का परिचय कराता है। ग्राहक द्वारा उस माल के लिए डाक द्वारा आदेश दिया जाता है। विक्रेता के पास जब यह आदेश पहुँचता है तो वह माल को ठीक प्रकार से पैक कर डाकखाने के माध्यम से वी.पी.पी. (Value Payable Post) से भेज देता है। जब वह वस्तु आदेश देने वाले के पास पहुँचती है तो वह उसको ले लेता है और उस पर लिखे मूल्य का भुगतान डाकखाने को कर देता है। बिना मूल्य का भुगतान किये डाकखाना वस्तु की सुपुर्दगी आदेश देने वाले को नहीं करता है। इस मूल्य का भुगतान डाकखाना माल भेजने वाले को कर देता है। विज्ञापन ही इस प्रकार के व्यापार का आधार है।

4. **टेलीफोन द्वारा** – टेलीफोन से भी बिक्री की जा सकती है। विदेशों में यह पद्धति काफी प्रचलित है। इसमें क्रेता, विक्रेता को टेलीफोन पर आदेश दे देता है। विक्रेता उस माल की पूर्ति उनके घर पर कर देता है। भारत में भी टेलीफोन द्वारा इस प्रकार की सेवा बड़े–बड़े शहरों में विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं को पहुँचाने जैसे आटा थैली घर पहुँचाने के रूप में शुरू हो चुकी है। वर्तमान समय में बड़े शहरों के क्रेता, विक्रेता को टेलीफोन पर आदेश दे देता है और विक्रेता का प्रतिनिधि वस्तुओं की सुपुर्दगी क्रेता के घर पर कर आता है इसको Free home delivery भी कहते हैं।

5. **विक्रय म□ीन द्वारा** – पश्चिमी देशों में स्वचालित मशीनों से भी बिक्री की जाती है। यह मशीने जगह–जगह लगती रहती हैं तथा इनमें माल अंदर भरा रहता है, इन मशीनों में एक छेद होता है जिसमें आवश्यक सिक्के डालकर वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं। ये मशीनें उसी प्रकार की होती हैं जिस प्रकार की आजकल वजन लेने वाली मशीनें भारत में रेल्वे स्टेशनों पर लगी हैं जिसमें एक रूपये का सिक्का डालने पर उस मशीन पर खड़े व्यक्ति का वजन एक टिकट पर लिखकर आ जाता है। हमारे देश में अभी मशीन द्वारा विक्रय प्रथा का प्रचलन नहीं हुआ है जबकि अमेरिका में ऐसी 60 लाख मशीनें लगी हुई हैं जो 400 बिलियन डॉलर मूल्य की वस्तुओं का विक्रय प्रतिवर्ष करती हैं।

प्रत्यक्ष विक्रय प्रणाली के लाभ (Advantages of Direct Selling)

प्रत्यक्ष विक्रय प्रणाली से निम्न लाभ मिलते हैं–

1. **उपभोक्ताओं को लाभ** – प्रत्यक्ष विक्रय प्रणाली से उपभोक्ता को निम्न लाभ मिलते हैं–

(i) **कम लागत पर वस्तु प्राप्त होना** – इस पद्धति से उपभोक्ता को वस्तु सस्ती मिलती है। इसका कारण यह है कि मध्यस्थों के लाभ लेने से वस्तु का जो मूल्य बढ़ता है वह मध्यस्थों के न होने के कारण नहीं बढ़ पाता और इस प्रकार उपभोक्ताओं को कम लागत पर वस्तु मिल जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) **वस्तु का मूल रूप से मिल जाना** – इस प्रणाली के अंतर्गत वस्तु जिस रूप रंग, आकार, प्रकार की निर्माता द्वारा बनाई जाती है उसी मूल रूप में उपभोक्ता को प्राप्त होती है। बीच में उसमें मिलावट व बदलने का अवसर नहीं होता।

(iii) **निर्धारित मूल्य पर वस्तु प्राप्त होना** – निर्माता सीधी बिक्री में वस्तुओं का मूल्य निर्धारित कर देता है और उपभोक्ताओं को वही मूल्य वस्तु खरीदते समय चुकाना पड़ता है। इस प्रकार उपभोक्ताओं को निर्धारित मूल्य पर वस्तु मिल जाती है और मोल भाव नहीं करना पड़ता है। कभी–कभी निर्माता अपनी वस्तुओं पर कुछ समय के भीतर खरीदने पर छूट देता है जैसे त्योहार के अवसर पर 10 प्रतिशत की छूट।

(iv) **सेवाओं की उचित व्यवस्था** – इस प्रणाली से विक्रय करने पर उपभोक्ताओं को निर्माता द्वारा दी गई सभी सेवाएँ उपलब्ध हो जाती है जैसे विक्रय के बाद सेवा। यही नहीं, उपभोक्ता की शिकायतों पर तुरंत व क्षमतापूर्वक ध्यान दिया जाता है।

2. निर्माता को लाभ – प्रत्यक्ष प्रणाली से निर्माता को निम्न लाभ मिलते हैं–

(i) **मूल्य नियंत्रण संभव** – निर्माता अपनी वस्तुओं के सम्बन्ध में अपनी इच्छानुसार मूल्य निर्धारित कर सकता है और यदि बिक्री बढ़ाने के लिए किसी विक्रय प्रवर्द्धन नीति के अपनाने की आवश्यकता है तो वह उसको भी अपना सकता है।

(ii) **बाजार का ज्ञान** – इस प्रणाली में निर्माता और उपभोक्ता का सीधा संपर्क होने से निर्माता को बाजार की माँग, उपभोक्ता की रूचि में परिवर्तन, फैशन में परिवर्तन आदि का पता लगता रहता है, जिससे उत्पादन को उसी के अनुरूप बनाकर अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है।

(iii) **बचत** – निर्माताओं को ग्राहकों को सीधा माल बेचने में हर क्षेत्र में बचत होती है जिससे उनको अधिक लाभ कमाने का अवसर मिल जाता है और उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुएँ मिल जाती है।

प्रत्यक्ष विक्रय प्रणाली के दोश (Disadvantages of Direct Selling)

(अ) **उपभोक्ताओं के दृश्टिकोण से दोश**

इस प्रणाली द्वारा विक्रय होने पर–

(i) उपभोक्ताओं को वस्तुओं में तुलना करने का अवसर नहीं मिलता है।

(ii) उसको निर्माता द्वारा निर्धारित मूल्य देना पड़ता है और मोलभाव का अवसर नहीं मिलता।

(iii) उपभोक्ताओं को एक बार क्रय की गयी वस्तु के पसंद आने पर बदलने की सुविधा नहीं मिलती।

(ब) **निर्माता के दृश्टिकोण से दोश**

(i) निर्माता के लिए यह प्रणाली अधिक खर्चीली है तथा इसके अपनाने से अधिक पूँजी व्यय की आवश्यकता है।

(ii) वृहत उत्पादन एवं विक्रय संगठन को नियोजित करने में कठिनाई रहती है।

(iii) स्थायी खर्चे जैसे कर्मचारियों का वेतन, दुकान का किराया, बिजली का व्यय आदि से काफी वृद्धि हो जाती है जिसमें विक्रय कम होने की दशा में कटौती करना संभव नहीं होता।

(iv) इसमें सभी जोखिम व हानि निर्माता को ही सहन करनी पड़ती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

II. अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम

(Indirect Distribution Channel)

अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली से तात्पर्य, वस्तुओं व सेवाओं को मध्यस्थों के माध्यम से उपभोक्ता तक पहुँचाने से हैं जो संस्थाएँ इस अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली में मध्यस्थ के रूप में कार्य करती हैं उन्हें अप्रत्यक्ष विक्रय एजेन्सियाँ कहते हैं। यह एजेन्सियाँ तीन प्रकार की होती हैं– (1) प्रतिनिधि (2) थोक विक्रेता (3) फुटकर विक्रेता।

वस्तुओं के अप्रत्यक्ष वितरण में यह अनिवार्य है कि सभी मध्यस्थों की सेवाओं को काम में लाया जाए। यह भी सम्भव है कि प्रतिनिधि द्वारा सीधी ही उपभोक्ता को बेच दी जाए। ऐसी स्थिति में बीच के मध्यस्थ, थोक विक्रेता व फुटकर विक्रेता– काम में नहीं आएँगें। इसी प्रकार निर्माता फुटकर विक्रेता को सीधे ही वस्तुओं को बेच सकता है। ऐसी स्थिति में प्रतिनिधि व थोक विक्रेता की सेवाओं का लाभ नहीं उठाया जाएगा।

अप्रत्यक्ष वितरण–प्रणाली के लाभ (Advantages of Indirect Sale)

(अ) उपभोक्ताओं को लाभ

(i) इन प्रणाली से विक्रय करने से उपभोक्ताओं को वस्तु का चयन करने में सुविधा रहती है क्योंकि मध्यस्थों के यहाँ निर्माताओं की वस्तुएँ होती हैं।

(ii) विभिन्न निर्माताओं की वस्तुओं की तुलना भी की जा सकती है।

(iii) विभिन्न वस्तुओं के देखने से उपभोक्ताओं को वस्तुओं का ज्ञान होता है कि बाजार में किस प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध हैं और उनमें सबसे आधुनिक कौन–सी है।

(ब) निर्माताओं को लाभ

(i) इस प्रणाली में विक्रय करने से निर्माता को बिक्री–व्यवस्था करने से मुक्ति मिल जाती है और वह अपना ध्यान अन्य आवश्यक बातों में लगा सकता है।

(ii) इस ढंग के अपनाने से निर्माता को अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं रहती तथा मध्यस्थों से अग्रिम लेकर पूँजी में वृद्धि की जा सकती है।

(iii) इस तरीके से व्यापार का विस्तार होता है अर्थात् दूर–दूर तक उपभोक्ताओं को वस्तुएँ मध्यस्थों के माध्यम से पहुँचाई जा सकती है।

(iv) इस प्रणाली से संस्था के स्थायी व्यय में वृद्धि नहीं होती और न वृहत विक्रय संगठन बनाने की आवश्यकता रहती है।

अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली के दोश (Disadvantages of Indirect Selling)

(अ) उपभोक्ताओं को दोश

(i) उपभोक्ताओं को वस्तु का अधिक मूल्य देना पड़ता है क्योंकि बीच में जितने मध्यस्थ आते हैं इन सबके द्वारा अपना–अपना लाभ का हिस्सा जोड़ा जाता है जो अंत में वस्तु के विक्रय मूल्य को बढ़ा देता है।

(ii) उपभोक्ता को अधिकांश दशाओं में वस्तु मूल रूप में नहीं मिलती। उसमें मिलावट आदि की संभावनाएँ अधिक हो जाती हैं।

(iii) उत्पादक व उपभोक्ताओं में सीधा संबंध नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि यदि उपभोक्ता वस्तु से संतुष्ट नहीं है तो उसको सीधे शिकायत का मौका नहीं मिलता, उसे मध्यस्थों द्वारा शिकायत करनी होती है। लेकिन ऐसी शिकायतों पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है।

(iv) मध्यस्थों द्वारा उपभोक्ताओं को घटते हुए मूल्यों का लाभ नहीं दिया जाता लेकिन यदि कभी मूल्य बढ़ जाते हैं तो वे तुरन्त विक्रय मूल्य बढ़ा देते हैं।

(ब) निर्माताओं को दोश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) इस प्रणाली के अन्तर्गत निर्माता को उपभोक्ता की रूचि, फैशन एवं प्रतियोगिता का पता नहीं लग पाता और उसको इस कार्य के लिए अलग से बाजार अनुसंधान आदि पर व्यय करना पड़ता है।

(ii) मध्यस्थों के लाभ एवं व्यय वस्तु के विक्रय मूल्य में वृद्धि करते है जिसका परिणाम यह होता है कि वस्तु प्रतियोगिता में पिछड़ जाती है।

(iii) निर्माता माँग का भी उचित अनुपात नहीं लगा पाता क्योंकि उसको मध्य मध्यस्थों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। इससे मध्यस्थों द्वारा निर्माता का शोषण किया जाता है।

III. दोहरा वितरण माध्यम

(Dual Distribution Channel)

जब एक निर्माता प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष वितरण प्रणालियों को अपनाता है तो ऐसी प्रणाली दोहरी वितरण प्रणाली कहलाती है। इस प्रणाली में दोनों के लाभ मिलते हैं। वर्तमान समय में विपणन क्रियाओं के विस्तार के लिए यह प्रणाली बहुत ही उपयोगी है और आजकल प्रत्येक निर्माता के लिए आवश्यक बनती जा रही है। इस प्रणाली को अपनाने का मुख्य उद्देश्य वितरण को व्यापक बनाना है। लेकिन इस प्रणाली को अपनाने में सबसे बड़ी समस्या बाजारों के उचित विभाजन की है। यह तय करना कठिन होता है कि किस स्थान पर प्रत्यक्ष प्रणाली अपनायी जाए व किस पर अप्रत्यक्ष प्रणाली।

ई–कॉमर्स–एक नवीन वितरण–वाहिका (E-Commerce-A New Channel of Distribution)

सूचना प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने व्यावसायिक क्रियाओं में आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने शुरू कर दिये हैं। व्यवसाय का संपूर्ण स्वरूप एवं वस्तुओं–सेवाओं का वितरण–तंत्र तेजी से बदल रहा है। विश्व–विपणन पटल पर एक नयी वितरण–वाहिका का जन्म हो रहा है, जिसे 'ई–कॉमर्स' का नाम दिया जा रहा है। ई–शॉप, ई–मार्केट, इंटरनेट कॉमर्स अथवा इंटरनेट मार्केटिंग इसी नवीन वाहिका के अन्य प्रचलित नाम हैं। विपणन दर्शनिकों का यह मानना है कि जिन व्यवसायों ने अभी तक सूचना प्रौद्योगिकी की लाभों को प्राप्त नहीं किया है, वे पिछड़ रहे हैं। 'ई–कॉमर्स' एक ऐसी ही नूतन विचारधारा है जो व्यवसाय–प्रबन्धकों को व्यापक दृष्टिकोण विकसित करने और बदलती स्थिति समझने में सहायता करेगी कि व्यवसाय के नियमों का पुनर्निर्धारण और उनकी पुनपरिभाषा प्रौद्योगिकी करेगी। व्यवसाय का विकास–विस्तार अब कठिन कार्य नहीं रहेगा तथा व्यावसायिक व्यवहार कुछ ही मिनटों में पूर्ण किए जा सकेंगे। विपणन की दृष्टि से संपूर्ण विश्व अब एक बाजार हो गया है और किसी भी देश का कोई भी निर्माता अथवा वितरक किसी भी देश के उपभोक्ता अथवा ग्राहक को अपनी वस्तुएँ एवं सेवाएँ बेच सकता है। विपणन की दृष्टि से राष्ट्रीय सीमाएँ समाप्त हो जाएँगी। विपणन क्षेत्र में यह एक आश्चर्यजनक एवं क्रांतिकारी कदम है।

'ई–कॉमर्स' क्या है? (What is E-Commerce?)

'ई–कॉमर्स' वस्तुतः एक वैश्विक, सृजनात्मक एवं प्रत्यक्ष वाहिका की स्थापना है ताकि प्रत्येक उस क्रेता के लिए वस्तुएँ–सेवाएँ उपलब्ध की जा सकें जो इस विचार एवं व्यवस्था को अपना कर क्रय करना चाहता है। अन्य शब्दों में, ई–कॉमर्स यह बाजार स्थान अथवा वितरण तंत्र है, जहाँ विपणनकर्त्ता सूचना प्रौद्योगिकी तथा नेटवर्क कंप्यूटिंग के जरिये व्यावसायिक संबंधों अथवा विक्रयण का सुरक्षित रूपांतरण करता है। 'ई–कॉमर्स' प्रणाली इंटरनेट्स एवं इंट्रानेट्स का मिश्रित स्वरूप है, जिसे ई–मेल सुविधा के विस्तार के रूप में भी समझा जा सकता है।

'ई–कॉमर्स' जैसी आकर्षक प्रणाली में विपणनकर्ता कंपनियाँ, फर्में अथवा व्यक्ति उपलब्ध उत्पादों–सेवाओं की सूचियाँ और आदेश प्रारूप इन्टरनेट (internet) पर रखते हैं तथा ग्राहकों को उन्हें भेजना होता है। इसमें मौद्रिक हस्तांतरण नहीं होता है। केवल सूचनाओं एवं प्रमापित व्यावसायिक प्रलेखों, जैसे–क्रयादेश, सुपुर्दगी समय–सारिणी, भाव–उद्धरण, बीजक अथवा बिल आदि का इलेक्ट्रॉनिक विनिमय होता है, जिनका प्रविधियन विपणनकर्त्ता और ग्राहक अपने–अपने गंतव्यों पर कर लेते हैं। सूचनाओं तथा प्रलेखों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विनिमय की इस प्रणाली को 'इलेक्ट्रानिक डेटा इंटरचेज (EDI) कहते हैं। इस इलेक्ट्रॉनिक कड़ी के कारण कागजों पर आधारित प्रणाली को अपनाने की आवश्यकता नहीं रहती है। ई–कॉमर्स प्रणाली को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि किसी ग्राहक को टी.वी. खरीदना है तो वह आदेश प्रारूप उसके क्रेडिट कार्ड (Credit Card) के नम्बर इम्प्रिंट पर भरेगा और संबद्ध विपणनकर्त्ता को एनक्रिप्टेड फोरमेट (Encrypted Format) में प्रेषित करेगा तथा विपणनकर्त्ता आदेश की प्राप्ति कर उसे पुनः डिक्रिप्ट (Decrypt) कर आदेश की मात्रा एवं मूल्य को ध्यान में रखते हुए आदेशकर्त्ता के बैंक खाते की पुष्टि करेगा। बैंक ग्राहक के खाते की सूचना उपलब्ध कराएगा। ग्राहक के खाते से धन विपणनकर्त्ता के खाते में हस्तांरित हो जाने ग्राहक को टी.वी. कूरिअर अथवा अन्य किसी माध्यम से भिजवा दी जाएगी। यह सारा कार्य अर्थात् सूचनाओं एवं प्रलेखों का इलेक्ट्रॉनिक विनिमय कुछ ही पलों में हो जाता है। वस्तु यदि देश के भीतर के विपणनकर्त्ता को आदेशित की गई है तो कुछ घण्टों के भीतर उपलब्ध करा दी जाती है और यदि किसी विदेशी विपणनकर्त्ता को आदेशित की गई है तो कुछ दिनों में उपलब्ध करा दी जाती है।

'ई–कॉमर्स' हेतु आधारभूत अवस्थापना सुविधाएँ (Basic Infrastructure Facilities for E-Commerce)

ई–कॉमर्स प्रणाली के उपयोग हेतु किसी भी देश अथवा समाज में तीन प्रमुख अवस्थापना सुविधाओं का मौजूद होना जरूरी है– प्रथम, इंटरनेट पहुँच प्रणाली, द्वितीय, सुदृढ़ क्रेडिट कार्ड व्यवस्था और तृतीय, कुशल एवं द्रुत सुपुर्दगी व्यवस्था। प्रथम अवस्थापना सुविधा टेलीफोन अथवा केबिल आधारित हो सकती है। द्वितीय अवस्थापना सुविधा उन्न बैंकिंग तथा वित्तीय सुविधाओं से संबंध रखती है। तृतीय अवस्थापना सुविधा वस्तुओं के परिवहन तथा सुपुर्दगी से जुड़ी हुई है। कूरिअर्स द्वारा सुपुर्दगी अत्यन्त महँगी होती चले जाने पर नये विकल्पों को विकसित करना होगा। संक्षेप में, ई–कॉमर्स हेतु कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी अथवा संवर्धित नेटवर्क सेवाओं का उपलब्ध होना अत्यावश्यक है।

'ई–कॉमर्स' के प्रकार (Type of E-Commerce)

ई–कॉमर्स का उद्देश्य उत्पादकों अथवा विपणनकर्त्ताओं की दृष्टि से सीधे ग्राहक–संबंधों की स्थापना करना, विपणन लागतों में कमी करना, ग्राहक–बाजार को बढ़ाना तथा श्रेष्ठ ग्राहक सेवाएँ उपलब्ध कराना है, जबकि ग्राहकों और उपभोक्ताओं की दृष्टि में श्रेष्ठ वस्तु की खरीद करना तथा घर बैठे हुए क्रयण करना है ताकि 'स्टॉक नहीं, दुकान बंद (Closing Time) अथवा लंबी दूरी पार करने जैसी समस्याओं से मुक्ति प्राप्त हो सके। ई–कॉमर्स, वस्तुतः एक ऐसी वितरण वाहिका है जो प्रत्यक्ष होते हुए भी अप्रत्यक्ष वाहिकाओं के लाभ भी उपलब्ध कराती है। ई–कॉमर्स के क्षेत्र में निम्नलिखित को प्रमुखतः सम्मिलित किया जा सकता है :

1. **'व्यवसाय से व्यवसाय' ई–कॉमर्स (Business to Business E-Commerce)**– यह ई–कॉमर्स का वह प्रकार है जिसमें एक व्यावसायिक संस्था दूसरी व्यावसायिक संस्था को अथवा फुटकर रूप में माल का विक्रय करती है। इस ई–कॉमर्स का आधार व्यावसायिक संस्थाओं के बीच की सहमति अथवा पारस्परिक समझ होती है। इसे 'इंटरनेट कॉमर्स' अथवा 'इंटरनेट ट्रांजेक्शंस' अथवा इन्टरनेट लेन–देन भी कहा जाता है। कई कंपनियाँ, जैसे– सिटी बैंक, बैंक ऑफ मदुरा, टाटा, आई.बी.एम., ए.वी.सी. इंडिया, टेल्को, भेल, जे. एन. पोर्ट ट्रस्ट, एस्सार, मारूती उद्योग, बजाज ऑटो, ड्यूपोंट, हेन्केल, सैमसंग इलेक्ट्रोनिक्स, इंटेल, टी.वी. एस. इलेक्ट्रोनिक्स आदि इस तरह के ई–कॉमर्स को अपनाए हुए हैं। कई कंपनियाँ बी.टू.बी. (B2B), ई–कॉमर्स के अन्तर्गत अपने पूर्तिकर्त्ताओं तथा वितरकों के साथ सीधे संबंध स्थापित कर रही हैं।

2. **'व्यवसाय से उपभोक्ता' ई–कॉमर्स (Business to Consumer E-Commerce)**– यह ई–कॉमर्स का वह प्रकार है जिसमें व्यावसायिक संस्थाएँ अंतिम उपभोक्ता को सीधे ही वस्तुओं–सेवाओं का विक्रय करती हैं। यह ऑन लाइन शॉपिंग (on line shopping) भी कहलाता है। कई कंपनियाँ इस क्षेत्र में आ चुकी हैं और पुस्तकें, कैसेट्स, फूल, कपड़े, टिकिट्स, होटल आरक्षण, संगीत, सीडीज, उपहार आदि का विपणन कर रहे है। बी टू सी (B 2 C) ई–कॉमर्स सूचना तथा सेवा क्षेत्र में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इन क्षेत्र में लगभग 100 से अधिक साइट्स कार्यरत हैं, रेडिंफ ऑन दी नेट पहली भारतीय वेबसाइट है जिसने ऑन लाइन सौदों में भारतीय क्रेडिट कार्ड को सक्षम बनाया है। ई–कॉमर्स की यह श्रेणी तेजी से प्रगति कर रही है। वैबसाइटस की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **'उपभोक्ता से उपभोक्ता' ई–कॉमर्स (Consumer to Consumer E-Commerce)**– यह ई–कॉमर्स का वह प्रकार है जिसमें उपभोक्ता से उपभोक्ता के बीच होने वाले व्यावसायिक सौदे सम्मिलित होते है। नीलामी साइट्स इसका विकसित होता हुआ उदाहरण है। जब किसी उपभोक्ता को कुछ जमीन जायदाद अथवा वस्तु चाहे वह कार ही क्यों न हो, बेचनी हो तो वह ऐसी संबद्ध वेबसाइट पर अपने द्वारा बेची जाने वाली संपत्ति या वस्तु की जानकारी उपलब्ध करा देता है ताकि जरूरतमंद उपभोक्ता संपर्क पर क्रय सके। डब्ल्यू–डब्ल्यू–डब्ल्यू –ई–बे. कॉम वह बेवसाइट है जो उपभोक्ता से उपभोक्ता के बीच नीलामी क्रय को संभव कर रही है।

4. **ई–गेंवर्नेन्स (E-Governance)**– वह ई–कॉमर्स की वह श्रेणी है जिसमें सरकारें स्वयं, चुस्त, कुशल, लोक कल्याणकारी तथा पारदर्शी बनाने के लिए ई–कॉमर्स प्रणाली की सहायता लेती हैं और ग्राहकों व जनता को सेवाएँ–सुविधाएँ उपलब्ध कराती हैं। इस श्रेणी में 'व्यवसाय से सरकार' को तथा 'सरकार से उपभोक्ताओं' के बीच के व्यावसायिक संबंधों एवं व्यवहारों को सम्मिलित किया जाता है। आयकर तथा संपत्ति विवरणियाँ दाखिल करना, ट्रेड लाइसेंसों का नवीनीकरण कराना–करना, विक्रय प्रलेखों व भू–राजस्व अभिलेखों की जानकारी अथवा प्रतियाँ उपलब्ध कराना–करना, विक्रय प्रलेखों व भू–राजस्व अभिलेखों की जानकारी अथवा प्रतियाँ उपलब्ध करना–कराना, पासपोर्ट, ड्राईविंग लाईसेंसों का जारी किया जाना अथवा कराया जाना, बिलों या बकाया राशि के भुगतानों को प्राप्त करने व शिकायतें सुनने या दर्ज करने संबंधी सेवाएँ आदि इस क्षेत्र में सम्मिलित की जाती हैं। प्रायः आजकल प्रत्येक राज्य सरकार इस ओर सचेत है और इस आधुनिकतम प्रणाली का कुशलता वृद्धि के लिए उपयोग प्रारम्भ कर दिया है।

5. **परियोजना से परियोजना 'ई–कॉमर्स' (Project to Project E-Commerce)**– इस ई–कॉमर्स की श्रेणी में व्यावसायिक एवं पेशेवर संस्थाओं द्वारा विश्व के किसी भी भाग में प्रारम्भ की जाने वाली अथवा संचालित परियोजना में सहायता करने वाली सेवाएँ सम्मिलित की जा सकती है। इस ई–कॉमर्स का लाभ यह है कि सेवाएँ प्रदान करने वाली संस्थाओं को अपने कर्मचारियों को उनके कार्य–स्थल से बाहर कहीं नहीं भेजना पड़ता है। इस श्रेणी के ई–कॉमर्स हेतु इडीआई (EDI), वरचूअल प्राइवेट नेटवर्क (VPN) एवं कम्प्यूटर एडेड डिजायन (CAD) आदि प्रौद्योगिकियों का प्रयोग किया जाता है।

'ई–कॉमर्स' के लाभ (Advantages of E-Commerce)

ई–कॉमर्स परंपरागत व्यवसाय अथवा विपणन/वितरण के तौर–तरीकों की तुलना में व्यावसायिक संस्थाओं तथा उपभोक्ताओं को कई तरह के लाभ उपलब्ध कराता है। उदाहरणार्थ, (1) व्यावसायिक संस्थाओं को रोकड़ प्रवाह सुगमता पूर्वक उपलब्ध हो जाता है, (2) इंवेंटरी तेजी से प्रवाहित होती है और (3) स्टॉक कम रखने पड़ते हैं, (4) मध्यस्थ हट जाते हैं, (5) कागजी कार्यवाही व छुटकारा मिल जाता है, (6) मानव–शक्ति लागतों में कमी होती है, (7) कार्यालय उत्पादकता में वृद्धि होती है, (8) सूचनाओं का पारस्परिक आदान–प्रदान तीव्रतर, परिशुद्ध और कम लागतपूर्ण होने लगता है, (9) शीघ्र आदेश पूर्ति संभव हो जाती है, और (10) ग्राहकीकरण एवं बाजार–विस्तार के कारण दीर्घकाल तक तीव्र प्रतिस्पर्धा का सामना करना संभव हो जाता है।

इसी प्रकार, उपभोक्ताओं को क्रयण से सुविधा प्राप्त होती है, वस्तु/सेवा चयन हेतु विकल्प बढ़ जाते हैं, उत्पाद मूल्यों में कमी होते रहने से उपभोक्ता की क्रय–शक्ति व जीवन स्तर में वृद्धि होती है, उपभोक्ता न केवल सर्वोत्तम वस्तुओं और सेवाओं के संपर्क में आते हैं, बल्कि पुरानी जरूरतों की पूर्ति के नये तौर–तरीकों व उत्पादों के संपर्क में भी आते हैं, बाजार विक्रेता–बाजारों में क्रेता–बाजारों से परिवर्तित होने लगते हैं, और ग्राहक–सेवाओं संतुष्टि के स्तर में आशातीत वृद्धि होती है। ई–कॉमर्स सामाजिक एवं राजनीतिक बाधाओं को तोड़ कर विकासशील एवं विकसित राष्ट्रों को परस्पकर जोड़ता है, जिससे साहस, व्यावसायिक योग्यता, नवाचारात्मक प्रतिभा, तकनीकी ज्ञान तथा वस्तुओं–सेवाओं का आयात–निर्यात बढ़ता है विश्व–शांति एवं मैत्री में वृद्धि होती है। यदि ई–कॉमर्स का सही तकनीक से उपयोग किया जाए तो इससे प्रत्येक पक्ष को लाभ प्राप्त होते हैं।

'ई–कॉमर्स' के दोश (Disadvantages of E-Commerce)

उपर्युक्त अनगिनत लाभों को उपलब्ध कराने वाली ई–कॉमर्स प्रणाली दोषरहित नहीं है। इसके मुख्य दोष हैं– (1) इसमें वस्तुओं–सेवाओं का वैयक्तिक निरीक्षण संभव नहीं है, (2) सौदों में उपयुक्त सुरक्षा एवं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गारंटी का अभाव रहता है, (3) कर–निर्धारण असंभव भले ही नहीं हो, किन्तु कठिनाई पैदा करता है, (4) क्रेडिट कार्ड व्यवस्था की सर्वव्यापकता एवं सर्वग्राहयकता सदैव संदिग्ध रहने वाली है, (5) भारी भरकम अवस्थापना विनियोजन कई देशों के लिए कई सामाजार्थिक व शैक्षणिक कारणों से संभव नहीं है, (6) कम्प्यूटर–जनित सूचनाओं की विश्वसनीयता की सुरक्षा कठिन कार्य है, तथा जन–विश्वास जीतने में यह प्रणाली विफल रहेगी। इतने पर भी यह कहा जा सकता है कि ई–कॉमर्स अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं विपणन में अभूतपूर्व क्रांति लाने वाला सिद्ध होगा तथा छोटे विपणनकर्त्ता भी बड़े विपणनकर्त्ताओं से प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में आ जाएँगे। प्रतिभा और विश्वसनीयता क्रेता–विक्रेता संबंधों की आधारशिला बनेगी। ई–कॉमर्स की सफलता के लिए साक्षर होना महत्वपूर्ण है।

मध्यस्थों के प्रकार

इसमें सम्मिलित मध्यस्थ दो प्रकार होते हैं–

(A) क्रियात्मक मध्यस्थ, एवं

(B) व्यापारिक मध्यस्थ।

इन्हें अग्र रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है –

मध्यस्थ

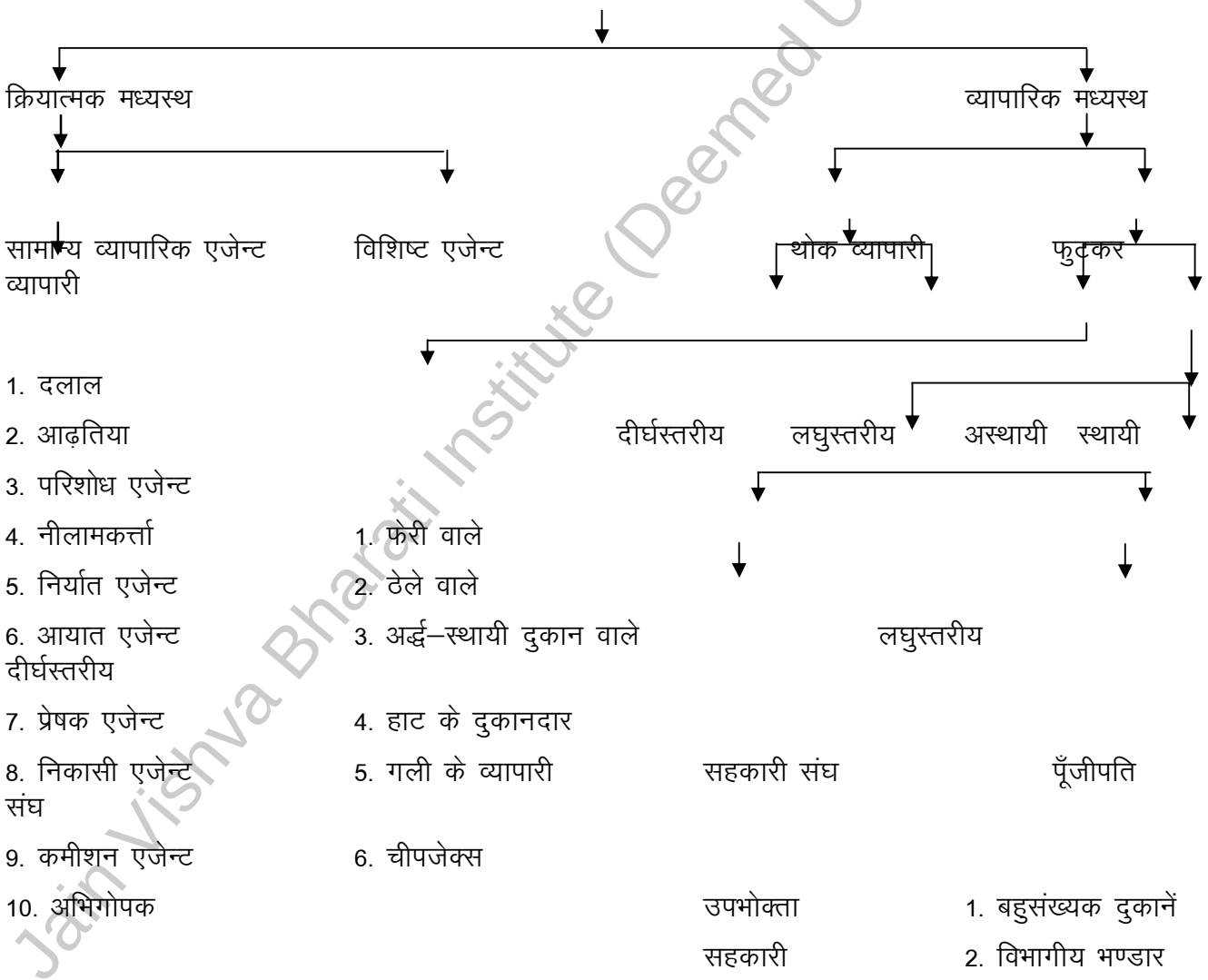

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भण्डार 3. डाक द्वारा व्यापार

4. अन्य संघः

(i) क्रय–विक्रय प्रणाली

(ii) प्रभाग भुगतान

(iii) एक मूल्य की दुकानें

(iv) सुपर बाजार

(v) विक्रय मशीन

उपर्युक्त मध्यस्थों के प्रकार का विवेचन इस प्रकार है–

(I) क्रियात्मक मध्यस्थ (Functional Middlemen)

ऐसे मध्यस्थ जो क्रेता–विक्रेता के मध्य सम्बन्ध स्थापित करते हैं या उनकी ओर से अन्य व्यापारिक कार्य करते हैं, क्रियात्मक मध्यस्थ कहलाते है। इन्हें ''व्यापारिक एजेन्ट'' (Mercantile Agent) भी कहते हैं क्योंकि ये न तो वस्तुएँ अपने अधिकार में लेते हैं और न ही मूल्य परिवर्तन की जोखिम उठाते हैं, बल्कि केवल सौदा तय कराते हैं एवं उसके बदले कमीशन प्राप्त करते हैं। ये व्यक्ति अपने प्रधान या नियोक्ता की ओर कार्य करते हैं।

क्रियात्मक मध्यस्थ या व्यापारिक एजेन्टों के दो प्रकार होते हैं– सामान्य एवं विशिष्ट प्रत्येक का विवेचन अग्रलिखित है–

1. **सामान्य व्यापारिक एजेन्ट**– यह वह एजेन्ट होता है जो अपने नियोक्ता द्वारा सामान्य व्यवसाय करने के लिए नियुक्त किया जाता है। ये मध्यस्थ किसी कार्य विशेष या समय विशेष के लिए न होकर अनिश्चित समय तक कार्य करते रहते हैं। इस प्रकार के एजेन्टों के प्रकार निम्नलिखित हैं–

(i) दलाल– एक ऐसा एजेन्ट जो अपने नियोक्ता के लिए वस्तुओं का क्रय–विक्रय स्वयं नहीं करता है, वरन् माल के इच्छुक क्रेता एवं विक्रेता को खोजकर उनके मध्य व्यापारिक शर्ते निश्चित करा देता है, 'दलाल' कहलाता है। इसके लिए वह क्रेता–विक्रेता दोनों से अलग–अलग कमीशन लेता है जो 'दलाली' कहलाती है। यह प्रतिशत के रूप में होती है। दलाल प्रधान के नाम से ही सौदा करता है एवं उसको माल का अधिकार भी नहीं दिया जाता है वरन् वह स्वामी के पास ही रहता है। यह तो दिये गये निर्देशों के अनुसार कार्य करता है। दोनों पक्षों के बीच सौदा तय हो जाने पर उसका कार्य समाप्त हो जाता है।

(ii) आढ़तिया– यह वह एजेन्ट होता है जिसे माल के विक्रय हेतु नियुक्त किया जाता है और माल का अधिकार या अधिकार–पत्र (जैसे– रेल की बिल्टी, बिल ऑफ लेडिंग आदि) दे दिये जाते हैं। इसी प्रकार इसे माल को अपने अधिकार में रखने, आवश्यक व्यय चुकाने, उसे विक्रय करने, विक्रय राशि वसूल करने तथा न्यायालय में वापस प्रस्तुत करने का अधिकार होता है। यह समय–समय पर 'विक्रय विवरण' बनाकर नियोक्ता/प्रधान को भेजता रहता है। वह अपने नाम से माल की बिक्री करने पर नियोक्ता के कार्यो के लिए उत्तरदायी नहीं होता। आढ़तिये को विक्रय राशि पर निश्चित प्रतिशत की दर से कमीशन मिलता है, जिसे 'आढ़त' कहते है।

आढ़तिये दो प्रकार के होते हैं– (अ) वह एजेन्ट जो किसानों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को मण्डी में लाकर उसके विक्रय में सहायता करता है, 'कच्चा आढ़तिया' कहलाता है और (ब) वह एजेन्ट जो माल बेचने के लिए नियुक्त किया जाता है, जिसे माल अथवा उसके अधिकार–पत्र सौपें जाते हैं, उसे 'पक्का आढ़तिया' कहा जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(iii) परि□ोध एजेन्ट– सामान्य एजेन्ट द्वारा उधार बेचे गये माल की डूबत राशि की हानि नियोक्ता को ही सहन करनी पड़ती है, किन्तु जब नियोक्ता डूबत ऋण की हानि स्वयं वहन करना नहीं चाहता है तब वह परिशोधी एजेन्ट की नियुक्ति करता है। अतः ऐसा एजेन्ट जो विक्रय के साथ–साथ उधार विक्रय की राशि का दायित्व भी स्वीकार करता है तो उसे परिशोध एजेन्ट कहते हैं। उसको अपनी अतिरिक्त जोखिम के लिए नियोक्ता द्वारा साधारण कमीशन के साथ कुछ अतिरिक्त कमीशन दिया जाता है, जिसे 'परिशोधी कमीशन' कहते हैं।

(iv) नीलामकर्त्ता– वह एजेन्ट जिसे नियोक्ता/प्रधान की ओर से वस्तुओं को नीलाम कर बेचने का अधिकार दिया जाता है, 'नीलामकर्त्ता' या 'नीलाम एजेन्ट' कहा जाता है। यह एजेन्ट विज्ञापन द्वारा नीलाम की जाने वाली वस्तु, नीलामी की तिथि, समय एवं तत्सम्बन्धी शर्तो की जानकारी देते हैं। यह एजेन्ट अपने नियोक्ता द्वारा आदेशित शर्तो के अनुसार ही जनता को माल नीलाम करता है। वह वस्तु का अधिकतम मूल्य प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इसलिए माल की सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को बेच दिया जाता है। विक्रय राशि में से कमीशन काटकर शेष राशि अपने नियोक्ता को लौटा देता है।

(v) निर्यात एजेन्ट– निर्यात एजेन्ट वह है जो विदेश में रहने वाले प्रधान से माल का आदेश प्राप्त करता है। आदेश के अनुसार माल को अलग–अलग स्थानों से एकत्र करके उन्हें व्यापारी के पास भेजने का प्रबन्ध करता है। जैसे– आदेशानुसार माल इकट्ठा करना, माल का उचित ढंग से पैकिंग कराना, जहाज तय करना, सीमा शुल्क का भुगतान करना, माल जहाज पर लदवाना, माल सम्बन्धी अधिकार–पत्र अपने प्रधान के पास भेजना आदि। यह माल के खरीदने के लिए प्रधान से पर्याप्त धनराशि एवं माल भेजने के लिए स्पष्ट निर्देश प्राप्त करता है। यह प्रधान द्वारा प्राप्त धनराशि में से माल का क्रय मूल्य, अपने व्यय एवं कमीशन काटकर शेष राशि प्रधान को लौटा देता है।

(vi) आयात एजेन्ट–यह वह एजेन्ट होता है जो अपने प्रधान के लिए विदेशों से माल का आयात करके उन्हें प्रधान तक पहुँचाता है। यह प्रधान से प्राप्त धनराशि में से अपना व्यय एवं कमीशन काटकर शेष राशि प्रधान को वापस लौटा देता है।

(vii) प्रेशक एजेन्ट– जब विदेशों को माल निर्यात किया जाता है तो निर्यातक बन्दरगाह पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करता है जो माल को जहाज पर लदान कर सम्बन्धी सभी कार्यों का आसानी से सम्पादन करता है तो इस प्रकार के एजेन्ट को प्रेषक एजेन्ट कहते हैं। इस प्रकार प्रेषक एजेन्ट ये कार्य करता है– रेल से माल की सुपुर्दगी लेना, निर्यात कर का भुगतान करना, जहाज की व्यवस्था करना, जहाजी किराया तय करना एवं चुकाना, भाड़ा रसीद लो, जहाजी बिल्टी प्राप्त करना, बीमा करवाना, बन्दरगाह का शुल्क चुकाना एवं व्यय तथा कमीशन प्राप्त करना।

(viii) निकासी एजेन्ट– निकासी एजेन्ट वह होता है, जो बन्दरगाह पर आयातित वस्तु की सुपुर्दगी लेने तथा उसे प्रधान तक पहुँचाने हेतु आवश्यक कदम उठाने के लिए नियुक्त किया जाता है। इसे 'माल छुड़ाने वाला एजेन्ट' भी कहते है। निकासी एजेन्ट ये कार्य करता है– प्रवेश बिल भरना, जहाजी कम्पनी से माल छुड़वाना, बन्दरगाह शुल्क का भुगतान करना, आयात कर देना, माल रेल या ट्रक द्वारा प्रधान के पास भेजना, व्यय राशि एवं कमीशन प्राप्त करना। यह प्रधान से प्राप्त राशि में से अपने व्यय तथा कमीशन काटकर शेष राशि प्रधान को लौटा देता है।

(ix) कमी□ान एजेन्ट– कमीशन एजेन्ट आढ़तिये की भाँति होते हैं। ये अपने प्रधान की ओर से माल का विक्रय करते हैं और पारिश्रमिक रूप में निश्चित दर से कमीशन प्राप्त करते हैं।

(x) अभिगोपक– यह वह एजेन्ट होता है जो किसी कम्पनी द्वारा निर्गमित किये जाने वाले अंशों या ऋणपत्रों आदि को बेचने का दायित्व अपने ऊपर लेता है। जब कम्पनी के ये अंश या ऋणपत्र नहीं बिकते हैं तो वह स्वयं उनका क्रय कर लेता है।

(II) व्यापारिक मध्यस्थ (Merchant Middlemen)

व्यापारिक मध्यस्थ का अर्थ उस मध्यस्थ से होता है जो उत्पादक से उपभोक्ता तक माल पहुँचाने में, अपने ही नाम से माल का क्रय–विक्रय करते हैं, यह मूल्य परिवर्तन के फलस्वरूप होने वाली हानि सहन करता है अथवा लाभ प्राप्त करता है तथा अपना पारिश्रमिक प्राप्त करने हेतु मूल्य बढ़ाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्यापारिक मध्यस्थ दो प्रकार के होते हैं– थोक व्यापारी एवं फुटकर व्यापारी।

1. **थोक व्यापारी**– ये वे मध्यस्थ हैं जो उत्पादक से बड़ी मात्रा में माल खरीदते हैं, उसका अपने गोदामों में संग्रह करते हैं एवं फुटकर तथा छोटे व्यापारियों को उनकी आवश्यकतानुसार उचित समय पर थोड़ी–थोड़ी मात्रा में माल नकद या उधार बेचते हैं। इस प्रकार ये निर्माता एवं फुटकर व्यापारी के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करते है।

2. **फुटकर व्यापारी**– फुटकर व्यापारी वे मध्यस्थ होते हैं जो थोड़ी–थोड़ी मात्रा में थोक व्यापारियों से माल खरीदते हैं और उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकतानुसार माल बेचते हैं। ये अपने पास उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की सभी चीजें रखते हैं। ये उत्पादक एवं उपभोक्ता के मध्य एक अन्तिम कड़ी के रूप में कार्य करते हैं।

(i) **लघु स्तरीय फुटकर व्यापारी**– जिन व्यापारियों की बिक्री की मात्रा कम होती है, आर्थिक साधन एवं जोखिम वहन करने की क्षमता सीमित होती है और वस्तुओं का स्टॉक भी कम रहता है, लघु स्तरीय फुटकर व्यापारी कहलाते हैं, जैसे– सड़क के दुकानदार, पुरानी वस्तुओं के व्यापारी, विशेष वस्तुओं की दुकानें, सामान्य दुकानें एवं उचित मूल्य की दुकानें आदि।

(ii) **वृहत् स्तरीय फुटकर व्यापारी**– ये वे व्यापारी हैं जिनके माल की बिक्री की मात्रा अधिक होती है, वस्तुओं का स्टॉक बड़ी मात्रा में रखते हैं एवं वित्तीय साधन तथा जोखिम क्षमता अधिक होती है, उदाहरणार्थ– उपभोक्ता सहकारी संघ, बहुसंख्यक दुकानें, विभागीय भण्डार, डाक द्वारा व्यापार एवं अन्य संघ आदि।

वितरण वाहिका के चयन को प्रभावित करने वाले घटक

Factors Affecting Choice of Distribution Channel

माल के विक्रय के लिए वितरण–माध्यम/व्यवस्था आवश्यक है। इस उद्देश्य से उत्पादक को एक उपयुक्त वितरण–माध्यम का चयन करना पड़ता है। सबसे उपयुक्त माध्यम वह होता है जो मितव्ययी हो तथा जिससे उपभोक्ता को वस्तु प्राप्त करने में सबसे कम कठिनाई हो। अतः प्रत्येक उत्पादक/निर्माता के लिए वितरण के एक या अधिक माध्यमों का चयन महत्वपूर्ण होता है।

वितरण–माध्यम के चयन को प्रभावित करने वाले घटक निम्नलिखित हैं–

(I) ग्राहक या बाजार सम्बन्धी घटक

(II) उत्पाद या वस्तु सम्बन्धी घटक

(III) संस्था सम्बन्धी घटक

(IV) मध्यस्थ सम्बन्धी घटक

(V) वातावरण सम्बन्धी घटक

प्रत्येक घटक का विवेचन इस प्रकार है–

(I) ग्राहक या बाजार सम्बन्धी घटक–

1. **क्रेता की प्रकृति** – वितरण–माध्यम का चयन करते समय उत्पादक/निर्माता सर्वप्रथम यह देखता है कि उसकी वस्तु के ग्राहक उपभोक्ता है या औद्योगिक? उपभोक्ता ग्राहक की दशा में फुटकर व्यापारी की सेवाएँ ली जानी आवश्यक है, जबकि औद्योगिक ग्राहक होने पर वस्तु सीधे एजेन्ट या थोक व्यापारी के माध्यम से बेची जा सकती है।

2. **आदे□ा की मात्रा** –उत्पादित वस्तु के आदेश किस मात्रा में प्राप्त होते हैं, इससे वितरण–माध्यम का चयन होता है। यदि प्राप्त आदेशों की मात्रा/संख्या तो कम है, किन्तु उनकी राशि बड़ी होती है तो उनकी पूर्ति सीधे उत्पादक द्वारा की जाती है अथवा न्यूनतम मध्यस्थों वाली प्रणाली का चयन किया जाता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। इसके विपरीत आदेशों की संख्या अधिक, किन्तु उनकी राशि कम होने पर थोक एवं फुटकर व्यापारियों की सेवाएँ ली जा सकती है।

3. **क्रेताओं की संख्या** – यदि वस्तु के क्रेताओं/ग्राहकों की संख्या अत्यधिक है तो मध्यस्थों की आवश्यकता ज्यादा होती है। इसके विपरीत क्रेताओं की संख्या कम होने पर उत्पादक उपभोक्ता से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। इसी प्रकार यदि वस्तु विभिन्न उद्योगों तथा प्रत्येक उद्योग में अनेक फर्मो को विक्रय करती है तो भी अधिक मध्यस्थों की आवश्यकता होती है।

4. **क्रय की बारम्बारता**–यदि वस्तुएँ दैनिक उपयोग की हैं और बार–बार क्रय की जाती हैं, जैसे– घरेलू उपयोग का सामान, पेट्रोल, डीजल एवं कपड़ा आदि तो अधिक मध्यस्थों की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत ऐसी वस्तुएँ जो यदा–कदा क्रय की जाती हैं, जैसे– टी.वी., फ्रिज, कम्प्यूटर, सजावट के सामान एवं विलासिता की वस्तुएँ आदि तो इनका प्रत्यक्ष विक्रय भी सम्भव है।

5. **ग्राहकों की क्रय आदतें** – ग्राहकों की क्रय सम्बन्धी विशिष्ट आदतें भी वितरण माध्यम के चयन को प्रभावित करती हैं, जैसे– साख–सुविधा की इच्छा, एक ही स्थान पर समस्त क्रय की सुविधा की इच्छा, व्यक्तिगत विक्रेताओं की सेवाओं की इच्छा आदि। यदि एक वस्तु के ग्राहक साख–सुविधा चाहते हैं तो निर्माता यह देखेगा कि क्या वह स्वयं यह सुविधा देने की स्थिति में है? यदि नहीं तो वह ऐसे मध्यस्थों की सहायता लेगा जो ग्राहकों की साख की सुविधा प्रदान करने को तैयार है।

6. **बाजार का भौगोलिक क्षेत्र**– यदि बाजार का भौगोलिक क्षेत्र छोटा है तो उत्पादक द्वारा ग्राहकों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना अधिक उपयुक्त रहता है। यदि क्षेत्र राष्ट्र तक सीधा विस्तृत है तो मध्यस्थों की सहायता लेना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त ऐसे स्थान जहाँ ग्राहकों का घनत्व अधिक होता है तो उत्पादक द्वारा शाखाएँ एवं विक्रय डिपो स्थापित किये जा सकते हैं। ऐसे स्थानों के लिए, जहाँ ग्राहक कम होते हैं, मध्यस्थों की सहायता ली जाती है।

7. **ग्राहकों का केन्द्रीयकरण**–जब किसी वस्तु के ग्राहक निश्चित क्षेत्र में ही केन्द्रित होते हैं तो प्रत्यक्ष विक्रय किया जा सकता है। इसके विपरीत जब ग्राहक विभिन्न क्षेत्रों फैले होते हैं तो अप्रत्यक्ष प्रणाली को अपनाना होता है।

8. **क्रय–व्यवहार**– वितरण–माध्यम का चयन ग्राहकों की रूचियाँ, क्रय आदतें एवं क्रय व्यवहार भी प्रभावित करता है। यदि ग्राहक थोड़ी मात्रा में माल खरीदते हैं, साख–सुविधा चाहते हैं एवं विक्रय–पश्चात् सेवा चाहते हैं तो अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली उपयुक्त रहती है, अन्यथा प्रत्यक्ष वितरण प्रणाली ही ठीक रहती है।

(II) उत्पाद या वस्तु सम्बन्धी घटक –

1. **वस्तु की प्रकृति** – वस्तुओं की प्रकृति नाशवान, टिकाऊ एवं तकनीकी आदि होती है। ये भी वितरण–माध्यमों के चयन को प्रभावित करती है। जिन वस्तुओं की प्रकृति नाशवान होती है, उनके लिए मध्यस्थों की संख्या अधिक रखी जाती है, जबकि अधिक समय तक टिकने वाली वस्तुओं के विक्रय हेतु कम मध्यस्थों की सेवाएँ ली जाती हैं। इसी प्रकार वस्तुएँ जितनी अधिक तकनीकी होती है, उतने ही मध्यस्थों की संख्या कम होती है।

2. **प्रतिस्पर्द्धी वस्तुओं की वितरण प्रणाली** – एक उत्पादक को अपनी वस्तुओं के वितरण, माध्यम का चयन या निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिस्पर्द्धी उत्पादकों द्वारा उसी प्रकार की वस्तुओं का वितरण किस प्रकार किया जा रहा है और वह वितरण का माध्यम कितना सफल रहा है।

3. **वस्तु का आकार एवं भार**– यदि वस्तु का आकार बड़ा तथा भार अधिक होता है तो उसके बार–बार हस्तान्तरण से बचने के लिए उत्पादक प्रत्यक्ष उपभोक्ता से सम्बन्ध स्थापित करता है। इसका कारण यह है कि भार वाली वस्तुओं का भाड़ा कुल लागत में विशेष महत्व रखता है, जैसे– कोयला, पत्थर, लोहा एवं बजरी आदि। इसके विपरीत छोटे आकार वाली हल्की वस्तुओं का वितरण मध्यस्थों के माध्यम से किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **निर्मित वस्तुओं की संख्या** – जब निर्माता एक या दो वस्तुओं का निर्माण करता है, वह स्वयं अपनी वितरण व्यवस्था संगठित कर सकता है। इसके विपरीत अनेक प्रकार की वस्तुओं का निर्माण किया जाता है तो वितरण कार्य में मध्यस्थों की सेवाएँ ली जाती हैं।

5. **वस्तु का मूल्य** – क्रय मूल्य वाली वस्तुएँ एवं बार–बार खरीदी जाने वाली वस्तुओं के लिए अधिक मध्यस्थों की सेवाएँ ली जाती है। इसके विपरीत अधिक मूल्य वाली वस्तुओं का विक्रेता सीधे अथवा अपने एजेन्ट के माध्यम से बेच सकता है, जेसे– मोटरकार, फ्रिज, वाशिंग मशीन एवं मोटर साइकिल आदि।

6. **उत्पाद की तकनीकी प्रकृति**– यदि उत्पाद तकनीकी प्रकृति का है और विक्रय से पहले एवं बाद में ग्राहकों को कुछ सेवाएँ देनी आवश्यक है तो उत्पाद का वितरण प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसके लिए निर्माता कुछ विक्रेताओं की नियुक्ति कर लेते हैं जो ग्राहकों को उत्पाद की तकनीकी बातों को समझाते हैं, विक्रय पश्चात सेवा देते हैं।

7. **वस्तुओं की स्टाइल एवं फै□ान**– वितरण–माध्यम के चयन को वस्तुओं की स्टाइल एवं फैशन भी प्रभावित करती है। यदि वस्तुओं का फैशन जल्दी–जल्दी बदलता है, उनका विक्रय सीधे निर्माता या उसके एजेन्ट द्वारा किया जाए। परिणामतः ग्राहकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो सके और परिवर्तन का आभास होते ही वस्तु के आकार–प्रकार में वांछित सुधार किया जा सके, जेसे– रेडिमेड वस्त्र, साड़ियाँ, मोबाइल एवं कम्प्यूटर आदि।

8. **प्रमापीकरण**– अप्रमापित वस्तुएँ छोटे माध्यमों से वितरित की जाती हैं क्योंकि इसमें उत्पादक एवं उपभोक्ता का प्रत्यक्ष सम्पर्क रहता है। इसके विपरीत अप्रमाणित वस्तुएँ, जैसे– मशीनें, यंत्र एवं औजार आदि का विक्रय थोक व्यापारियों के माध्यम से ही किया जाता है।

9. **उत्पाद नियोजन**– वितरण–माध्यम उत्पाद नियोजन के आधार पर भी निर्धारित किया जाता है। उत्पाद के पैकिंग, उत्पाद सरलीकरण, उत्पाद विविधिकरण, उत्पाद विलोपन, उत्पाद जीवन–चक्र अवस्था तथा नियोजित अप्रचलन भी वितरण–माध्यम को निश्चित रूप से प्रभावित करती है।

10. **विक्रय–प□चात सेवा** – ऐसी वस्तुएँ जिनकी बिक्री के पश्चात् नियमित सेवा (देखभाल, तकनीकी खराबी एवं मरम्मत) आवश्यक होती है, प्रत्यक्ष वितरण उपयोगी होता है, जैसे– कम्प्यूटर, मोटरकार एवं बिजली के सामान आदि।

(III) संस्था सम्बन्धी घटक –

1. **वित्तीय साधन** – निर्माणी संस्था के वित्तीय साधन कम होने पर मध्यस्थों की सेवा का लाभ उठाया जाता है, अन्यथा संस्था अपनी प्रत्यक्ष वितरण प्रणाली को विकसित करती है।

2. **सुविधाएँ**– वितरण–माध्यम चयन को निर्माणी संस्था द्वारा दी जाने वाली सुविधाएँ भी प्रभावित करती हैं। इसलिए यह देखना होता है कि संस्थाओं को कितनी व्यापारिक सुविधाएँ किस सीमा तक प्रदान कर सकती है। यदि वह ऐसी सुविधाएँ कम मात्रा में उपलब्ध करा सकती है तो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न मध्यस्थों की सेवाएँ ली जा सकती है।

3. **संस्था की ख्याति** – जिस संस्था की ख्याति अच्छी होती है, उसकी वस्तुएँ अपने–आप लोकप्रिय हो जाती हैं। ऐसी दशा में निर्माता अपनी इच्छानुसार वितरण–माध्यम का चयन कर सकता है। इसके विपरीत कम ख्याति वाली संस्थाओं को अधिक मध्यस्थों की सेवाएँ लेनी पड़ सकती है।

4. **एकाधिकारी इच्छा** – जब संस्था के स्वामी वितरण व्यवस्था पर स्वयं अपना एकाधिकार एवं नियन्त्रण चाहते हैं तो वे प्रत्यक्ष वितरण व्यवस्था को अपनाते हैं। इसके विपरीत मध्यस्थों का सहारा लिया जाता है।

5. **उद्योग की परम्परा** – यदि अन्य निर्माता स्वयं के एजेन्ट नियुक्त करते हैं अथवा एकाकी व्यापारी को माल बेचते हैं तो उन्हें भी उनका अनुसरण करना पड़ेगा।

6. **अनुभवी एवं योग्य प्रबन्धन** – जिस संस्था का प्रबन्ध योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों द्वारा होता है, वे स्वयं वितरण व्यवस्था संगठित कर उपभोक्ता तक माल पहुँचा सकते हैं। इसके विपरीत, जिन प्रबन्धकों के पास

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बाजार सम्बन्धी ज्ञान कम होता है तथा अनुभव सीमित होता है, उन्हें अधिक संख्या में मध्यस्थों की सहायता लेनी पड़ती है।

7. **माध्यमों पर नियन्त्रण की इच्छा** – यदि एक निर्माता माध्यमों पर नियन्त्रण रखना चाहता है तो यथाशक्ति माध्यम को छोटा रख सकता है चाहे लागत अधिक ही क्यों न आये? लेकिन निर्माता ऐसा तभी करता है, जबकि वह सोचता है कि माध्यम पर नियन्त्रण रखकर उत्पाद को आक्रामक संवर्द्धन प्रदान किया जा सकता है अथवा फुटकर मूल्यों पर अधिक अच्छा नियन्त्रण रखा जा सकता है।

8. **उत्पादन पैमाना** – बड़े–बड़े उत्पादक जो एक ही प्रकार की भिन्न–भिन्न वस्तुओं का उत्पादन बड़ी मात्रा में करते हैं, वे विक्रेताओं की एक बड़ी टोली भी नियुक्त कर सकते हैं। लेकिन कम मात्रा में उत्पादन करने वाले निर्माता अपनी वस्तु को थोक एवं फुटकर व्यापारियों के माध्यम से ही बेचते हैं।

(IV) मध्यस्थ सम्बन्धी घटक –

1. **वितरण लागत** – वितरण लागत में वृद्धि मूल्य का कारण बनती है। अतः वितरण लागत पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है। अतः मध्यस्थों को नियुक्त करने के पूर्व वितरण लागत में होने वाली वृद्धि का समुचित मूल्यांकन कर लिया जाना चाहिए।

2. **उपलब्धता** – एक निर्माता को जिस प्रकार के मध्यस्थों की आवश्यकता होती है, उसे उसी प्रकार के मध्यस्थ मिलने चाहिए। जैसे– यदि एक निर्माता एकमात्र वितरक (Exclusive Dealer) चाहता है और उसको ऐसे मध्यस्थ नहीं मिलते हैं तो उसको अपने वितरण माध्यम में आवश्यक परिवर्तन करना होगा।

3. **विक्रय में वृद्धि** – वितरण–माध्यम का चयन करते समय सम्भावित बिक्री की वृद्धि का प्रतिशत क्या रहेगा, भी ध्यान रखना चाहिए। अतः ऐसे मध्यस्थों का चयन करना चाहिए, जो वितरण लागत की तुलना में पर्याप्त वृद्धि कर सके।

4. **सेवाएँ** – एक उत्पादक/निर्माता को चाहिए कि वह ऐसे मध्यस्थ का चयन करे जो अधिक सेवाएँ दे सकें। यदि किसी नई वस्तु का निर्माण किया जा रहा है तो उसके लिए विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन को अपनाने के लिए किसी प्रतिनिधि का चयन करना चाहिए, न कि मध्यस्थ।

5. **नीतियों का अनुसरण** – नीति अनुसरण भी वितरण माध्यम को प्रभावित करता है। उदाहरण के तौर पर, कभी–कभी मध्यस्थ किसी वस्तु को बेचना चाहता है, लेकिन उसकी यह शर्त होती है कि वस्तु को (निर्माता द्वारा निर्धारित मूल्य से) अधिक मूल्य पर बेचने की अनुमति दे दी जाये। यदि निर्माता निर्धारित मूल्य पर बेचने की अपनी ख्याति बनाना चाहता है तो उसको ऐसे मध्यस्थ मान्य नहीं होंगे।

(V) वातावरण सम्बन्धी घटक –

1. **सरकारी नीतियाँ एवं नियमन** – कुछ वस्तुओं के लिए वितरण माध्यम के चयन में सरकारी नीतियाँ एवं नियम महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे– किसी वस्तु में थोक व्यापार समाप्त करना या राष्ट्रीयकरण करना, सरकार द्वारा वितरण मूल्य निर्धारित करना, वितरण पूर्व सरकारी निरीक्षण, विशिष्ट कर तथा बाजारों पर नियन्त्रण आदि।

2. **आर्थिक द□ायें** – देश की आर्थिक दशायें भी वितरण माध्यम के चयन को प्रभावित करती हैं। यदि देश में मन्दी चल रही है तो प्रत्यक्ष वितरण प्रणाली उपयुक्त होती है, जबकि तेजी की दशा में मध्यस्थों का चुनाव करना लाभप्रद होता है। इसका कारण यह है कि उपभोक्ता के पास पर्याप्त क्रय शक्ति होती है एवं वस्तु की माँग बनी रहती है।

थोक व्यापारी Whole Salers

वस्तुओं के वितरण–माध्यम की विभिन्न कड़ियों में से एक कड़ी थोक व्यापारी है जो उत्पादकों एवं फुटकर व्यापारियों के मध्य सम्पर्क स्थापित करती है बल्कि व औद्योगिक उपभोक्ताओं, संस्थाओं तथा उन व्यक्तियों को भी माल बेचते है, जिनका उद्देश्य खरीदे जाने वाले माल का उपयोग अन्य वस्तुएँ बनाने में करना होता है अथवा जिनका वाणिज्यिक उपयोग करना होता हैं।

परिभाशाऐं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **बेकमेन एवं डेविडसन के अनुसार,** ''थोक विक्रय में ऐसे समस्त सौदे सम्मिलित होते हैं, जिनके अन्तर्गत ग्राहक का उद्देश्य पुनर्विक्रय द्वारा लाभ कमाना है अथवा व्यापारिक उपयोग करना है। किन्तु ऐसे सौदे सम्मिलित नहीं होते हैं जिनमें वस्तु का विक्रय बहुत थोड़ी मात्रा में हो अथवा सामान्यतया किसी फुटकर संस्था से खरीदी जावें।

2. **सेन्सस ब्यूरो ऑफ अमेरिका के अनुसार,** ''समस्त व्यापारी प्रतिनिधि एवं संग्रहकर्ता जो एक ओर उत्पादकों तथा दूसरी ओर फुटकर व्यापारियों एवं उपयोगकर्ताओं के बीच मध्यस्थता करते हैं, थोक व्यापारी कहलाते हैं।

3. **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियेशन के अनुसार,** ''थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारियों अथवा अन्य व्यापारियों और/अथवा औद्योगिक, संस्थागत एवं वाणिज्यिक प्रयोक्ताओं को माल बेचते हैं, किन्तु वे अन्तिम उपभोक्ताओं को विशेष मात्रा में माल नहीं बेचते हैं।

उपर्युक्त परिभाशाओं से स्पश्ट है कि ''थोक व्यापारी वह व्यापारी है जिसके ग्राहक पुनर्विक्रय द्वारा लाभ कमाने के लिए अथवा व्यावसायिक उपयोग के लिए अथवा औद्योगिक उपभोग के लिए माल खरीदते हैं। ऐसा व्यापारी अन्तिम उपभोक्ताओं को माल का विक्रय नहीं करता है।''

विशेशताएँ Characteristics

थोक वितरण की प्रमुख विशेशताएँ निम्नलिखित हैं–

1. थोक वितरकों के ग्राहक अन्तिम ग्राहकों को माल का विक्रय करते हैं। अन्य शब्दों में, थोक वितरक अन्तिम ग्राहकों को महत्वपूर्ण मात्रा में माल नहीं बेचते हैं।
2. थोक वितरक निर्माताओं एवं फुटकर व्यापारियों के बीच की श्रृंखला होते हैं।
3. थोक वितरक सीमित वस्तुओं में व्यापार करते हैं।
4. थोक वितरक स्थानीय बाजार के क्रय–विक्रय में सहायता देते हैं तथा फुटकर व्यापारियों को गैर–विक्रयण सेवाएँ प्रदान करते हैं।
5. थोक वितरक दुकान की सजावट की तुलना में गोदाम–व्यवस्था पर अधिक ध्यान देते हैं क्योंकि ये माल के बड़े संग्रहकर्ता होते हैं।
6. थोक वितरकों की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ़ होती है।
7. वर्तमान में, थोक वितरक निजी ब्राण्ड के आधीन भी विपणन करने लगे हैं तथा निर्माताओं को नाना प्रकार की विपणन सेवाएँ उपलब्ध करने लगे हैं।
8. ये व्यापारी अपनी वस्तुओं का विक्रय करने के लिए अपने बहुत से एजेन्ट एवं दलाल रखते हैं।
9. इन व्यापारियों के आर्थिक साधन अधिक होते हैं, अतः विक्रय बढ़ाने के लिए फुटकर व्यापारियों को प्रायः उधार माल बेचते है।
10. थोक व्यापारी प्रायः नकद माल खरीदते हैं, अतः इन्हें अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।
11. आवश्यकता पड़ने पर थोक व्यापारी उत्पादकों एवं निर्माताओं को आर्थिक सहायता देते हैं।
12. थोक विक्रेताओं में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है। मात्र फुटकर विक्रेताओं एवं अन्य मध्यस्थों से ही व्यवहार होने के कारण इनका केन्द्रीयकरण निश्चित स्थानों पर पाया जाता है।
13. इन व्यापारियों को न तो दुकान की अधिक सजावट ही करनी पड़ती है और न ही अधिक माल दुकान में रखना पड़ता है। इसको दुकान में केवल नमूने के लिए वसतुएँ रखनी पड़ती हैं, बाकी माल गोदामों में रहता है।
14. बड़े–बड़े थोक व्यापारी माल का क्रय–विक्रय करके वस्तु की माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन बनाये रखते हैं।

थोक व्यापारियों के प्रकार Their Types of Wholesalers

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

थोक व्यापारी अपने कार्यक्षेत्र एवं कार्य की प्रकृति के आधार पर तीन प्रकार के होते हैं।

प्रत्येक आधार पर वर्गीकरण का विवेचन इस प्रकार है–

(I) भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर –

1. **स्थानीय थोक व्यापारी**– स्थानीय थोक व्यापारी का आशय ऐसे व्यापारी से होता है जो अपनी वस्तु का विक्रय किसी एक व्यापारिक केन्द्र, शहर अथवा कस्बे तक सीमित रखता है। ये व्यापारी विभिन्न उत्पादकों का माल संग्रहित करके रखते हैं एवं उसका वितरण अपने शहर या कस्बे के फुटकर व्यापारियों को ही करते हैं। ये विज्ञापन आदि पर खर्च नहीं करते हैं।

2. **क्षेत्रीय या राज्य स्तरीय थोक व्यापारी**– वे थोक व्यापारी जिनका कार्यक्षेत्र राज्य अथवा क्षेत्रीय स्तर पर फैला होता है, वे इस नाम से पुकारे जाते हैं। इनके गोदाम एवं शाखाएँ राज्य अथवा क्षेत्र के प्रमुख स्थान पर होती है। परिणामस्वरूप निकटवर्ती गोदामों से आदेशों की पूर्ति की जाती है और फुटकर व्यापारियों से आसानी से सम्पर्क स्थापित किया जाता है।

3. **राश्ट्रीय थोक व्यापारी**– वे व्यापारी जो राष्ट्रीय स्तर पर माल का थोक व्यापार करते हैं, राष्ट्रीय थोक व्यापारी कहे जाते हैं। ये पूरे देश के फुटकर व्यापारियों को माल बेचते हैं। देश के विभिन्न भागों में इनके गोदाम तथा शाखाएँ होती हैं।

4. **अन्तर्राश्ट्रीय थोक व्यापारी**– ऐसे व्यापारी जिनका विक्रय क्षेत्र एक देश की औद्योगिक सीमाओं तक ही सीमित नहीं रहता वरन् विभिन्न देशों तक विस्तृत होता है, अन्तर्राष्ट्रीय थोक व्यापारी के नाम से पुकारे जाते है।

(II) उत्पाद या वस्तु पंक्ति के आधार पर–

1. **सामान्य वस्तु थोक व्यापारी**– यह वह थोक व्यापारी होता है जो दो या अधिक विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करता है जो एक दूसरी वस्तु से पूर्णतया भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, कोई थोक व्यापारी एक ही समय बिजली का सामान, लकड़ी का सामान, दवाएँ, कृषि औजार एवं मोटर के कलपुर्जे आदि का विक्रय करता है।

2. **एकल पंक्ति या सामान्य पंक्ति के थोक व्यापारी**– वह व्यापारी जो एक ही प्रकार की वस्तु में अपना व्यापार करता है, उसे एकल या सामान्य पंक्ति का थोक व्यापारी कहते हैं। उदाहरणार्थ, कपड़े का थोक व्यापारी जो सूती, रेशमी, ऊनी, हैण्डलूम, नायलोन, टेरीकॉट एवं टेरीलिन आदि कपड़ों का क्रय–विक्रय करता है।

3. **वि□ाश्ट वस्तु पंक्ति थोक व्यापारी**– विशिष्ट वस्तु पंक्ति थोक व्यापारी से आशय उस व्यापारी से होता है जो किन्हीं विशिष्ट प्रकार की वस्तुओं का ही विक्रय करता है, जैसे– केवल हैण्डलूम, डी.सी.एम., रेमण्ड या ग्वालियर रेयन का कपड़ा बेचने वाला थोक व्यापारी इस वर्ग में आता है।

(III) कार्यों अथवा सेवाओं के आधार पर –

1. **सम्पूर्ण कार्य या सेवा थोक व्यापारी**– वे व्यापारी जो माल का क्रय–विक्रय करने के साथ–साथ उत्पादकों एवं फुटकर व्यापारियों को अनेक प्रकार की अतिरिक्त सेवाएँ प्रदान करते हैं, सम्पूर्ण कार्य या सेवा थोक व्यापारी कहे जाते हैं। कन्वर्स एवं ह्यूगी के अनुसार, ''वे थोक व्यापारी जो अपने पास में माल का भारी स्टॉक रखते हैं, यात्री विक्रेताओं की नियुक्ति करते हैं तथा प्रायः अपने ग्राहकों को माल उधार बेचते हैं, ''सेवा थोक व्यापारी'' कहलाती हैं।'' ये अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे– थोक मर्चेन्ट, प्रबन्धक, निर्माता मर्चेन्ट, आयात व्यापारी आदि।

   ये थोक व्यापारी अनेक कार्य एवं सेवाएँ प्रदान करते हैं, जैसे– व्यवसाय सम्बन्धी सूचना देना, श्रेणीयन, प्रविधियन, भण्डारण, परिवहन, पैकिंग, विज्ञापन, आर्थिक सहायता, व्यावसायिक परामर्श एवं जोखिम उठाना आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **सीमित सेवा थोक व्यापारी**– वे थोक व्यापारी जो वस्तु–वितरण के सम्बन्ध में पूर्वलिखित सभी सेवाएँ प्रदान नहीं करते हैं, बल्कि उनमें से कुछ ही सेवाएँ उपलब्ध कराते हैं तो सीमित सेवा थोक व्यापारी कहे जाते हैं। अन्य शब्दों में, ये व्यवसाय के कार्यों का एक भाग ही सम्पन्न करते हैं।

सीमित सेवा थोक व्यापारी निम्नलिखित होते हैं–

(i) **नकद थोक व्यापारी**– ये वे थोक व्यापारी होते हैं जो न तो उधार पर विक्रय करते हैं और न वस्तु को क्रेता की दुकान पर सुपुर्दगी करते हैं। इसलिए इन्हें ''पैसा दो, माल लो थोक व्यापारी'' भी कहते हैं। ये प्रायः दैनिक उपयोग तथा अधिक माँग वाली वस्तुओं का ही क्रय–विक्रय करते हैं।

(ii) **'ड्राप शिपर' थोक व्यापारी**– ये वे थोक व्यापारी होते हैं जो निर्माता अथवा उत्पादक से वस्तु अपने नाम से खरीदते तो हैं किन्तु उसे अपने गोदाम में संग्रह नहीं करते हैं, वरन् माल पुनः बेचकर सीधे फुटकर व्यापारियों या औद्योगिक प्रयोक्ताओं के पास भेज दिया जाता है। इस प्रकार वस्तु के यातायात व्यय में कमी आती है। इन्हें 'डेस्क जॉबर' भी कहते है।

(iii) **डाक द्वारा व्यापार करने वाले थोक व्यापारी**– वह व्यापारी जो एजेन्ट्स की नियुक्ति नहीं करके पत्र व्यवहार के माध्यम से व्यापार करता है, उसे डाक द्वारा व्यापार करने वाले थोक व्यापारी कहते हैं। इनके व्यापार की वस्तुओं में प्रमापीकरण तथा श्रेणीयन पाया जाता है एवं उनकी प्रकृति टिकाऊ होती है।

(iv) **वैगन या ट्रक थोक व्यापारी**– ये प्रायः छोटे–छोटे थोक व्यापारी होते हैं जो अपना माल वैगन या ट्रक में ही पड़ा रहने देते हैं और उसी में से फुटकर व्यापारियों को बेचते रहते हैं। ये प्रायः नाशवान प्रकृति वाली वस्तुओं में व्यापार करते हैं। ये थोक व्यापारी इन वस्तुओं के सम्बन्ध में सेवा थोक व्यापारी जैसा सेवाएँ भी प्रदान करते हैं।

(v) **सहकारी थोक व्यापारी**– सहकारी थोक व्यापारी वे होते हैं जो सेवा थोक व्यापारी के समान सभी सेवाओं की व्यवस्था करते हैं, किन्तु मितव्ययता के दृष्टिकोण से अनेक सेवाओं को सहकारी थोक व्यापारियों द्वारा सीमित कर दिया जाता है।

(vi) **रैक जॉबर थोक व्यापारी**– यह वह थोक व्यापारी होता है जो अपनी वस्तुओं का प्रदर्शन तार या लकड़ी को ताड़ों पर करता है, पुराने सामान के स्थान पर नये सामान सजाता है, प्रदर्शित सामान का निरीक्षण करता है और विक्रय के आधार पर अपना भुगतान प्राप्त करता है। किन्तु जैसे–जैसे प्रदर्शित सामान की विक्रय मात्रा में वृद्धि होती है, फुटकर व्यापारी स्वयं इन वस्तुओं में रूचि लेने लगते हैं। परिणामस्वरूप रैक जॉबर थोक व्यापारी की उपयोगिता कम हो जाती है।

(vii) **निर्यात थोक व्यापारी**– ये थोक व्यापारी अपने देश में माल खरीदते हैं तथा दूसरे देशों में उनका विक्रय करते हैं।

(viii) **आयात थोक व्यापारी**– आयात थोक व्यापारी विदेशी बाजारों में बड़ी मात्रा में माल खरीदकर अपने देश के फुटकर व्यापारियों एवं औद्योगिक प्रयोक्ताओं को माल बेचते हैं।

थोक व्यापारी के कार्य Wholeselling Functions

निर्माताओं एवं फुटकर व्यापारियों अथवा औद्योगिक प्रयोक्ताओं के प्रति थोक वितरकों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्य निम्नानुसार हैं–

(अ) **निर्माताओं/पूर्तिकर्ताओं के लिए किये जाने वाले कार्य** – निर्माताओं अथवा पूर्तिकर्ताओं के लिए थोक वितरक निम्नलिखित कार्य करते हैं–

1. **विक्रयण** – थोक विक्रेता पूर्तिस्त्रोतों की खोज करते हैं और निर्माताओं को बिक्री के कार्य से मुक्त करते हैं। थोक विक्रेताओं के द्वारा दी जाने वाली बिक्री सेवाओं के कारण निर्माताओं को अपने यहाँ कम विक्रयकर्ता ही रखने पड़ते हैं। थोक विक्रेता निर्माताओं के लिए सम्वर्द्धन कार्य भी करते हैं और उनकी विज्ञापन तथा अन्य संवर्द्धन योजनाओं की क्रियान्विति में हिस्सा लेते हैं।

2. **वित्त प्रबन्धक**–व्यावसायिक क्षेत्र में पूँजी की जरूरत हर छोटे–बड़े निर्माता को रहती ही है। किन्तु, अपेक्षाकृत छोटे निर्माताओं को पूँजी की जरूरत अधिक रहती है। थोक विक्रेता ऐसे निर्माताओं की वित्तीय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जरूरतों को पूरा करने का कार्य करते हैं। थोक विक्रेता काफी बड़ी मात्रा में माल का स्टॉक करके निर्माताओं को पूँजी की व्यवस्था के झंझटों से मुक्त करते हैं।

3. **इन्वेण्टरी संग्रहण** – थोक विक्रेता काफी बड़ी मात्रा में माल खरीदते हैं और अपने गोदामों में रखते हैं, जिससे निर्माताओं को अपने यहाँ भारी स्टॉक रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती और उनके गोदाम व्ययों में कमी हो जाती है।

4. **साख जोखिमों में कमी** – निर्माताओं के लिए यह कठिन होता है कि वे असंख्य फुटकर व्यापारियों की आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन कर सकें और साख पर उन्हें माल दे सकें। थोक विक्रेता निर्माताओं को इन सैंकड़ों फुटकर व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित करने के कठिन कार्य से बचाते हैं और उनकी साख जोखिम में कमी लाते है। प्रायः थोक विक्रेता अग्रिम धन देकर माल खरीदते हैं। इससे भी निर्माताओं की साख–जोखिम में कमी हो जाती है। थोक विक्रेता अनेक फुटकर व्यापारियों के सम्पर्क में आते रहते हैं और उनकी आर्थिक स्थिति से परिचित होते हैं। इसलिए थोक विक्रेता साख जोखिम में कमी लाने वाले वितरक माने गये हैं।

5. **बाजार सूचना** – निर्माताओं की तुलना में थोक विक्रेता उपभोक्ताओं एवं ग्राहकों के अधिक नजदीक होते हैं। परिणामस्वरूप, वे बाजार की प्रतिक्रियाओं से पूरी तरह परिचित होते हैं और उपभोक्ताओं की माँग, रूचि, फैशन आदि के बारे में उत्पादकों को मूल्यवान सूचनाएँ उपलब्ध करने का कार्य करते हैं। थोक विक्रेताओं का यह कार्य विपणन अनुसंधान जरूरतों में कमी लाता है।

(ब) ग्राहकों के लिए किये जाने वाले कार्य – थोक विक्रेता अपने ग्राहकों अर्थात् फुटकर व्यापारियों एवं औद्योगिक व वाणिज्यिक प्रयोक्ताओं के लिये निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करते हैं–

1. **आव□यकताओं की जानकारी करना** – वस्तुतः थोक विक्रेता अपने ग्राहकों के क्रय एजेन्ट होते हैं और उनकी माँग का पूर्वानुमान लगाकर आवश्यक वस्तुएँ विभिन्न निर्माताओं से क्रय करते हैं।

2. **वस्तुओं का पुनर्समूहीकरण**– थोक विक्रेता पहले तो भारी मात्रा में विभिन्न निर्माताओं से विविध माल खरीद लेते हैं। तत्पश्चात् ग्राहकों की जरूरत के अनुसार वांछित समूहों में समूहित करते हैं, ताकि न्यूनतम सम्भव लागत पर वितरण किया जा सकें।

3. **स्टॉक रखना** – थोक वितरक अपने यहाँ भारी स्टॉक रखते हैं और ग्राहकों को उनकी आवश्यकता के अनुसार माल उपलब्ध कराते हैं जिससे ग्राहकों को अनावश्यक स्टॉक नहीं रखने पड़ते।

4. **साख प्रदान करना** – व्यवहार में यह पाया गया है कि फुटकर व्यापारियों की निर्बल आर्थिक स्थिति ने थोक विक्रेताओं के विस्तार में सहयोग किया है। छोटे फुटकर व्यापारी एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर फुटकर व्यापारी अथवा वाणिज्यिक संस्थायें थोक व्यापारियों से ही माल खरीदना पसन्द करती हैं, क्योंकि वे उन्हें साख पर माल उपलब्ध कर देते हैं। इसके अतिरिक्त ग्राहकों के लिए निर्माताओं से सम्पर्क स्थापित करना भी काफी खर्चीला और असुविधाप्रद होता है।

5. **माल की सुपुर्दगी करना**– थोक विक्रेताओं की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है और वे यातायात के साधन, जैसे ट्रकें, लारियाँ आदि भी अपने यहाँ रखते हैं ताकि माल की सुपुर्दगी कम लागत पर अतिशीघ्र की जा सके।

6. **क्रयण**– अनेक थोक विक्रेता फुटकर व्यापारियों, औद्योगिक प्रयोक्ताओं तथा वाणिज्यिक संस्थाओं से आदेश प्राप्त करने के लिए अनेक विक्रयकर्ता नियुक्त करते हैं। इन विक्रयकर्ताओं की सेवाओं को वर्तमान में थोक विक्रेताओं के ग्राहकों ने काफी पसन्द किया है, क्योंकि ग्राहकों को क्रय कार्य नहीं करना पड़ता है। उनके काउन्टर पर ही थोक व्यापारियों के विक्रेता पहुँच जाते हैं और माल पसन्द करवा कर आदेश प्राप्त कर लेते हैं। थोक विक्रेताओं का यह कार्य ग्राहकों के क्रयण कार्य को सुविधाजनक बना देता है और उन्हें पूर्ति–स्त्रोतों की खोज नहीं करनी पड़ती है।

7. **सूचनाएँ एवं परामर्□ सेवायें देना** – थोक विक्रेता एवं उनके विक्रयकर्ता जिन वस्तुओं को बेचते हैं, उनके बारे में नाना प्रकार की सूचनाएँ तथा परामर्श देने में समर्थ होते हैं क्योंकि उनका अनुभव एवं विशिष्ट ज्ञान शनैः शनैः काफी बढ़ जाता है। यही कारण है कि वस्तुओं की कीमत, किस्म, निर्माण,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

डिजायन, पैकेजिंग, संस्थापन, बिक्री आदि के बारे में अपने ग्राहकों को वांछित सूचनाएँ, परामर्श तथा सेवाएँ उपलब्ध करते हैं और संरक्षण प्राप्त करते हैं।

थोक व्यापारी की सेवाएँ Services of Wholsaler

थोक व्यापारी, निर्माता एवं फुटकर व्यापारियों के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी है क्योंकि यह दोनों की महत्वपूर्ण सेवाएँ करता हैं। थोक व्यापारी के विभिन्न कार्यो का अध्ययन करने से इनकी उपयोगिता का आभास सहज ही में होने लगता है। यही कारण है कि दुनिया के प्रायः सभी देशों में थोक व्यापारी विद्यमान हैं और इनका व्यवसाय एवं उद्योग–धन्धों के विकास में बहुत महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से थोक व्यापारी की सेवाओं को अग्रलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

(I) निर्माताओं/उत्पादकों के प्रति सेवाएँ,

(II) फुटकर व्यापारियों के प्रति सेवाएँ, एवं

(III) उपभोक्ताओं एवं समाज के प्रति सेवाएँ।

थोक व्यापारी की सेवाओं का विवेचन इस प्रकार है–

(I) निर्माताओं/उत्पादकों के प्रति सेवाएँ–

1. **बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव बनाना**– थोक व्यापारी भावी मांग का पूर्वानुमान लगाकर निर्माताओं/उत्पादकों के पास बड़ी मात्रा में अग्रिम आदेश भेज देते हैं, जिनके आधार पर उत्पादकों के लिए बड़े पैमाने पर उत्पादन करना सम्भव हो जाता है।

2. **विक्रय चिन्ता से मुक्ति**– थोक व्यापारी उत्पादकों से बड़ी मात्रा में वस्तु खरीद लेता है, जिससे उत्पादक वस्तु के विक्रय की चिन्ता से मुक्त रहते है और वे असंख्य फुटकर व्यापारियों को छोटी–छोटी मात्रा में माल बेचने की असुविधा से बच जाते हैं।

3. **संग्रहण सुविधा**– थोक व्यापारी कच्चे एवं निर्मित दोनों प्रकार के माल का संग्रहण करते हैं। परिणामस्वरूप निर्माताओं को दो लाभ होते हैं–

   (i) इन्हें अधिक गोदाम रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती है, तथा

   (ii) निर्माता को कच्चे माल में अधिक धन लगाने की आवश्यकता नहीं रहती है।

   इस प्रकार निर्माता अपने धन का अन्य कार्यो में उपयोग कर सकता है और लागत भी बचा सकता है।

4. **जोखिम से सुरक्षा**– मूल्य परिवर्तन के कारण होने वाली हानि को थोक व्यापारी स्वयं सह लेता है। इसलिए उत्पादक जोखिम से बच जाता है।

5. **मूल्य स्थिरीकरण में सहायक**– थोक व्यापारी मूल्यों में स्थायित्वता भी लाते हैं। ये लोग माल का संग्रहण करके रखते हैं एवं जब भाव बढ़ जाते हैं तो उसका विक्रय करते हैं और मूल्यों में गिरावट लाने में सहयोग देते हैं। इस प्रकार इस निश्चित समय में निर्माता वस्तु के मूल्य में होने वाली घट–बढ़ से अप्रभावित रहता है।

6. **बाजार का विस्तार**– थोक व्यापारी अपना माल दूर–दूर के बाजारों में बेचता है एवं नये बाजारों की खोज भी करता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में वस्तुओं को पहुँचाकर निर्माता की ख्याति को भी बढ़ाता है। अतः ये बाजार को खोजने के साथ–साथ उसका विस्तार भी करते हैं।

7. **पूँजी एवं श्रम की बचत**– थोक व्यापारी चूँकि वस्तु के वितरण का भार अपने ऊपर ले लेता है। अतः उत्पादक वितरण कार्य में लगने वाली पूँजी एवं श्रम से बच जाता है। इसके अतिरिक्त वह इस कार्य में होने वाली असुविधाओं से भी बच जाता है, एवं उत्पाद कार्य में अपना अधिक ध्यान केन्द्रित कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **बाजार सम्बन्धी सूचना देना**– थोक व्यापारी वस्तु की माँग एवं उपभोक्ताओं की रूचि, फैशन, रीति–रिवाज आदि में होने वाले परिवर्तनों की सूचना फुटकर व्यापारी से ज्ञात करके उत्पादकों तक पहुँचा देता है। उत्पादक इस परिवर्तन के अनुरूप उत्पादन को समायोजित करके लाभान्वित होता है।

9. **विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन**– थोक व्यापारी उस माल का जिसमें ये व्यवहार करते हैं, विज्ञापन एवं विक्रय वृद्धि भी करते हैं। इस प्रकार निर्माताओं एवं थोक व्यापारियों द्वारा एक ही वस्तु के विज्ञापन का दोहरा प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप माँग में वृद्धि होती है।

10. **बाजार अनुसंधान एवं पूर्वानुमान**– थोक व्यापारी अपने माल की बिक्री बढ़ाने के लिए समय–समय पर बाजार अनुसंधान करते है एवं इसके आधार पर भविष्यवाणी करते हैं, परिणामस्वरूप निर्माताओं को लाभ मिलता है।

(II) फुटकर व्यापारियों के प्रति सेवाएँ –

1. **सुविधानुसार क्रय**– फुटकर व्यापारी जिस समय चाहे, थोड़ी–थोड़ी मात्रा में थोक व्यापारियों से माल खरीदते रहते हैं। इसका कारण यह है कि उनके पास पूँजी कम होती है और उन्हें अनेक वस्तुएँ, अनेक ग्राहकों की सन्तुष्टि हेतु रखनी पड़ती है। अतः उन्हें अपनी कम पूँजी से माल क्रय करने की सुविधा रहती है।

2. **विशिष्टीकरण का लाभ**– थोक व्यापारी एक ही वस्तु अथवा एक ही प्रकार की वस्तुओं में व्यापार करते हैं। अतः उन्हें उस वस्तु के गुण, विपणि सम्भावनाएँ एवं विपणि की विस्तृत जानकारी होती है जिसका लाभ फुटकर व्यापारी को मिल जाता है।

3. **नई वस्तु के बारे में सूचना देना**– थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी को न केवल नई उत्पादित वस्तुओं की जानकारी ही देता है, अपितु विक्रय अथवा वापसी के आधार पर उनका थोड़ा–थोड़ा स्टॉक भी उनके पास छोड़ देते हैं जो उपभोक्ताओं को दिखाकर एवं उनके गुणों का आभास कराकर वस्तु की माँग उत्पन्न करते हैं।

4. **उधार की सुविधा**– फुटकर व्यापारी थोड़ी पूँजी से व्यापार प्रारम्भ करता है। अतः वह प्रायः माल उधार खरीदना चाहता है। थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी को उधार माल खरीदने तथा धीरे–धीरे माल की विक्रय राशि से रूपया चुका देने की सुविधा प्रदान करता है।

5. **मार्गदर्शन**– थोक व्यापारी अपने क्षेत्र के बाजार का अध्ययन करता रहता है और फुटकर व्यापारियों को बाजार के परिवर्तित रूख से परिचित रखता है। वह वस्तु–विक्रय सम्बन्धी नवीनतम सूचनाएँ प्रदान करके उनका पथ–प्रदर्शन करता है।

6. **हानि से सुरक्षा**– थोक व्यापारी के गोदामों में भारी मात्रा में माल रहता है, जिससे वह वस्तु की माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन रखकर मूल्यों पर नियन्त्रण रखता है। परिणामस्वरूप मूल्य परिवर्तन के कारण होने वाली हानि से फुटकर व्यापारी की रक्षा होती है।

7. **श्रेणीयन एवं पैकिंग की सुविधा**– थोक व्यापारी माल बेचने के पूर्व उनकी श्रेणी, वर्ग, किस्म आदि के आधार पर वर्गीकृत कर लेते हैं और उपभोक्ताओं की आवश्यकतानुसार विभिन्न आकार–प्रकार के डिब्बों एवं थैलों में आकर्षक ढंग से पैकिंग करते हैं। परिणामस्वरूप फुटकर व्यापारी इन असुविधाओं से बच जाते हैं और उनको माल बेचने में बड़ी सुविधा रहती है।

8. **बिक्री में वृद्धि**– व्यापार में अल्प पूँजी का विनियोजन करने के कारण फुटकर व्यापारी विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन के साधनों पर अधिक धन व्यय नहीं कर सकते। थोक व्यापारी अपने माल का अपने क्षेत्र में विज्ञापन करते हैं, जिससे वस्तु की माँग बढ़ती है और फुटकर व्यापारियों को लाभ होता है।

9. **समय की बचत**– थोक व्यापारी वस्तु की पूर्ति के स्थानों की पूर्ण जानकारी रखता है और विभिन्न उत्पादकों की श्रेष्ठ वस्तुएँ न्यूनतम मूल्य पर खरीदकर फुटकर व्यापारियों को बेचता है। अतः फुटकर व्यापारियों का वस्तु के निर्माताओं से सम्पर्क स्थापित करने में समय नष्ट नहीं करना पड़ता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. **परिवहन सुविधा**– थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारियों की दुकानों तक माल पहुँचाने की भी सुविधा प्रदान करते हैं। उनके पास ट्रक एवं अन्य निजी वाहन होते हैं जिनके द्वारा माल पहुँचाया जाता है।

11. **स्वत्व एवं स्वत्व का हस्तान्तरण**– वस्तुओं पर थोक विक्रेता का स्वत्व होने के कारण वस्तु क्रय–विक्रय में विशेष सुविधा हो जाती है। मेकार्थी के अनुसार, ''वस्तु का स्वामित्व बिना अन्य मध्यस्थों के बीच में आये थोक व्यापारी एवं उसके ग्राहकों के बीच विक्रय को तुरन्त पूर्ण करने में सहायक होता है।''

12. **मौसमी वस्तुओं की उपलब्धि**– थोक व्यापारी फुटकर व्यापारी को मौसमी वस्तुओं को प्राप्त करने की सुविधा भी देता है। वह पूर्ति के समय मौसमी वस्तुएँ एकत्रित करते हैं और वर्ष भर फुटकर व्यापारियों को देते रहते हैं। परिणामस्वरूप फुटकर व्यापारी इनकी प्राप्ति की चिन्ता से मुक्त हो जाते है।

(III) उपभोक्ताओं एवं समाज के प्रति सेवाएँ–

1. **वस्तुओं की सहज उपलब्धता**– थोक व्यापारियों के अभाव में फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं को वस्तुएँ उपलब्ध नहीं करा सकते। चूँकि वे विभिन्न निर्माता एवं विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ फुटकर व्यापारियों के पास सुलभ कराके उपभोक्ताओं को क्रय में सहायता पहुँचाते हैं।

2. **उचित मूल्य**– थोक व्यापारी एक ओर बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव बनाता है तो दूसरी ओर कुशलतम वितरण सेवा प्रदान कर वस्तुओं के मूल्य में कमी कराता है। फलस्वरूप उपभोक्ताओं को सस्ते मूल्य पर वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती है और उनकी क्रय शक्ति भी बढ़ जाती है।

3. **चुनाव की सुविधा**– फुटकर व्यापारियों के पास कई प्रकार की एवं कई निर्माताओं की वस्तुओं की उपलब्धि थोक व्यापारियों की उपस्थिति से ही सम्भव होती है। विज्ञापन द्वारा थोक व्यापारी वस्तुओं के कार्य एवं उपयोग सम्बन्धी जो सूचनाएँ उपभोक्ताओं को प्रदान करते हैं, उससे उपभोक्ताओं द्वारा अपनी रूचि के अनुसार वस्तु चुनाव करने में सुविधा रहती है।

4. **रूचि के माल का उत्पादन**– थोक व्यापारी उपभोक्ताओं की माँग, रूचि, फैशन एवं आदत आदि में हुए परिवर्तनों से उत्पादकों को सूचित करते हैं। अतः उनके द्वारा उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जिसकी उपभोक्ताओं की माँग होती है।

5. **एक समान मूल्य**– थोक व्यापारी पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा के कारण वस्तु का मूल्य सभी क्षेत्रों में लगभग समान रखते हैं, जिससे उपभोक्ताओं को किसी भी स्थान पर वस्तु का क्रय करने में आसानी रहती है।

6. **सुख–सुविधा में वृद्धि**– थोक व्यापारी उत्पादन स्थल से उपभोक्ताओं तक वस्तुएँ पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। परिणामतः उपभोक्ताओं को पअने निवास–स्थान पर ही विविध आवश्यकताओं की वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती हैं। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उपभोग करने से उपभोक्ताओं की सुख–सुविधा बढ़ जाती है और उनका रहन–सहन का स्तर भी ऊँचा हो जाता है।

7. **मूल्य में स्थायित्व**– थोक व्यापारी वस्तुओं के मूल्यों पर अंकुश रखते हैं। फलस्वरूप मूल्यों में परिवर्तन न्यूनतम होने से उपभोक्ता लाभान्वित होते हैं।

8. **संसाधनों का अधिकतम उपयोग**– थोक व्यापारी उत्पादक को समाज द्वारा वांछित माल का उत्पादन करने की सलाह देकर देश में उपलब्ध संसाधनों के सर्वाधिक उत्तम उपयोग में भागीदार बनता है।

9. **बाजार अनुसधान का लाभ**– थोक व्यापारी अपने क्षेत्र के बाजार का गहन अध्ययन करते रहते हैं और उत्पादकों को सम्बन्धित सूचना भेजते रहते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादक वस्तु में आवश्यक सुधार करते रहते हैं जिससे उपभोक्ताओं को अधिक उपयोगी वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती है।

10. **विज्ञापन द्वारा ज्ञान में वृद्धि**– थोक व्यापारी के विज्ञापन में वस्तु के गुणों का समावेश होता है। कभी–कभी इन विज्ञापनों से समाज को कई महत्वपूर्ण बातों की जानकारी दी जाती है। विज्ञापन से थोक व्यापारी समाज को नवीन वस्तुओं के उत्पादन एवं उनके उपयोग को भी जानकारी देते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

थोक व्यापारियों (मध्यस्थों) का उन्मूलन

(Elimination of Wholesalers)

व्यावसायिक जगत में थोक व्यापारियों का अस्तित्व बना रहने दिया जाये अथवा उन्हें तुरन्त हटा दिया जाये, सभी विद्वान इस विषय पर एकमत नहीं है। इस सम्बन्ध में परस्पर दो विचारधाराएँ विद्यमान हैं। एक वर्ग के विचारकों की दृष्टि में ये उत्पादक एवं उपभोक्ता के बीच अनावश्यक कड़ी है, पराश्रयी है और इन्हें यथाशीघ्र हटा दिया जाना चाहिए क्योंकि ये भी उत्पादक एवं उपभोक्ता मूल्य में पाये जाने वाले अन्तर के कारण है। दूसरा वर्ग इनका प्रबल समर्थक है, जिनका यह कहना है कि ये उत्पादक, फुटकर व्यापारी एवं समाज सभी की सेवा करते हैं। इसलिए इनके उन्मूलन सम्बन्धी विचाराधारा आधारहीन है।

थोक व्यापारी को मध्यस्थ श्रृंखला से हटाया जाये अथवा नहीं, इसके निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व हम इसके दोनों पहलूओं–पक्ष एवं विपक्ष का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है, जो अग्र प्रकार है–

(I) पक्ष में तर्क –

1. **अनाव□यक मध्यस्थ**– थोक व्यापारियों की उपस्थिति वितरण–श्रृंखला को अनावश्यक रूप से लम्बा बनाती है जिससे उपभोक्ताओं को वस्तु प्राप्त करने में विलम्ब होता है। उत्पादक फुटकर व्यापारियों अथवा उपभोक्ताओं को सीधा माल बेचकर थोक व्यापारियों की अवहेलना कर सकते हैं। कुछ वस्तुओं के वितरण कार्य में उनकी संख्या अवांछित रूप से अधिक है। विशेष रूप से कृषि उपजों के वितरण में थोक व्यापारियों की एक प्रकार से बाढ़ सी आ गयी है। उनकी इस भीड़ के कारण वितरण सेवाओं की पुनरावृति होती है और अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा बढ़ती है। थोक व्यापारी के बिना वितरण कार्य अधिक शीघ्रता से एवं कम मूल्य पर किया जा सकता है। फलतः थोक व्यापारी अनावश्यक है।

2. **मूल्यों में वृद्धि**– हम सर्वत्र देखते हैं कि जिस मूल्य पर उत्पादक के यहाँ से वस्तुएँ चलती है और उपभोक्ताओं को मिलती है, उसमें बहुत भारी अंतर होता है। इसका कारण यह है कि कई मध्यस्थों के हाथों से वस्तु गुजरती है, प्रत्येक उस पर लाभ लेता है। अतएव वस्तु का मूल्य बढ़ जाना स्वाभाविक ही है। इस भार के शिकार अन्त में उपभोक्ता ही होते हैं।

3. **मिथ्या वस्तुओं का प्रचार**– थोक विक्रेता प्रायः ऐसी वस्तुओं का प्रचार करता है, जो समाज के लिए लाभदायक नहीं होती हैं एवं वे अनावश्यक भी होती है। वे तो ऐसी वस्तुएँ अधिक से अधिक पसन्द करते हैं, अपनी दुकान में रखते हैं जिनसे अधिकतम लाभ हो। इसलिए वे लोग स्वयं के हितों की पूर्ति करने में लगे रहते हैं।

4. **कटुतापूर्ण सम्बन्ध**– थोक व्यापारियों द्वारा मूल्यों में वृद्धि के कारण उपभोक्ता मध्यस्थों को शीघ्रताशीघ्र हटाना चाहते हैं और मध्यस्थों के लाभ के कारण उत्पादक एवं मध्यस्थ तीनों के मध्य का आपसी सम्बन्ध परस्पर विरोधी हितों के कारण दिन–पर–दिन कटुता होता जा रहा है।

5. **सुरक्षित भोशक**– व्यापारिक एवं औद्योगिक जगत में जोखिम, हड़ताल तथा मंदी आदि से मध्यस्थ लगभग अप्रभावित रहते हैं। व्यापारिक परिवर्तन उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं की बुरी तरह झकझोर सकते हैं, किन्तु मध्यस्थ इन सबसे निश्चित अपने कार्य में संलग्न रहते हैं। उत्पादक को लाभ हो अथवा हानि और उपभोक्ता को वस्तु सस्ती मिले अथवा महंगी, मध्यस्थों का लाभ अथवा कमीशन सुरक्षित रहता है।

6. **अनेक निर्माताओं की वस्तुओं का प्रचार**– थोक व्यापारी अपने लाभ एवं कमीशन को बढ़ाने के लिए ऐसी वस्तुओं का प्रचार अधिक करते हैं, चाहे वे किसी निर्माता की क्यों न हो? उसका हित उसके निर्माता की अपेक्षा उस वस्तु के विक्रय में अधिक होता है, जिन निर्माताओं की वस्तुओं पर अधिक से अधिक कमीशन प्राप्त होता है, वह उनकी वस्तुओं का अधिक प्रचार करता है।

7. **आपूर्ति में विलम्ब**– मध्यस्थों की लम्बी श्रृंखला के कारण उपभोक्ताओं को वस्तु की सुपुर्दगी प्राप्त करने में अनावश्यक समय लग जाता है। कभी–कभी तो उनको समय पर वस्तु उपलब्ध न होने के कारण उसके उपभोग से वंचित तक रहना पड़ता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **अनुचित लाभ**– थोक व्यापारियों द्वारा अनुचित लाभ कमाया जाता है। बहुत सी दुर्लभ वस्तुओं के विक्रय में ये लोग आवश्यकता से अधिक लाभ वसूल करते हैं। दूसरा वस्तुओं की कमी के समय में भी परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए ऊँची दरों पर माल का विक्रय करते हैं।

9. **वस्तुओं का प्रमापीकरण**– आधुनिक युग में वस्तुओं का प्रमापीकरण होने से वस्तुएँ स्वतः ही प्रसिद्ध होने लगती हैं। फलस्वरूप ग्राहक स्वयं वस्तुओं की माँग करके उपभोग या उपयोग करते हैं। ऐसी दशा में इन वस्तुओं के विक्रय हेतु थोक व्यापारी की मध्यस्थ के रूप में कोई विशेष उपयोगिता नहीं है। इसलिए इसे हटा दिया जाना चाहिए।

10. **बहु–विक्रय□ालाओं, सुपर बाजारों द्वारा, विभागीय भण्डारों का प्रसार**– बहु–विक्रयशालाओं, सुपर बाजारों एवं विभागीय भण्डारों की वृद्धि के कारण फुटकर व्यापारियों का निर्माताओं से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। इसके अलावा उपभोक्ता सहकारी भण्डारों की स्थापना होने से भी थोक व्यापारी अनावश्यक प्रतीत होते हैं। इसलिए इन्हें हटा दिया जाना चाहिए।

11. **निजी व्यापारिक चिन्हों के प्रयोग पर दोश**– प्रायः थोक व्यापारी वस्तुओं पर अपने चिन्ह लगाकर एक ओर तो उत्पादकों की प्रतिष्ठा कम कर देते हैं तो दूसरी और वितरण का एकाधिकार प्राप्त करके ग्राहकों से मनमाना मुनाफा लेकर शोषण करते हैं।

12. **अनुचित पारिश्रमिक**– वितरण कार्य में थोक व्यापारियों का फुटकर व्यापारियों की अपेक्षा कम कार्य होता है। लेकिन उनकी सेवाओं के बदले जो उन्हें पारिश्रमिक दिया जाता है, वह काफी अधिक होता है। अतः साधारण कार्य के लिए जो उसे इतना पारिश्रमिक दिया जाता है, वह अनुचित है।

13. **भण्डारण–क्षमता में वृद्धि**– अब उत्पादकों एवं निर्माताओं की भण्डारण–क्षमता भी पहले ही अपेक्षा काफी बढ़ गयी है। इसलिए थोक व्यापारियों पर उनकी निर्भरता पहले की अपेक्षा कहीं कम हो गयी। इसके अतिरिक्त सरकार भी उन्हें इस सम्बन्ध में सहायता देने लग गयी है। परिणामस्वरूप थोक व्यापारियों की उपयोगिता कम हो गयी है।

14. **ट्रेडमार्को का प्रचलन एवं विज्ञापन पर बल**– गत कुछ वर्षो में ट्रेडमार्को का अत्यधिक प्रचलन होने तथा निर्माताओं द्वारा विज्ञापन पर अत्यधिक बल देने से सब निर्माताओं को अपना माल बेचने के लिए थोक व्यापारी पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। अब फुटकर व्यापारी आसानी से निर्माता से माल का क्रय कर सकता है।

15. **यातायात एवं संदे□ावाहन के साधनों का विकास**– गत कुछ दिनों में हमारे देश में यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों में तेजी से विकास हुआ है। फलस्वरूप अब फुटकर व्यापारी आसानी से थोड़ी–थोड़ी मात्रा में निर्माता से शीघ्र माल मँगवा सकता है या वे स्वयं माल भेज देते हैं। अतः अब माल का बड़ी मात्रा में संग्रह करने की आवश्यकता नहीं रही है।

16. **बाजार अनुसंधान**– अब उत्पादकों एवं निर्माताओं ने पृथक से अनुसंधान विभाग की स्थापना करना प्रारम्भ कर दिया है। ऐसी दशा में वे स्वयं बाजार अनुसंधान कर सीधे ग्राहकों की माँग, रूचि, आवश्यकता, फैशन, शैली में परिवर्तन आदि बातों को सही जानकारी कर लेते हैं।

17. **सुदृढ़ वित्तीय स्थिति**– कुछ समय पूर्व उत्पादक एवं निर्माता वित्त के मामले में थोक व्यापारियों से सहयोग लेते थे। किन्तु अब उनकी आर्थिक स्थिति पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सुदृढ़ हैं। यही नहीं, उन्हें वित्तीय संस्थाओं से भी अपेक्षाकृत उदार दर पर और आसानी से ऋण भी उपलब्ध कराये जाने लगे हैं और उनके लिए भी फुटकर व्यापारियों को उधार क्रय की सुविधा दी जानी संभव हो गयी है।

18. **विपणन कार्यो का छिन जाना**– पहले विपणन कार्यों, जैसे– वस्तुओं का श्रेणीयन, पैकेजिंग, विज्ञापन, वित्त प्रबन्धन, यातायात एवं संदेश–वाहन आदि के लिए थोक व्यापारी महत्वपूर्ण माने जाते थे। किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों एवं कानूनों ने इन कार्यों के बहुत बड़े भाग को ले लिया है। ऐसी दशा में थोक व्यापारी की मध्यस्थता की कोई आवश्यकता नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

19. **विक्रय–पश्चात् सेवा का अभाव**– थोक व्यापारी वस्तुओं को बेचते समय अनेक आश्वासन देते हैं। किन्तु जब आवश्यकता पड़ती है तो न तो स्वयं आते हैं और न ही फुटकर व्यापारी से आश्वासन को पूरा करवाते हैं। ऐसी दशा में इसे हटाना उपयुक्त होगा।

(II) विपक्ष में तर्क–

थोक व्यापारियों को हटाने का इतना विरोध होते हुए भी उनका अस्तित्व बना हुआ है। आखिर ऐसा क्यों? वास्तव में इनका होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इनके द्वारा किये जाने वाले कार्य बहुत महत्वपूर्ण हैं। यदि उनके कार्यो को निर्माता एवं फुटकर व्यापारी करने लगेंगे तो निश्चित ही न केवल उनकी कार्यक्षमता कम हो जायेगी, अपितु वस्तु के मँगाने में व्यय भी काफी हो जायेगा। इसके अतिरिक्त माल आने में देरी होने के कारण ग्राहकों को असुविधा होने को भी आशंका रहेगी। इसलिए थोक व्यापारियों का रहना बहुत आवश्यक है।

संक्षेप में, थोक व्यापारी को हटाये जाने के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं–

1. **बहुमूल्य सेवा**– थोक व्यापारी निर्माताओं, फुटकर व्यापारियों एवं उपभोक्ताओं की अनेक प्रकार से सेवाएँ करते हैं, जैसे– विक्रय चिन्ता से मुक्ति, बाजार का विस्तार, सूचनाएँ, उधार–सुविधा, श्रेणीयन, पैकिंग, परिवहन, वस्तुओं की सहज उपलब्धि, चुनाव की सुविधा एवं सुख–सुविधा आदि। यदि इन्हें हटा दिया जाये तो ये सेवाएँ कौन करेगा? इसलिए यह कहा जाता है कि इनके अभाव में सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था लड़खड़ा जायेगी।

2. **न्यूनतम मूल्य में वृद्धि**– थोक व्यापारियों द्वारा विभिन्न पक्षों की सेवाओं के बदले में इनका कमीशन एवं लाभ न्यूनतम होता है। यह धारणा निराधार है कि थोक व्यापारी वस्तु में लागत मूल्य एवं उपभोक्ता मूल्य के मध्य का सारा अन्तर हड़प जाते हैं। क्योंकि इस अन्तर का एक बड़ा भाग मजदूरों एवं कर्मचारियों के पारिश्रमिक, भवन का किराया, पूँजी पर ब्याज, बीमा एवं विज्ञापन व्यय आदि चुकाने में खर्च हो जाता है। यही नहीं, विभिन्न थोक व्यापारियों के मध्य भी प्रतिस्पर्द्धा रहती है जो उनको वस्तु का मूल्य न्यूनतम रखने के लिए बाध्य करती है।

3. **वितरण व्यवस्था के अपरिहार्य अंग**– देश की वितरण व्यवस्था ऐसी है कि बिना थोक व्यापारियों के व्यापार करना कठिन है। कोई भी उपभोक्ता सीधा उत्पादक या निर्माता से माल खरीदना पसन्द नहीं करता है क्योंकि माल का उपयोग करने के बाद ही उसकी किस्म एवं उपयोगिता की जानकारी होती है तो उपभोक्ता उत्पादक से कहाँ सम्पर्क करेगा? इसके अतिरिक्त देश में ऐसी संस्थाओं का विकास भी अत्यन्त सीमित है तो आसानी से थोक व्यापारियों का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती है।

4. **विशिष्टीकरण का लाभ**– थोक व्यापारी केवल वस्तु वितरण का कार्य करने के कारण उसमें विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं। वे इस कार्य में इतने दक्ष हो जाते हैं कि उनकी योग्यता, कुशलता एवं निपुणता अनावश्यक व्ययों को न्यूनतम करके समाज को अधिकाधिक लाभ पहुँचाती है। ऐसी दशा में उत्पादक अथवा उपभोक्ता अपना सम्पूर्ण ध्यान इस कार्य में केन्द्रित नहीं कर सकते।

5. **उपभोक्ता की हिचकिचाहट**– वास्तव में आज कोई भी देश इस स्थिति तक नहीं पहुँचा है कि थोक व्यापारियों के अभाव में उत्पादक वस्तुओं को उपभोक्ताओं के घर तक सुगमता से पहुँचा सके। प्रमापीकरण का इतना बोलबाला होते हुए भी उपभोक्ता बिना वस्तु को देखे हुए खरीदने में हिचकिचाता है। यह हिचकिचाहट तो थोक व्यापारी के अस्तित्व में रहते हुए ही दूर हो सकती है। अतः थोक व्यापारी को हटाना उचित नहीं है।

6. **उत्पादकों को वित्तीय सहायता**– थोक व्यापारियों द्वारा उत्पादकों को जमानत के रूप में धन जमा कराया जाता है और माल का अग्रिम भुगतान भी किया जाता है। इसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर थोक व्यापारी, निर्माताओं को ऋण भी देते हैं। इस प्रकार थोक व्यापारी के हटाये जाने से उत्पादकों के सम्मुख वित्तीय संकट उत्पन्न हो सकता है।

7. **फुटकर व्यापारियों को साख–सुविधाएँ**– थोक व्यापारी प्रायः फुटकर व्यापारियों को उधार माल बेचते हैं जिससे वे कम पूँजी से भी अपना कारोबार आसानी से संचालित कर लेते हैं। थोक व्यापारियों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उन्मूलन हो जाने से सारा माल नकद खरीदना पड़ेगा, जिसके कारण फुटकर व्यापारियों को अधिक मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होगी।

8. **गोदामों की समस्या का समाधान**– थोक व्यापारी अपने यहाँ पर बड़ी मात्रा में उत्पादकों का सामान संग्रहित करके रखता है। परिणामतः एक ओर उत्पादकों की संग्रहण की समस्या का समाधान होता है तो दूसरी ओर फुटकर व्यापारियों को भी अधिक मात्रा में माल संग्रहित नहीं करना पड़ता है। थोक व्यापारी के हटाये जाने पर उत्पादकों के संग्रहण की समस्या उत्पन्न हो जायेगी और फुटकर व्यापारियों के सामने भी वस्तुओं का बड़ी मात्रा में स्टॉक रखने के लिए गोदामों की समस्या उत्पन्न हो जायेगी।

9. **विभिन्न निर्माताओं से सम्पर्क आव□यक**– थोक व्यापारी के हट जाने पर फुटकर व्यापारियों की आवश्यकता सामान खरीदने के लिए अनेक निर्माताओं से सम्पर्क करना पड़ता है जिससे उनके सामने अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। लेकिन थोक व्यापारी के रहने से एक ही स्थान पर अनेक निर्माताओं का माल मिल जाता है। इसलिए इनको नहीं हटाया जाना चाहिए।

10. **यातायात की समस्या**– थोक व्यापारी के होने से फुटकर व्यापारियों को एक ही स्थान पर सभी प्रकार का माल प्राप्त हो जाता है। अतः ये यातायात की समस्या से मुक्त हो जाते हैं और बहुत से थोक व्यापारी तो अपने साधनों से फुटकर व्यापारियों तक माल पहुँचाते हैं। इसके विपरीत थोक व्यापारी के उन्मूलन से फुटकर व्यापारियों के लिए अनेक उत्पादकों से माल मंगवाना कठिन होगा।

11. **जोखिम–वहन**– निर्माता भारी मात्रा में कच्चा, पक्का माल, यंत्र, मशीनरी एवं औजार क्रय करता है। थोक व्यापारियों की माँग के अनुसार कम–अधिक उत्पादन करता रहता हैं। यदि फुटकर व्यापारियों द्वारा माल का संग्रह किये जाने की दशा में मूल्यों में उतार–चढ़ाव, फैशन में परिवर्तन अथवा माल न बिकने पर देने वाली आर्थिक हानि भी जोखिम उसे स्वयं उठानी पड़ेगी। लेकिन इनकी यह क्षमता नहीं होने से थोक व्यापारी को हटाना उचित नहीं होगा।

12. **वि□ाश्ट ज्ञान का अभाव**– आज के व्यावसायिक युग में विशिष्ट ज्ञान के बिना संस्था चलाना कठिन है। लेकिन निर्माताओं/उत्पादकों के पास थोक व्यापारियों की अपेक्षा विपणन सम्बन्धी ज्ञान, विपणन निर्णयन योग्यता एवं उपभोक्ता व्यवहार आदि से सम्बन्धित ज्ञान कम होता है।

निश्कर्श– थोक व्यापारियों के कार्यो को निर्माता अथवा फुटकर व्यापारी स्वयं सम्पन्न करने लगेंगे तो यह निश्चित है कि उनकी कार्यक्षमता कम हो जायेगी और वस्तु के मंगाने में व्यय भी काफी हो जायेगा। इसका कारण यह है कि वस्तु को थोड़ी–थोड़ी मात्रा में बार–बार रेल या पैकिंग व्यय हो जायेगा। इसके अतिरिक्त माल आने में देरी होने के कारण ग्राहकों को असुविधा होने की भी आंशका है। इसलिए थोक व्यापारियों का रहना बहुत आवश्यक है।

थोक व्यापारी उत्पादकों को यह भी बताते हैं कि भविष्य में अमुक वस्तु का इतना उत्पादन करें क्योंकि उनका विक्रय संगठन बहुत विस्तृत एवं अच्छा होता हैं। बाजार की माँग का अनुमान स्वयं निर्माताओं द्वारा लगाना बहुत कठिन है। थोक व्यापारी उत्पादकों को विभिन्न प्रकार की सूचनाओं तथा भावी माँग की परिस्थिति से परिचित कराता है। उत्पादकों के लिए यह कार्य सम्भव नहीं है। इस प्रकार थोक व्यापारी निर्माण में बहुत सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त यदि वितरण का कार्य स्वयं निर्माता अपने हाथ में ले लेते हैं तो उन्हें फुटकर व्यापारियों को माल उधार भी देना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी। थोक व्यापारियों के होने से इस धन को किसी अन्य उत्पादक कार्य में लगाया जा सकता है।

उक्त सभी बातों के अतिरिक्त, यदि वास्तव में देखा जाये तो कोई उपयुक्त व्यापारिक संस्था विकसित नहीं हुई है जो थोक व्यापारियों के अभाव में उत्पादकों से वस्तुओं की खरीद कर प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओं के घर तक सुगमता से पहुँचा सके।

इस प्रकार यह स्पष्ट हे कि थोक व्यापारियों को हटाना किसी भी प्रकार से वांछनीय नहीं हैं हाँ, इतना अवश्य किया जा सकता है कि इनकी अधिकता को कम दिया जाए और इन पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया जाए। ये फुटकर व्यापारी की बहुत बड़ी फर्मों के लिए अधिक उपयोगी नहीं है, इसलिए वहाँ इनकी सेवाओं की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु छोटे–छोटे व्यापारियों एवं निर्माताओं के लिए इनका होना बहुत आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हमारी सम्मति में निम्न परिस्थितियों में थोक व्यापारी का एक मध्यस्थ के रूप में होना आवश्यक प्रतीत होता है–

1. जब निर्माता वस्तु का थोक विक्रय करने की स्थिति में नहीं है अथवा रूचि नहीं रखता है।
2. जब फुटकर व्यापारी को साख–सुविधाएँ प्रदान की जाती हो।
3. जब उत्पादक एवं उपभोक्ता या फुटकर व्यापारी के मध्य अत्यधिक दूरी है जिनकी परिवहन लागत अधिक पड़ती है।
4. जब विदेशी व्यापार हो।
5. जब वस्तु इस प्रकार की है कि छोटे व्यापारी उसे बड़ी मात्रा में क्रय करने में असमर्थ हो।
6. जब फुटकर व्यापारी बहुत अधिक किस्म के माल बेचना चाहता हो जिसको कुछ ही निर्माता उपलब्ध करा सकते हैं।
7. यदि निर्माता या उत्पादक के लिए सीधे फुटकर व्यापारियों अथवा उपभोक्ताओं से सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव नहीं है अर्थात उसके पास उपयुक्त एवं प्रभावी विक्रय संगठन का अभाव है।
8. जबकि उत्पाद अधिक मूल्यवान है जिसके कारण फुटकर व्यापारियों के लिए उसका स्टॉक रखना सम्भव नहीं है।

अतः थोक व्यापारियों के उन्मूलन के सम्बन्ध में अधिक सुविधाजनक एवं बुद्धिमतापूर्ण कदम यह होगा कि उनके महत्व को स्वीकार करते हुए उनके उन्मूलन अथवा प्रतिस्थापन के प्रश्न को छोड़कर उनकी अनावश्यक संख्या, अवांछनीय गतिविधियों एवं बुराइयों पर अंकुश लगाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार मध्यस्थों के नियन्त्रण के सम्बन्ध में एक अधिनियम पारित कर उसका कठोरतापूर्वक पालन किया जाना चाहिए। यही विकल्प अधिक उचित एवं व्यावहारिक होगा।

फुटकर व्यापारी Retailer

''फुटकर व्यापारी'' से आशय उस वितरणकर्ता से लिया जा सकता है जो कि प्रमुखतः अन्तिम उपभोक्ता को उनके निजी उपयोग के लिए वस्तुएँ तथा सेवाएँ बेचता है। यह थोक व्यापारियों से बड़ी मात्रा में वस्तुओं को खरीदकर थोड़ी–थोड़ी मात्रा में उपभोक्ताओं को बेचता है, इस प्रकार फुटकर व्यापारी उत्पादक, थोक व्यापारी एवं उपभोक्ता के बीच में मध्यस्थ है।

1. **क्लार्क एवं क्लार्क के अनुसार,** ''फुटकर व्यापार में अन्तिम उपभोक्ता को माल के विक्रय के सभी स्वरूप सम्मिलित किये जाते हैं।''
2. **कण्डिफ एवं स्टील के अनुसार,** ''फुटकर व्यापार में वे समस्त क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो अन्तिम उपभोक्ता को सीधे माल बेचने से सम्बन्धित होती है।''
3. **स्टीफेन्सन के भाब्दों में,** ''फुटकर व्यापारी वह है जिसका व्यवसाय विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के विक्रय में लगा है। उस फुटकर व्यापारी की दुकान पर ये विभिन्न वस्तुएँ विभिन्न स्थानों से पर्याप्त मात्रा में विक्रय के उद्देश्य से एकत्रित की जाती हैं ताकि अनेकों व्यक्तियों एवं उपभोक्ताओं की आवश्यकताएँ आसानी और कुशलता से पूरी की जा सके।''

इस प्रकार फुटकर व्यापारी से आ□ाय एक फुटकर व्यापार करने वाले ऐसे व्यक्ति से है जो अन्तिम उपभोक्ताओं को माल का विक्रय करते हैं। अन्तिम उपभोक्ताओं से आ□ाय उन क्रेताओं से है जो वस्तुएँ या सेवाओं को अपने उपभोग के लिए खरीदते हैं, न कि आगे बेचने के लिए।

फुटकर व्यापारी की प्रमुख वि□ाशताएँ (Characteristics) निम्नलिखित हैं–

1. फुटकर व्यापारी थोक व्यापारियों से माल क्रय करके अन्तिम उपभोक्ताओं को बेचता है।
2. यह बड़ी मात्रा में वस्तुएँ खरीदता है और फिर उन्हें थोड़ा–थोड़ा करके उपभोक्ताओं को बेचता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. फुटकर व्यापारी वितरण मार्ग में प्रयुक्त होने वाले मध्यस्थों की अन्तिम कड़ी है।

4. यह बहुधा अनेक प्रकार की वस्तुओं का क्रय तथा विक्रय करता है अर्थात इसका किसी एक वस्तु में विशिष्टीकरण नहीं होता है।

5. यह थोक व्यापारियों से माल का क्रय करके उसे सीधा उपभोक्ताओं तक पहुँचाता है। इसलिए इनका उपभोक्ता से व्यक्तिगत सम्पर्क बन जाता है।

6. इसे व्यापार के लिए अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है।

7. फुटकर व्यापारी की दुकान शहर के मध्य में होती है।

8. फुटकर व्यापारी की सफलता दुकान की स्थिति एवं सजावट पर निर्भर करती है।

9. यह अधिकांश माल का क्रय उधार तथा विक्रय नकद करता है।

10. यह उपभोक्ताओं की सेवा एवं सन्तुष्टि पर बल देता है।

11. फुटकर व्यापारी वस्तु बेचने के साथ–साथ उपभोक्ताओं को कुछ सहायक सेवाएँ एवं सुविधाएँ भी प्रदान करते हैं।

12. फुटकर व्यापारी, थोक व्यापारी एवं उपभोक्ताओं के बीच की अन्तिम कड़ी है।

फुटकर व्यापारी के कार्य Functions of Retailer

आधुनिक विशिष्टीकरण–प्रधान अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत विपणन के क्षेत्र में फुटकर विक्रेता के विशेष कार्य होते हैं। इसके अभाव में उपभोक्ताओं को आज की जटिल उत्पादन एवं वितरण प्रणाली में अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुओं को उपलब्ध करना कठिन कार्य हो जाता है।

संक्षेप में, फुटकर व्यापारी के कार्य निम्नलिखित हैं–

1. **माँग का अनुमान लगाना एवं वस्तु को क्रय करने का प्रबन्ध करना**– फुटकर व्यापारी वस्तु की माँग का अनुमान लगाता है ताकि उसे पहले से ही क्रय करने का प्रबन्ध किया जा सके। अतः उसे क्रेताओं के बारे में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। यही नहीं, यह भी अनुभव होना चाहिए कि वसतु कब, किसे एवं किस मूल्य पर क्रय की जाये?

2. **अन्तिम उपभोक्ता को वस्तु बेचना**– वस्तुओं को अन्तिम रूप से उपभोक्ताओं को बेचने का कार्य फुटकर व्यापारी करता है। आज के प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति में यह कार्य भी काफी कठिन हो गया है। इसके लिए वह विज्ञापन, वस्तुओं का प्रदर्शन, प्रशिक्षित विक्रेता एवं आकर्षक मूल्य आदि का सहारा लेता है।

3. **उधार विक्रय करना**– फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं को उधार विक्रय की सुविधा प्रदान करता है। यही नहीं, वह कभी–कभी फुटकर विक्रय में वस्तुओं को उपभोक्ताओं के घर तक पहुँचाने की सुविधा भी देता है।

4. **उचित स्टॉक बनाये रखना**– जिन वस्तुओं की माँग जब तक रहती है, तब तक फुटकर व्यापारी को अपनी दुकान पर स्टॉक रखने की आवश्यकता होती है। लेकिन पर्याप्त मात्रा से अधिक का स्टॉक नहीं रखता है क्योंकि थोक व्यापारी उसकी माँग की पूर्ति तुरन्त कर देते हैं।

5. **वस्तुओं को लघु आकार में पैक करना** – उपभोक्ताओं को जिन वस्तुओं का विक्रय किया जाता है, इनमें से कुछ ऐसी होती हैं, जिन्हें फुटकर व्यापारी छोटे–छोटे आकार में पैक करके उसे आकर्षक तो बनाते हैं। इसके साथ ही उपभोक्ता की आवश्यकतानुसार वह उसका विक्रय करते हैं।

6. **जोखिम–वहन करना** – बहुत ही अल्पकाल में होने वाला परिवर्तन जोखिम उत्पन्न करता है। अनेकों ऐसे अवसर आते हैं, जबकि फुटकर व्यापारी के पास काफी माल विक्रय होने से बच जाता है। लेकिन उसकी माँग न रहने पर उसे समस्त हानि उठानी पड़ती है। अतः वह माँग के अनुरूप ही वस्तुओं को मंगवाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. **माल एकत्रित करना** – फुटकर व्यापारी अपने ग्राहकों को वस्तु के चुनाव की व्यापक सुविधा प्रदान करने हेतु थोक व्यापारियों अथवा उत्पादकों से विभिन्न प्रकार का माल क्रय करके एकत्रित करता है।

8. **बाजार सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्रित करना** – फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं की माँग, रूचि, फैशन, स्वभाग, आदत एवं आय में होने वाले परिवर्तनों का निरन्तर अध्ययन करता रहता है और उनका विश्लेषण करके अपने व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों पर पूर्ण ध्यान रखता है।

9. **बिक्री में वृद्धि करना**– फुटकर व्यापारी स्थानीय स्तर पर विज्ञापन करके वसतु की बिक्री को बढ़ाता है। ग्राहकों को अधिकाधिक संख्या में आकर्षित करने के लिए फुटकर व्यापारी को अपनी दुकान की साज–सज्जा एवं ग्राहकों की सुख–सुविधाओं पर विशेष ध्यान देना पड़ता है।

10. **उत्पादकों को सुझाव देना** – फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर उनकी रूचियों, आवश्यकताओं एवं समस्याओं आदि के बारे में जानकारी कर उत्पादकों को सुझाव प्रेषित करते हैं।

फुटकर व्यापारियों का वर्गीकरण अथवा इनके प्रकार

Classification of Retailers or Their Types

फुटकर व्यापारियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

(i) बिक्री के आधार पर।

(ii) वस्तु के आधार पर।

(iii) स्वामित्व के आधार पर।

(iv) कार्य के आधार पर।

प्रत्येक वर्गीकरण के आधार पर विवेचन निम्नलिखित है–

(I) बिक्री के आधार पर

1. **लघुस्तरीय फुटकर व्यापारी**– ये ऐसे विक्रेता/व्यापारी होते हैं जो कम पूँजी से अपना कार्य करते हैं तथा इनकी बिक्री भी अपेक्षाकृत कम होती है। ये निम्न प्रकार के होते हैं–

(i) **फेरीवाले फुटकर व्यापारी**– फेरीवाले या चलते–फिरते फुटकर व्यापारी दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ साइकिलों पर, ठेलों में, पल्लड़ों में, सिर पर, कन्धों पर अथवा झोले लटकाये हुए गाँव–गाँव, मुहल्ले–मुहल्ले एवं कॉलोनी–कॉलोनी में अपनी आवाज लगाते हुए बेचते फिरते हैं। ये घर के दरवाजे पर, रेल के डिब्बों में, सड़क की पटरियों पर, हाट मेलों एवं भीड़ के स्थानों पर अपनी वस्तुएँ बेचते हैं। प्रायः ये अपने पास उतनी ही वस्तुएँ रखते हैं जो दिनभर में बिक सके, जैसे– कपड़े, चाट, खिलौने, साग–सब्जी, मिठाइयाँ, बर्फ, कुल्फी एवं चूड़ियाँ, गन्ने का रस आदि।

(ii) **साधारण फुटकर व्यापारी**– फुटकर व्यापारी अधिकतर इन्हीं दुकानों द्वारा होता है। इस प्रकार के व्यापारी/ दुकानदार की दुकानें छोटी व बड़ी हो सकती है। ये अपनी स्थायी दुकान लगाकर बैठते हैं। ये लोग ग्राहकों के निकटतम स्थान पर अपनी दुकानें लगाते हैं। प्रायः इस प्रकार की दुकानें गाँवों में या शहरों की कॉलोनियों में स्थापित की जाती है, जहाँ पर अधिकाधिक ग्राहक आकर वस्तुएँ खरीद सकें। इस प्रकार के व्यापारी प्रायः परचूनी का सामान तथा उपभोक्ताओं के दिन–प्रतिदिन काम आने वाला सामान अपनी दुकान में रखते हैं।

(iii) **एक मूल्य की दुकानें**– फुटकर व्यापारी की ये ऐसी दुकानें हैं, जहाँ पर उपलब्ध सभी साल एक ही कीमत पर विक्रय किया जाता है। सामान्यतः हाट लगाकर बेचने वाले इस प्रकार की दुकान लगाते हैं। ये लोग आवाज लगाकर माल विक्रय के लिए प्रस्तुत करते हैं, जैसे– हर माल मिलेगा पाँच या दस रूपये में, छोटो बीनों पाँच रूपया, पहले आओ पहले पाओ या वह इन्हीं शब्दों का बोर्ड लिखकर टांग देते हैं। प्रायः ये व्यापारी किसी मुख्य बाजार की सड़क पर सामान को सजाकर या ठेली में रखकर आवाजें लगाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **दीर्घस्तरीय फुटकर व्यापारी**– इस प्रकार का व्यापार दीर्घ स्तर पर होता है। इसे या तो उत्पादक स्वयं करते हैं या इन दुकानों का संचालन करने वाले लोग सीधे उत्पादकों से सामान खरीदते हैं। दीर्घ स्तरीय फुटकर व्यापार के अनेक प्रकार हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(i) **विभागीय भण्डार**– विभागीय भण्डार में दीर्घ स्तर पर फुटकर व्यापार होता है जिसमें एक छत के नीचे एक ही दुकान में ग्राहकों को सभी प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। इनमें प्रत्येक वस्तु के लिए अलग–अलग काउन्टर बने होते हैं, जहाँ पर विक्रयकर्त्ता लोग वस्तुओं की बिक्री करते है।

(ii) **बहुसंख्यक दुकानें**– ये दुकानें एक ही स्वामित्व में अनेक फुटकर व्यापार की दुकानें एक ही शहर के विभिन्न स्थानों पर अन्यथा विभिन्न शहरों में एक ही प्रकार की वस्तुओं की दुकानें होती हैं। इन दुकानों पर प्रायः एक ही उत्पादक का सामान बेचा जाता है, किन्तु ग्राहकों की सुविधा के लिए अन्य वस्तुएँ भी रखी जा सकती हैं।

(iii) **विशाधिकार दुकानें**– ये ऐसी दुकानें हैं जो किसी विशेष उत्पादक/निर्माता के माल का विक्रय करती हैं। ये दुकानें उत्पादक या निर्माता से यह शर्त तय कर लेती है कि वे एक निश्चित क्षेत्र में माल का विक्रय इनकी दुकान के माध्यम से ही करेंगे। ऐसी दुकानों की क्रय–विक्रय नीति, प्रचार एवं विज्ञापन सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण उत्पादक द्वारा ही किया जाता है।

(iv) **सुपर बाजार**– यह बाजार स्वयं सेवा के आधार पर विभिन्न प्रकार की दैनिक वस्तुओं का, कम लाभ पर नकद विक्रय करती है। इन संस्थाओं द्वारा खाद्य पदार्थों, घरेलू उपयोग की सामग्रियाँ, जैसे–साबुन, कपड़ा, सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री आदि का विक्रय किया जाता है।

(v) **उपभोक्ता सहकारी भण्डार**– ऐसे भण्डारों/दुकानों की स्थापना उपभोक्ताओं द्वारा की जाती है। उपभोक्ता लोग मिलकर अंश खरीदकर पूँजी जुटाते हैं एवं अपनी दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ सीधे उत्पादकों से खरीदकर अपने सदस्य उपभोक्ताओं को बिना किसी प्रकार का विशेष लाभ कमाये बेचते हैं।

(vi) **डाक द्वारा व्यापार**– डाक द्वारा व्यापार में उत्पादक डाक द्वारा ग्राहकों से आदेश प्राप्त करते हैं एवं डाक के माध्यम से ही वस्तुएँ बेचते हैं। यह व्यापार हल्की वस्तुएँ के लिए अच्छा रहता है, किन्तु इसमें ग्राहकों के साथ धोखाधड़ी होने की सम्भावना अधिक होती है। इस प्रकार के फुटकर व्यापार में क्रेता–विक्रेता के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता है।

(vii) **किराया–क्रय पद्धति**– यह ग्राहकों को उधार माल विक्रय करने की एक पद्धति है। इसमें क्रेता–विक्रेता के मध्य एक ठहराव किया जाता है, जिसमें क्रेता वस्तु के विक्रय मूल्य के बदले में कुछ राशि का तुरन्त भुगतान कर देता है एवं शेष राशि का भुगतान सामयिक किश्तों में करने का वचन देता है।

(II) वस्तु के आधार पर–

1. **सामान्य वस्तु फुटकर व्यापारी**– ये ऐसे विक्रता होते हैं जिनके पास उपभोक्ता के सामान्य उपयोग की विभिन्न वस्तुएँ, विभिन्न किस्मों में उपलब्ध होती है। साधारण दुकानदार एवं विभागीय भण्डार इसी प्रकार के व्यापारी कहे जाते हैं।

2. **एक पंक्ति फुटकर व्यापारी**– ऐसे फुटकर व्यापारी/विक्रेता होते हैं जो एक ही उत्पाद पंक्ति में व्यवसाय करते हैं, जैसे– फर्नीचर विक्रेता के यहाँ सभी प्रकार के फर्नीचर और पुस्तक विक्रेता के यहाँ स्टेशनरी एवं पुस्तकें मिलेगी। इसी प्रकार दवाइयाँ, खेती के औजार, खेल का मैदान, बिजली का सामान एवं घी आदि व्यवसाय ऐसे ही फुटकर व्यापार के माध्यम से किये जाते हैं।

3. **विशिष्ट वस्तु के फुटकर व्यापारी**– ऐसे फुटकर व्यापारी जो उत्पाद पंक्ति के किसी एक मद का क्रय–विक्रय करते हैं, विशिष्ट वस्तु के विक्रेता कहलाते हैं, जैसे– कपड़े के व्यापारी द्वारा साड़ियाँ या केवल गर्म कपड़े, हौजरी विक्रेता द्वारा केवल बनियान एवं चड्डी बेचना तथा जूते विक्रेता द्वारा जूतें एवं चप्पलें बेचना आदि। यह विक्रेता अपनी मदों से सम्बन्धित सभी किस्मों का माल रखते हैं।

(III) स्वामित्व के आधार पर –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **स्वतन्त्र दुकानें**– ये ऐसी फुटकर दुकानें होती हैं जो व्यापारी द्वारा स्वतन्त्र ढंग से चलायी जाती हैं, जिनका स्वामित्व एवं नियन्त्रण एक ही व्यक्ति के हाथ में होता है। इन स्वामियों को 'साधारण दुकानदार' कहा जाता है।

2. **प्रसंविदा दुकानें**– ऐसे फुटकर व्यापारी जो अपनी–अपनी दुकान का कार्य स्वयं करते हैं लेकिन व्यवसाय सम्बन्धी बहुत से कार्य अन्य व्यवसायियों के साथ करते हैं, जैसे– माल का सामूहिक क्रय, सामूहिक विज्ञापन एवं सामूहिक ब्राण्ड का विकास आदि।

3. **सहकारी भण्डार**– ऐसे भण्डार जो अनेक व्यक्तियों द्वारा अपने पारस्परिक हितों के लिए चलाये जाते हैं, सहकारी भण्डार कहलाते हैं। इन भण्डारों के द्वारा सदस्यों को ही माल का विक्रय किया जाता है एवं अनेक प्रकार की सुविधाएँ भी दी जाती हैं। सामान्यतया इनका व्यवसाय नकद होता है।

(IV) कार्य के आधार पर–

1. **पूर्ण सेवा फुटकर व्यापारी**– ऐसे फुटकर व्यापारी जो ग्राहक के दुकान पर आने पर उसकी माँग के अनुसार वस्तु काउन्टर पर दिखाता है, पूर्ण सेवा फुटकर विक्रेता कहलाता है। अधिकांश फुटकर व्यापारी इसी प्रकार के होते है। सामान्यतया ऐसी वस्तुओं के विक्रय में जिनके प्रदर्शन एवं गुणों की तुलना करना विक्रेता के लिए आवश्यक होता है, यह रीति अपनायी जाती है।

2. **सुपर बाजार**– यह एक ऐसी विक्रय व्यवस्था है, जिसमें व्यापार बड़े पैमाने पर किया जाता है। इनकी स्थापना बड़े–बड़े नगरों में होती है। वस्तुओं की बिक्री नकद की जाती है तथा वस्तुओं को विभिन्न खिड़कियों एवं रेकस में सजाकर रखा जाता है और ग्राहकों को वस्तुओं के चुनाव की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।

3. **कटौती गृह**– ये ऐसे फुटकर विक्रेता है जो प्रसिद्ध ब्राण्डों में ही व्यापार/व्यवहार करते हैं। वस्तुओं की बिक्री पर मूल्यों में कटौती करते हैं। इसके ग्राहक इनकी ओर अधिक आकर्षित होते हैं।

4. **स्वचालित म□ीन विक्रय**– इसमें विक्रय कार्य विक्रेता की उपस्थिति के बिना स्वयं मशीन द्वारा होता रहता है। यह कार्य विक्रय मशीन से सम्पादित होता है। इसे सिक्का स्वचालित मशीनें भी कहा जाता है। इसमें एक ही वस्तु का व्यवसाय होता है। मशीन में सिक्का या टोकन डालने से वस्तु का प्रमापित पैकिट बाहर आ जाता है। जैसे– वजन तुलने की मशीन, दूध की थैली आदि।

फुटकर व्यापारी की सेवाएँ Services of Retailers

आधुनिक वितरण–माध्यम में फुटकर व्यापारियों का विशेष महत्व है। फुटकर व्यापारी अपनी सेवाओं में उत्पादक, थोक व्यापारी एवं उपभोक्ताओं को अनेक प्रकार से लाभान्वित करते हैं। इस प्रकार फुटकर व्यापारी द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएँ मुख्यतः निम्नलिखित हैं–

(I) उत्पादकों/निर्माताओं के प्रति सेवाएँ–

1. **नव–निर्मित माल का विक्रय**– उत्पादक की वस्तु का बाजार बनाने वाले फुटकर व्यापारी प्रमुख व्यक्ति होते हैं। वे अपने प्रभुत्व एवं चतुराई से बिक्री कर देते हैं। ये प्रायः विक्रयकला में दक्ष होते हैं।

2. **उपभोक्ताओं की रूचि एवं फै□ान का ज्ञान**– फुटकर व्यापारी का उपभोक्ता से सीधा सम्बन्ध होता है। वह उत्पाद के बारे में उपभोक्ता की राय जानने का प्रयत्न करता है। उपभोक्ता जिस प्रकार के उत्पाद को अधिक पसन्द करते हैं, उनके बारे में थोक व्यापारी को अवगत करा दिया जाता है जो उत्पादक को सूचित कर देता है और वह उसी के अनुसार उसमें सुधार लाने का प्रयास करता है।

3. **माल के दोशों से अवगत कराना**– फुटकर व्यापारी को उपभोक्ताओं से माल के दोषों के बारे में जो सूचनाएँ प्राप्त होती है, वे उनसे उत्पादकों को सूचित करते हैं ताकि वस्तु के गुणों में सुधार किया जा सके।

4. **विज्ञापन करना**– यद्यपि उत्पादक विज्ञापन सामग्री भी प्रदान करते हैं, किन्तु फुटकर व्यापारियों के सहयोग के बिना वे इसका उपयोग नहीं कर सकते हैं। फुटकर व्यापारी निर्माताओं की वस्तुओं के बारे में क्रियात्मक प्रदर्शन करते हैं और ग्राहकों को वस्तुओं के गुणों से अवगत कराते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(II) थोक व्यापारियों के प्रति सेवाएँ–

1. **विक्रय चिन्ता से मुक्ति–** फुटकर व्यापारी थोड़ा–थोड़ा करके थोक व्यापारियों से पर्याप्त मात्रा में माल खरीदते हैं और आवश्यकतानुसार थोड़ी–थोड़ी मात्रा में उपभोक्ताओं को विक्रय करते हैं। इससे थोक व्यापारी अपने द्वारा संग्रहीत माल को बेचने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है और उन्हें विक्रय चिन्ता से मुक्त करना है।

2. **लाभों में वृद्धि–** फुटकर व्यापारी वस्तुओं के गुणों एवं उपयोगिताओं से उपभोक्ताओं को अवगत कराके उनको लोकप्रिय बनाते हैं। परिणामस्वरूप वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है और थोक व्यापारियों को अधिक लाभ होता है।

3. **विक्रय असुविधा से मुक्ति–** असंख्य उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकतानुसार थोड़ा–थोड़ा माल बेचने का कार्य बड़ा असुविधाजनक होता है। किन्तु फुटकर व्यापारी यह कार्य अपने ऊपर लेकर थोक व्यापारियों को कठिनाइयों से मुक्ति दिलाता है।

4. **रूचि परिवर्तन की सूचना–** फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहता है। उसको उपभोक्ताओं की रूचि, आदत एवं फैशन आदि में होने वाले परिवर्तनों का तुरन्त ज्ञान हो जाता है। फुटकर व्यापारी द्वारा ये सूचनाएँ थोक व्यापारी तक पहुँचा दी जाती है।

5. **स्थानीय विज्ञापन से मुक्ति–** फुटकर व्यापारी का बाजार स्थानीय होता है। अतः अपनी वस्तु तथा दुकान का स्थानीय विज्ञापन वह स्वयं करता है एवं थोक व्यापारी इस कार्य से मुक्त हो जाता है।

6. **उपभोक्ताओं से सम्पर्क रखने से छुटकारा–** यदि वितरण मध्यस्थ/श्रृंखला में फुटकर व्यापारी का स्थान न हो तो थोक व्यापारी को उपभोक्ता से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना पड़ेगा जिसमें थोक व्यापारी को समय एवं श्रम दोनों की ही आवश्यकता होगी। लेकिन फुटकर व्यापारी उपभोक्ता के मध्य रहते हैं और उनसे सम्पर्क रखते हैं। अतः थोक व्यापारी को इस कार्य से छुटकारा मिल जाता है।

7. **अधिक विक्रय में सहायता–** फुटकर व्यापारी के व्यक्तिगत सम्पर्क एवं व्यवहार के कारण उपभोक्ताओं को अनुग्रह एवं आग्रह करके वस्तुएँ बेचते हैं और उपभोक्ता उनकी राय पर वस्तु का क्रय करते हैं। इस प्रकार थोक व्यापारी की बिक्री में वृद्धि करते हैं।

(III) उपभोक्ताओं के प्रति सेवाएँ–

1. **ताजा एवं नया माल उपलब्ध कराना–** फुटकर व्यापारी उतना ही माल दुकानों में संग्रहीत करते हैं जितना शीघ्र बिक जाने की इनको आशा होती है। अतः हर बार नया माल मँगाने के कारण उपभोक्ताओं को ताजा माल मिलता है।

2. **माल संग्रहण से मुक्ति–** फुटकर व्यापारी अपनी दुकानों में उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की विभिन्न वस्तुओं की बिक्री हेतु हर समय तैयार रखते हैं। फलस्वरूप उपभोक्ताओं को इस बात का विश्वास रहता है कि जब भी आवश्यकता होगी, उनको वस्तुएँ तुरन्त फुटकर व्यापारी से प्राप्त हो जाएगी और वे अपने घरों में वस्तुओं का अनावश्यक संग्रह नहीं करेंगे।

3. **माल को बदलने एवं लौटाने की सुविधा–** फुटकर व्यापारी अपने ग्राहकों को सब तरह से संतुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इस दृष्टि से वे खराब एवं ग्राहकों द्वारा अस्वीकृत माल को लौटा देते हैं और बदल देते हैं। इस प्रकार उपभोक्ताओं के ठगे जाने अथवा धोखा खाने की संभावना न्यूनतम होती है।

4. **उधार की सुविधा–** यद्यपि फुटकर व्यापारी वस्तु का विक्रय प्रायः नकद ही करते हैं तथापि अपने स्थायी ग्राहकों को कभी–कभी उचित उधार की सुविधा दी जाती है। कुछ फुटकर व्यापारी आसान किश्तों पर भी माल बेचते हैं।

5. **फै□ान एवं मौसम के अनुकूल वस्तुएँ सुलभ–** फुटकर व्यापारियों को इस बात का पूर्ण ज्ञान होता है कि कौन–कौनसे मौसम में किस वस्तु की माँग अधिक होती है। नवीनतम फैशन एवं पसन्द आदि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का भी इन्हें पूरा–पूरा ज्ञान होता है। अतः फैशन एवं मौसम के अनुकूल उपभोक्ताओं को वस्तुएँ उपलब्ध कराते हैं।

6. **समय की बचत**– फुटकर व्यापारी का सदैव यही प्रयास रहता है कि वह उपभोक्ताओं के अधिकाधिक निकट रहे। इसीलिए वह अपनी दुकान नगर के मुख्य बाजार अथवा घनी बस्ती में खोलता है। फुटकर व्यापारी को निकटता के कारण उपभोक्ताओं को अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने के लिए इधर–उधर अधिक भटकना नहीं पड़ता, जिससे उनका समय बच जाता है।

7. **नई वस्तुओं की सूचना**– उपभोक्ताओं को नव–निर्मित वस्तुओं के बारे में जानकारी देने का उत्तम माध्यम फुटकर व्यापारी है। फुटकर व्यापारी नई वस्तु के नाम, गुण, उपयोग आदि से उपभोक्ताओं को अवगत कराते हैं जिससे उनके ज्ञान में भी वृद्धि होती है।

8. **विशेषज्ञ सलाह**– फुटकर व्यापारी अनेक उत्पादकों की विभिन्न वस्तुओं में व्यवहार करते हैं। अतः उनको वस्तुओं के तुलनात्मक गुणों–अवगुणों का व्यावहारिक ज्ञान हो जाता है और वे अपने ग्राहकों को एक वस्तु–विशेष के बारे में विशेषज्ञ सलाह देने में समर्थ हो जाते हैं।

9. **चुनाव की सुविधा**– फुटकर व्यापारी को प्रत्येक उपभोक्ता की व्यक्तिगत आवश्यकता की पूर्ति करनी पड़ती है। इस दृष्टि से वह प्रत्येक आवश्यकता को पूरी करने वाली विभिन्न वस्तुएँ अपनी दुकान में रखता है। उपभोक्ताओं को उनमें से अपनी रूचि तथा पसन्द की वस्तु का चुनाव करने में व्यापक सुविधा रहती है।

10. **अतिरिक्त सेवाएँ**– फुटकर व्यापारी अपने विशेष ग्राहकों को उनके घरों पर माल पहुँचाने की भी सुविधा प्रदान करते हैं। ये ग्राहकों की आवभगत करते हैं और उनको उचित सम्मान भी देते हैं।

थोक व्यापारी एवं फुटकर व्यापारी में अंतर

Difference in Wholesaler and Retailer

अन्तर का आधार		थोक व्यापारी	फुटकर व्यापारी
1.	अर्थ–	थोक व्यापारी वह व्यक्ति या व्यावसायिक संस्था है जो उत्पादकों से बड़ी मात्रा में माल खरीद कर फुटकर व्यापारियों एवं औद्योगिक प्रयोक्ताओं को थोड़ी–थोड़ी मात्रा में विक्रय करते हैं।	जबकि यह एक ऐसा व्यापारी है जो थोक व्यापारी अथवा उत्पादकों से माल खरीदकर उपभोक्ताओं को थोड़ी–थोड़ी मात्रा में आवश्यकता–नुसार बेचता है।
2.	मध्यस्थों की कड़ी	यह माल के उत्पादक एवं फुटकर व्यापारी के बीच की कड़ी है।	जबकि यह थोक व्यापारी एवं उपभोक्ता के बीच की कड़ी है।
3.	क्रय–विक्रय	ये उत्पादकों से माल खरीदकर फुटकर व्यापारियों को बेचते हैं।	जबकि ये थोक व्यापारियों से माल खरीदकर उपभोक्ताओं को बेचते हैं।
4.	पूँजी की आवश्यकता	इनको अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है क्योंकि इनका क्षेत्र फुटकर व्यापारी की तुलना में अधिक विस्तृत होता है।	जबकि फुटकर व्यापारी को कम पूँजी की आवश्यकता होती है क्योंकि इसका क्षेत्र सीमित होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.	क्रय–विक्रय नीति	ये प्रायः माल नकद क्रय करते हैं। ये माल का नकद विक्रय कम करते हैं, उधार विक्रय ज्यादा करते हैं।	जबकि ये प्रायः उधार क्रय करते हैं। ये माल का नकद विक्रय अधिक करते हैं और उधार विक्रय कम करते हैं।
6.	वस्तुओं की संख्या	ये प्रायः एक वस्तु अथवा उसकी विभिन्न किस्मों में व्यवहार करते हैं।	जबकि ये अनेक प्रकार की वस्तुओं का विक्रय करते हैं।
7.	व्यापार का क्षेत्र	थोक व्यापारी का कार्य बहुत से स्थानों एवं शहरों तक फैला हुआ होता है।	जबकि इनका कार्य साधारणतया एक ही स्थान पर रहता है।
8.	जोखिम की मात्रा	इसमें फुटकर व्यापार की तुलना में जोखिम अधिक होती है।	जबकि इनकी जोखिम अपेक्षाकृत कम होती है।
9.	उपभोक्ताओं से सम्पर्क	थोक व्यापारी का उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष /सीधा सम्पर्क नहीं होता है।	जबकि इनका उपभोक्ताओं से सीधा सम्बन्ध होता है।
10.	व्यापार स्थल	यह अपनी दुकान उस स्थान पर खोलता है, जहाँ फुटकर व्यापारी आसानी से पहुँच सकें।	जबकि यह अपनी दुकान उपभोक्ता केन्द्रों के निकट स्थापित करता है।
11.	दुकान की सजावट	ये दुकान की सजावट पर विशेष ध्यान नहीं देते हैं क्योंकि इनका उद्देश्य जन साधारण को आकर्षित करना नहीं होता है।	जबकि ये दुकान की सजावट पर विशेष ध्यान देते हैं क्योंकि इनका उद्देश्य जन–साधारण को आकर्षित करना होता है।
12.	विक्रय कला में दक्षता	थोक व्यापारी के लिए विक्रयकला में दक्ष होना अधिक महत्व नहीं रखता है।	जबकि फुटकर व्यापारी का विक्रयकला में दक्ष होना आवश्यक है।
13.	साख–सुविधाएँ	थोक व्यापारी की साख–सुविधाएँ अधिक होती हैं क्योंकि ये व्यापारी उधार अधिक तथा नकद कम करते हैं।	जबकि इनकी साख–सुविधाएँ सीमित होती हैं क्योंकि ये नकद व्यापार करते हैं।
14.	स्थान का चुनाव	थोक व्यापारियों के लिए स्थान का विशेष महत्व नहीं होता है क्योंकि इन्हें ग्राहकों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए सजावट की आवश्यकता नहीं होती है।	जबकि इसके लिए एक विशेष स्थान के चुनाव की आवश्यकता होती है, जहाँ पर कि ग्राहक अधिक से अधिक मात्रा में पहुंच सके। उसे अपनी दुकान को सजाकर रखना होता है, जिससे कि ग्राहक उसकी ओर आकृष्ट हो।
15.	संख्या	थोक व्यापारियों की संख्या फुटकर व्यापारियों की तुलना में बहुत कम होती है।	जबकि इनकी संख्या थोक व्यापारियों की तुलना में बहुत अधिक होती है।
16.	माल का संग्रह	थोक व्यापारी भारी मात्रा में माल का संग्रह रखते है।	जबकि ये बहुत कम मात्रा में माल का संग्रह रखते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

17.	वर्गीकरण या प्रकार	थोक व्यापारी का कोई विशेष वर्गीकरण नहीं होता है।	जबकि फुटकर व्यापारी दो प्रकार के होते हैं– (i) लघुस्तरीय फुटकर व्यापारी– फेरीवाले (ii) दीर्घस्तरीय फुटकर व्यापारी– विभागीय भण्डार, बहुविक्रय–शालाएँ सुपर बाजार आदि।
18.	माल का पुनः विक्रय	थोक व्यापारी द्वारा बेचे गये माल का पुनः विक्रय होता है।	जबकि इनके द्वारा बेचा गया माल पुनः नहीं बिकता है।
19.	विज्ञापन	इसे विज्ञापन पर काफी खर्च करना पड़ता है।	जबकि इसे विज्ञापन पर कम खर्च करना पड़ता है।
20.	सेवाएँ	थोक व्यापारी उत्पादक एवं फुटकर व्यापारी की सेवा करता है।	जबकि यह थोक व्यापारी एवं उपभोक्ता दोनों की सेवा करता है।

दीर्घ या वृहद्स्तरीय फुटकर व्यापारी : (1) विभागीय भण्डार, (2) बहुसंख्यक दुकानें, (3) विशाधिकार दुकानें, (4) सुपर बाजार, एवं (5) उपभोक्त सहकारी भण्डार

दीर्घ या वृहद्स्तरीय फुटकर व्यापारी/व्यापार से आशय उस व्यापार से होता है जिसमें अधिक पूँजी लगायी जाती है और एक ही संगठन के अधीन बड़े पैमाने पर अधिकतम उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। इनमें एक विशिष्ट वस्तु अथवा विभिन्न वस्तुएँ बेची जाती हैं। इस प्रकार यह व्यापार गृह आधुनिक युग की देन है। ये प्रायः शहरों या महानगरों में स्थित होते हैं। ये विशाल भवनों में स्थित होते हैं। इनके अन्तर्गत वस्तुएँ सुव्यवस्थित ढंग से अलग–अलग विभागों में रखी जाती हैं। ये व्यापार–गृह बड़ी मात्रा में उच्च–कोटि के स्थानीय एवं विदेशी माल का क्रय–विक्रय करते हैं।

दीर्घ या वृहद्स्तरीय फुटकर व्यापारी के प्रकार अग्रलिखित हैं–

(1) विभागीय भण्डार–

विभागीय भण्डार का अर्थ सामान्यतः ऐसे विशाल भण्डार से है जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का विक्रय किया जाता है। जिसके अन्तर्गत एक ही भवन में अनेक विभाग होते हैं, प्रत्येक विभाग एक विशेष प्रकार की वस्तु में व्यवहार करता है तथा स्वयं में एक पूर्ण इकाई होता है।

विभागीय भण्डार की मुख्य–मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. **एस.ई.टॉमस के भाब्दों में,** ''विभागीय भण्डार एक वृहद्स्तरीय फुटकर व्यापारिक संस्थान होता है जिसमें एक ही भवन में अनेक विभाग होते हैं तथा प्रत्येक विभाग एक विशिष्ट वस्तु में व्यवहार करता है और अपने नाम में पूर्ण होता है।''
2. **कण्डिफ एवं स्टिल के अनुसार,** ''एक विभागीय भण्डार बड़ी मात्रा में फुटकर व्यापार करने वाली संस्था है जो विभिन्न प्रकार की विशिष्ट एवं कीमती वस्तुओं का विक्रय करती है, जो संवर्द्धन सेवा एवं नियन्त्रण के उद्देश्य से विभिन्न विभागों में विभक्त करती है।''
3. **जी.बी.गाइल्स के भाब्दों में,** ''विभागीय भण्डार वास्तव में एक ही स्वामित्व एवं छत के नीचे दुकानों (विभागों) का संग्रह है, जिसकी प्रत्येक दुकान (विभाग) में एक विशिष्ट प्रकार की वस्तु का विक्रय होता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है, प्रायः प्रत्येक विभाग स्वयं माल क्रय करता है, अपना स्टॉक नियन्त्रित करता है, अपनी विक्रय नीतियाँ निर्धारित करता है।''

इस प्रकार विभागीय भण्डार एक ऐसी फुटकर संस्था है जो एक ही छत के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में व्यापार करती है, जो निश्चित विभागों में संवर्द्धन, सेवा, लेखा एवं नियन्त्रण आदि उद्देश्यों से विभाजित है। यह एक बड़ा भण्डार है जो विशेषतः स्त्री ग्राहकों को सुविधाएँ प्रदान करता है। जैसे– रिलायन्स मेगा मार्ट।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर विभागीय भण्डार में निम्नलिखित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं–

1. विभागीय भण्डार में एक ही छत के नीचे अनेक विभाग होते हैं।
2. इसमें छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु उपभोक्ताओं को उपलब्ध करायी जाती है।
3. इसके सभी विभागों का प्रशासन एक केन्द्रीय सत्ता में निहित होता है, जो भण्डार का स्वामी होता है।
4. यह शहर के मध्य में स्थित होते हैं और ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए भवन की सजावट आदि की जाती है।
5. इन भण्डारों में नियुक्त विक्रेता विक्रय कार्य में कुशल होते हैं।
6. यद्यपि यह फुटकर व्यापार का एक स्वरूप है, लेकिन इसके व्यवसाय में थोक व्यापारी मध्यस्थ नहीं होते हैं। इसलिए इनका उत्पादकों से सीधा सम्पर्क होता है।
7. इनके द्वारा ग्राहकों को अनेक निःशुल्क सेवाओं की व्यवस्था की जाती है, जैसे– ग्राहकों के लिए बैठने का स्थान, डाकखाना, पार्किंग, फोन द्वारा क्रय सुविधा आदि।
8. इनका लाभ ग्राहकों को उच्च कोटि की व्यक्तिगत सेवा प्रदान करना होता है।
9. ये उच्च किस्म की वस्तुओं का ही विक्रय करने को प्राथमिकता देते हैं।

(I) स्वामियों अथवा संस्थाओं को लाभ–

1. **बड़े पैमाने पर क्रय के लाभ**– विभागीय भण्डारों द्वारा थोक व्यापारियों की भाँति बड़ी मात्रा में माल का क्रय किया जाता है। इससे विभागीय भण्डार को एक तो माल सस्ता मिल जाता है एवं दूसरा भाड़े आदि में भी बचत हो जाती है। इसका कारण यह है कि इन भण्डारों के क्रय विशेषज्ञ प्रशिक्षित होते हैं जो उन स्थानों से माल का क्रय करते हैं, जहाँ अच्छी तथा सस्ती वस्तु मिलती है।
2. **श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण के लाभ**– ये भण्डार बड़े पैमाने पर व्यवसाय करते हैं। प्रत्येक कार्य या विभाग के लिए विशेषज्ञ नियुक्त करते हैं। परिणामस्वरूप समय एवं श्रम की बचत होती है, रूचि एवं ज्ञान का पूर्ण उपयोग होता है एवं उन्हें उत्तरदायित्व ठहराया जा सकता है।
3. **विज्ञापन में मितव्ययिता**– विभागीय भण्डारों में अनेक विभाग होते हैं एवं प्रत्येक विभाग का संयुक्त विज्ञापन किया जा सकता है। यदि कुछ विभागों के लिए पृथक्–पृथक् माध्यमों को भी अपनाया जाए तो कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है।
4. **अधिक बिक्री**– ये भण्डार नगर एवं महानगरों में, धनी बस्ती के निकट प्रमुख बाजारों में खोले जाते हैं। परिणामतः बड़ी संख्या में ग्राहक यहाँ माल खरीदने आते हैं जिससे बिक्री एवं लाभ में वृद्धि होती है।
5. **क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त के लाभ**– चूंकि विभागीय भण्डार में कई विभाग होते हैं जिनका संचालन एक साथ किया जाता है। अतः यदि किसी कारणवश किसी विभाग में हानि होती है तो उसकी पूर्ति अन्य विभागों में होने वाले लाभों से की जाती है। इस प्रकार कुल परिणाम लगभग स्थिर रहते हैं।
6. **व्यापार का विकास**– विभागीय प्रबन्धकों का सम्पूर्ण ध्यान वस्तु की बिक्री एवं विभाग के विकास पर केन्द्रित रहता है क्योंकि उसको आर्थिक समस्याओं को हल नहीं करना पड़ता है, फलस्वरूप व्यापार बहुत उन्नति करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. **निजी ब्राण्ड**– चूंकि विभागीय भण्डार बड़ी मात्रा में निर्माता से सीधे माल का क्रय करते हैं। अतः वे यहाँ तो निर्माता से उक्त माल पर उनका निजी ब्राण्ड डालने का अनुरोध कर सकते हैं अथवा उक्त माल पर स्वयं अपना निजी ब्राण्ड डाल सकते हैं। निजी ब्राण्ड डालने से विक्रय में स्थायित्व तथा वृद्धि होती है तथा लाभों में भी अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है क्योंकि उक्त ब्राण्ड का माल केवल उन्हीं के यहाँ उपलब्ध होगा।

8. **अनुसंधान**– ये भारी मात्रा में क्रय–विक्रय करते हैं, परिणामस्वरूप लाभ अधिक होते हैं। इन लाभों में से थोड़ा साधन अनुसंधान कार्य पर भी सरलता से व्यय कर सकते हैं।

(II) ग्राहकों एवं समाज को लाभ–

1. **समय की बचत**– ग्राहक को उसकी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती है। इससे ग्राहकों को वस्तुएँ खरीदने के लिए दूर–दूर नहीं जाना पड़ता है, फलस्वरूप ग्राहकों के समय में बचत होती है।

2. **उत्तम माल**– विभागीय भण्डारों में क्रय करने वाले अधिकतर व्यक्ति धनी वर्ग के होते हैं जो अच्छी वस्तुएँ क्रय करना पसन्द करते हैं। अतः ग्राहकों को उत्तम श्रेणी का माल उपलब्ध हो जाता है।

3. **कु□ाल विक्रेताओं की सेवाएँ**– विभागीय भण्डारों में कुशल विक्रेताओं की नियुक्ति की जाती है, जो प्रशिक्षित होते हैं और ग्राहकों की आवश्यकता समझ कर उन्हें उचित माल का विक्रय करते हैं। परिणामस्वरूप ग्राहकों के धन का अपव्यय नहीं होता है।

4. **नई एवं ताजा वस्तुओं की उपलब्धि**– इन भण्डारों में बिक्री की आवृत्ति अधिक होती है, जिससे दिन–प्रतिदिन की वस्तुओं का क्रय किया जाता है। फलतः ग्राहकों को उत्तम एवं ताजा वस्तुएँ मिलती हैं और नई–नई वस्तुओं की भी जानकारी होती है।

5. **वस्तुओं के चुनाव की सुविधा**– विभागीय भण्डारों में विभिन्न प्रकार एवं विभिन्न किस्मों की वस्तुएँ रहती हैं, जिससे ग्राहकों को अपनी रूचि की वस्तु छांटने के लिए चुनाव की व्यापक सुविधा मिलती है।

6. **आधुनिकता का प्रतीक**– परम्परागत फुटकर व्यापार की तुलना में इन भण्डारों में नयापन दृष्टिगोचर होता है। अतः आधुनिकता के प्रतीक स्वरूप इन भण्डारों में अन्य फुटकर व्यापार गृहों की अपेक्षा अधिक ग्राहक आकर्षित होते हैं।

7. **सेवा तत्व**– विभागीय भण्डारों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ग्राहकों को हर प्रकार की सुविधाएँ पहुंचाना होता है। ये अपने सेवाभाव से ग्राहकों को सदैव के लिए अपना लेते हैं। फलतः इनके यहाँ भावों में मोल–तोल करने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। सेवा तत्व के कारण ही विभागीय भण्डार अन्य फुटकर व्यापारियों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है।

8. **ज्ञान में वृद्धि**– विभागीय भण्डार आधुनिकता के प्रतीक माने जाते हैं। अतः ग्राहकों को नये से नये फैशन, नवीनतम किस्में तथा सुझाव आदि देकर ग्राहकों एवं समाज के ज्ञान में वृद्धि करते हैं।

विभागीय भण्डार की हानियाँ–

यहाँ विभागीय भण्डारों से स्वामियों एवं ग्राहकों को लाभ होता है, वहाँ उन्हें हानियाँ भी होती हैं, जो निम्नलिखित हैं –

(I) स्वामियों अथवा संस्थाओं को हानि–

1. **अत्यधिक पूँजी की आव□यकता**– विभागीय भण्डारों के लिए विशालकाय भवन, अनेक कर्मचारियों की नियुक्ति, भारी मात्रा में वस्तुओं का स्टॉक आदि आवश्यक बातें होती हैं। अतः इनकी स्थापना में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

2. **संचालन की ऊँची लागत**– विभागीय भण्डारों के संचालन की लागत बहुत ऊँची आती है। इसका कारण यह है कि यह भण्डार ग्राहकों को अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करते हैं, जैसे– घर पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

निःशुल्क सुपुर्दगी, मनोरंजन केन्द्र, वाचनालय, पार्किंग एवं स्नानगृह आदि। यही नहीं, चमक–दमक एवं उच्च कोटि की विक्रय सेवा में व्यय भी अधिक होते हैं।

3. **सीमित क्षेत्र**– विभागीय भण्डारों का व्यापारिक क्षेत्र सीमित हो जाता है क्योंकि इनका विशेष ध्यान धनी लोगों पर अधिक, सामान्य लोगों पर कम रहता है। ये हमारे यहाँ केवल कुछ प्रमुख नगरों में अंगुलियों पर गिने जाने वाली संख्या में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त इनका विकास न होने के कारण यह भी है कि हमारे यहाँ धनिक वर्ग बहुत कम है एवं ऐसे शहरों की संख्या भी कम है, जिनकी संख्या अधिक हो।

4. **हानि के विभागों का भी संचालन**– विभागीय भण्डार में सभी प्रकार की वस्तुओं को सुलभ कराने की दृष्टि से अनेक ऐसे विभाग भी चलाने पड़ते हैं जो लाभप्रद नहीं हैं। परिणामतः लाभ पाने वाले विभागों का लाभ भी समाप्त हो जाता है।

5. **कर्मचारी समस्या**– विभागीय भण्डारों की कार्यप्रणाली में अनेक कुशल एवं विशेषज्ञ कर्मचारियों की नियुक्ति करनी पड़ती है, जिनकी कमी है। इनके चयन, प्रशिक्षण, पदोन्नति एवं स्थानान्तरण करना धीरे–धीरे एक समस्या बन जाती है।

6. **अनुपयुक्त स्थिति**– विभागीय भण्डार के लिए आकर्षक विशाल भवन की आवश्यकता होती है, लेकिन ऐसा भवन मुश्किल से ही मिल पाता है। यदि मिलता भी है तो उसके लिए इतना अधिक किराया देना पड़ता है, जिसका व्यापार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

7. **निरीक्षण एवं नियन्त्रण में कठिनाई**– इन भण्डारों में अनेक विभाग होने एवं कर्मचारियों की संख्या अधिक होने के कारण समय–समय पर उनके कार्य का निरीक्षण एवं नियंत्रण करना एक आवश्यक कार्य बन जाता है। लेकिन इस कार्य में अनेक कठिनाइयाँ होती हैं।

8. **समन्वय का अभाव**– प्रत्येक विभाग का अलग–अलग संगठन एवं हिसाब–किताब होने के कारण प्रत्येक विभाग अपनी ही बिक्री का ध्यान रखता है, अन्य विभागों की ओर नहीं। इसके अतिरिक्त अधिक लाभ कमाने की भावना भी विभागों के अस्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता को जन्म देती है जिसका समन्वय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(II) ग्राहकों एवं समाज को हानियाँ–

1. **मूल्यों में वृद्धि**– चूंकि विभागीय भण्डार अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करता है, जिसके कारण संचालन व्यय बढ़ जाता हैं। परिणामस्वरूप क्रेताओं की संख्या भी कम हो जाती है। इसलिए केवल धनी वर्ग के लोग ही यहाँ आने का साहस कर सकते हैं।

2. **निम्न एवं मध्यम आय वर्ग के लिए अनुपयुक्त**– इन भण्डारों में विभागों के अन्तर्गत एक तो बहुत ही अच्छी किस्म की वस्तुएँ मिलती है और दूसरा बाजार के सामान्य भावों से ऊँचे भावों पर मिलती है। अतः इनकी उपयोगिता केवल उच्च आय वाले व्यक्तियों तक ही सीमित हो जाती है।

3. **असुविधाजनक पहुँच**– ये नगर एवं महानगर के केन्द्र में स्थित होने के कारण सर्वसाधारण के स्थानों से दूर हो जाते हैं। इसलिए साधारण ग्राहकों का जाना सम्भव नहीं। ग्राहक अपने आस–पास के फुटकर विक्रेताओं से ही अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदना अधिक सुविधाजनक समझते हैं।

4. **सामाजिक भेदभाव**– विभागीय भण्डारों में ग्राहकों के साथ भेदभाव बरता जाता है। धनी व्यक्तियों पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा साधारण ग्राहकों की अवहेलना की जाती है।

5. **साख–सुविधाओं का अभाव**– इनमें व्यक्तिगत सम्पर्क के अभाव में साधारण ग्राहकों के लिए साख–सुविधाओं का अभाव रहता है। इसके विपरीत स्थानीय दुकानदार अपने ग्राहकों से व्यक्तिगत सम्पर्क होने के कारण उनकी आसानी से साख पर माल देने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसलिए साख–सुविधाएँ चाहने वाले ग्राहक विभागीय भण्डार से क्रय करना पसन्द नहीं करते हैं।

(2) बहुसंख्यक दुकानें–

बहुसंख्यक दुकानों का अर्थ एवं परिभाशाएँ–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यह दीर्घ–स्तरीय फुटकर व्यापार का वह स्वरूप है जिसके अन्तर्गत एक ही स्वामित्व एवं प्रबन्ध के अधीन एक ही प्रकार का सामान बेचने वाली एवं एक ही सजावट की एक ही शहर में या अलग–अलग स्थानों पर अनेक दुकानें होती है।

बहुसंख्यक दुकानों की मुख्य–मुख्य परिभाशाएँ अग्रलिखित हैं–

1. **नाइस्ट्रोम के अनुसार,** ''श्रृंखला भण्डार दो या दो से अधिक फुटकर भण्डारों का बना संगठन है, जिसका स्वामित्व एवं प्रबन्ध एक प्रबन्धक द्वारा होता है।''

2. **एस.ई.थामस** के शब्दों में, ''इस प्रकार के संगठन में अनेक प्रकार की फुटकर दुकानें होती हैं, जिनका स्वामित्व एक ही व्यक्ति में निहित होता है। ये दुकानें एक शहर या देश के विभिन्न भागों में स्थित होती है तथा इन दुकानों पर एक ही प्रकार की वस्तुओं का विक्रय किया जाता है।''

इस प्रकार बहुसंख्यक दुकानें उस प्रकार की फुटकर व्यापार पद्धति को कहते हैं जिसमें एक ही स्वामित्व में अनेक फुटकर व्यापार की दुकानें एक ही शहर के विभिन्न स्थानों पर अथवा विभिन्न शहरों में एक ही प्रकार की वस्तुओं की दुकानें रहती हैं। उदाहरणार्थ, बाटा शू कम्पनी, लिबर्टी, काटन काउण्टी कुटनस, सिंगर सुइंग मशीन कम्पनी आदि।

बहुसंख्यक दुकानों के लाभ–

बहुसंख्यक दुकानों के लाभ को दो भागों में विभाजित कर अध्ययन कर सकते हैं– व्यवसायियों एवं ग्राहकों को लाभ। इस प्रणाली से प्रत्येक पक्षकार को होने वाले लाभों का विवेचन अग्र प्रकार है–

(I) व्यवसायियों को लाभ–

1. **सामूहिक क्रय से बचत**– बहुसंख्यक दुकानों पर बेचे जाने वाले माल को मुख्य कार्यालय में सामूहिक रूप से क्रय किया जाता है। परिणामस्वरूप संस्था को बड़े पैमाने पर क्रय करने के लाभ प्राप्त होते हैं, जैसे– उत्पादकों से सस्ती दर पर वस्तु मिलना एवं परिवहन व्यय में बचत आदि।

2. **अधिक बिक्री**– ग्राहकों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क होने, प्रमापित माल होने, विशिष्टीकरण होने, माल की ख्याति होने एवं नियमित ग्राहक होने से जहाँ एक ओर माल शीघ्र बिक जाता है तो दूसरी ओर विक्रय की मात्रा में भी निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

3. **जोखिम का बंटवारा**– बहुसंख्यक दुकानों में हानि की जोखिम बंट जाती है। यदि एक दुकान पर हानि होती है तो उसकी पूर्ति अन्य दुकान के लाभ से हो जाती है और हानि का भार नहीं खटकता है।

4. **मध्यस्थों का अन्त**– बहुसंख्यक दुकानों के अन्तर्गत समस्त मध्यस्थों का अन्त हो जाता है क्योंकि इसमें उत्पादक अथवा निर्माणी एवं उपभोक्ता में प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित हो जाता है। परिणामस्वरूप व्यवसायियों को लाभ होता है।

5. **वि□शज्ञों की नियुक्ति**– इन दुकानों का बड़ी मात्रा में कारोबार होने के कारण केन्द्रीय कार्यालय में सभी प्रकार के विशेषज्ञों की नियुक्ति करना सम्भव हो जाता है। इस प्रकार उनकी सेवाओं का अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कार्यक्षमता में वृद्धि होने के साथ–साथ बचत भी होती है।

6. **माल के हस्तान्तरण में सुविधा**– बहुसंख्यक दुकानों की विभिन्न शाखाएँ होने के कारण, यदि एक शाखा पर माल स्टॉक में है तो दूसरी शाखा जहाँ पर माल की आवश्यकता है, माल तुरन्त हस्तान्तरित कर दिया जाता है। इससे एक तो माल बिना बिका पड़ा नहीं रहता है तो दूसरा बिक्री में वृद्धि होती है।

7. **अधिक संग्रह की आव□यकता नहीं**– इन दुकानों को माल का अधिक संग्रह करने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि ये अल्प सूचना देकर आवश्यकता की वस्तुएँ चाहे जब केन्द्र से मँगवा लेती है। इस प्रकार नगर के अधिक उपयुक्त व्यापारिक स्थान में छोटी–सी दुकान में ही काम चल जाता है और किराये इतयादि में भी पर्यापत बचत हो जाती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **अनुसंधान की सम्भावनाएँ**– बड़े पैमाने पर कारोबार होने के कारण वस्तु की किस्म, उपयोगिता, निर्माण प्रक्रिया एवं ग्राहकों की आवश्यकताओं तथा अभिरूचियों आदि के बारे में अनुसंधान करना आसान होता है।

(II) ग्राहकों को लाभ–

1. **कम कीमतें**– बहुसंख्यक दुकानें कम कीमतों पर माल का विक्रय कर सकती है। इसका कारण यह है क इनका परिचालन व्यय कम होता है, इनके मध्यस्थ नहीं होते हैं और बड़ी मात्रा में निर्माण या क्रय करने के कारण पर्याप्त बचत होती है।

2. **ठगे जाने की सम्भावना नहीं**– इन दुकानों पर प्रमाणित एवं प्रमापित वस्तुओं का विक्रय किया जाता है और उनका मूल्य भी निश्चित होता है। परिणामस्वरूप ग्राहकों के ठगे जाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है।

3. **सुगम पहचान**– श्रृंखलाबद्ध दुकानों की आन्तरिक एवं बाह्य सजावट एक सी होने के कारण ग्राहकों को इनके पहचानने में विशेष कठिनाई नहीं होती है।

4. **निकटस्थ स्थानों पर विक्रय**– इस प्रकार की दुकानें ग्राहकों के निकटस्थ स्थानों पर स्थापित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त ग्राहकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए एक शहर में इनकी अनेक शाखाएँ भी होती हैं। इन सबके परिणामस्वरूप ग्राहकों को नजदीक ही माल मिल जाता है।

5. **माल की किस्म सुधार**– श्रृंखलाबद्ध दुकानों पर प्रायः उच्च कोटि का माल ही विक्रय होता है, जिसके कारण इनकी ख्याति में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त माल खराब होने पर ये सुगमता से वापस भी ले लेते हैं, एवं मरम्मत इत्यादि की सुविधाएँ भी प्रदान करते हैं, जैसे– Bata एवं लिबर्टी की सेवाएँ इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध है।

बहुसंख्यक दुकानों की हानियाँ–

बहुसंख्यक दुकानों के उपर्युक्त लाभ के होते हुए भी इनसे व्यवसायियों एवं ग्राहकों को अनेक हानियाँ भी होती हैं, जिनका विवेचन निम्नलिखित है –

(I) व्यवसायियों को हानि–

1. **निरीक्षण एवं नियन्त्रण में कठिनाई**– ये नगर एवं महानगर में दूर–दूर स्थित होती हैं, कभी–कभी तो इनकी संख्या इतनी अधिक बढ़ जाती है अथवा इनका फैलाव इतना अधिक हो जाता है कि इनका निरीक्षण एवं नियन्त्रण करना ही कठिन कार्य हो जाता है।

2. **स्वतन्त्रता एवं उत्साह का अभाव**– साधारणतः– यह देखा गया है कि इन दुकानों में कार्यकर्त्ताओं को केन्द्र के आदेशों का शत–प्रतिशत पालना करना पड़ता है, जिसके कारण भिन्न–भिन्न व्यवस्थापकों को संचालन की स्वतन्त्रता नहीं रहती है। इस प्रकार उनका बिक्री बढ़ाने में कोई उत्साह नहीं होता है।

3. **सीमित उपयुक्तता**– सामान्य रूप से बहुसंख्यक दुकानें केवल उन्हीं वस्तुओं को बेचने के लिए खोली जाती हैं, जिनकी माँग अधिक एवं स्थायी हो। कम या मौसमी माल वाली वस्तुओं के लिए फुटकर व्यापारी का यह स्वरूप उपयुक्त नहीं होता है।

4. **ग्राहकों से व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव**– बहुसंख्यक दुकानों के विक्रेता का ग्राहकों से व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं होता है। इसका कारण यह है कि इन दुकानों के विक्रेता वेतनभोगी होते हैं एवं इनका समय–समय पर स्थानान्तरण भी होता रहता है। परिणामस्वरूप ग्राहक संतुष्टि एवं विक्रय वृद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

5. **अत्यधिक पूँजी की आव□यकता**– इस पद्धति में अनेक दुकानें खोलनी पड़ती हैं एवं उनमें सजावट आदि का कार्य भी करना पड़ता है। अतः इनकी स्थापना में अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. **प्रमापीकरण पर अत्यधिक निर्भरकता**– चूंकि इन दुकानों पर बिकने वाली वस्तुओं का प्रमाणित एवं प्रमापित होना आवश्यक है। इसलिए इन्हें प्रमाणीकरण एवं प्रमाणीकरण पर अत्यधिक निर्भर रहना पड़ता है।

7. **फैशन में परिवर्तन से हानि**– ये दुकानें बड़ी मात्रा में माल क्रय करती हैं अथवा निर्माण करती हैं। यदि इस अवधि में फैशन में परिवर्तन हो जाता है तो इनका माल बेकार हो जाता है औ इन्हें नुकसान उठाना पड़ता है।

(II) ग्राहकों को हानियाँ–

1. **चयन का अभाव**– बहुसंख्यक दुकानें न केवल सीमित प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करती हैं अपितु अपने पास निश्चित किस्में ही रखती हैं जिससे ग्राहक को चुनाव करने में सुविधा नहीं मिलती है।

2. **साख–सुविधाओं का अभाव**– इन दुकानों के कर्मचारियों को केवल नकद विक्रय करने का ही अधिकार होता है। ऐसी दशा में यदि कोई ग्राहक सुख–सुविधाएँ चाहता है, तो इस प्रणाली से उसे कोई लाभ नहीं होता है।

3. **व्यक्तिगत सेवा का अभाव**– बहुसंख्यक दुकानों के संचालन करने का एक विशेष तरीका होता है। फलस्वरूप ग्राहकों की विविध रूचि, आवश्यकताओं एवं पसन्दों को पूरा करने के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं होती है। इसके अतिरिक्त इन दुकानों पर न तो उधार विक्रय होता है और न ही माल को घर भेजने की व्यवस्था होती है।

4. **ग्राहकों के लिए आकर्शण का अभाव**– इस प्रणाली में बिकने वाला सामान प्रमापीकृत, प्रमाणित एवं एक ही निर्माता का एक ही प्रकार का होता है। अतः ये भिन्न–भिन्न रूचि के ग्राहकों को आकर्षित करने में असमर्थ रहती है।

5. **ऊँचे मूल्य**– स्थानीय निर्माताओं एवं सामान्य व्यापारियों द्वारा बेचे जा रहे माल के मूल्यों तथा दुकानों पर मूल्यों में अत्यधिक अन्तर होता है। इसलिए सामान्य स्तर का व्यक्ति इन दुकानों से वस्तु क्रय करने में कतराता है।

6. **दीर्घकाल में एकाधिकार**– यह देखा गया है कि दीर्घकाल में बहुसंख्यक दुकानें अपनी स्थिति का लाभ उठाकर उद्योग में लगभग एकाधिकार स्थापित करने में सफल हो जाती है। परिणामस्वरूप मनमाने ढंग से उत्पादों का मूल्य निर्धारण करके उपभोक्ताओं का शोषण करती है।

(3) विशेषाधिकार दुकानें–

अर्थ एवं परिभाशा–

ऐसी दुकानें, जहाँ एक ही उत्पादक अथवा निर्माता का माल बिकता है किन्तु वह स्वयं अपने स्वामित्व में दुकान की स्थापना न करके दुकानों के स्वामियों से निश्चित कमीशन अथवा लाभ के आधार पर अपना माल बेचने का अनुबन्ध कर लेता है, विशेषाधिकार दुकानें कहलाती हैं, जैसे– रिलायन्स, टाटा, आइडिया एवं अन्य संचार कम्पनियाँ आदि। विशेषाधिकार दुकानों की परिभाषा देते हुए आर.एच.बुशकिर्क ने कहा कि,

''वितरण की विशेषाधिकार प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा एक विशेषाधिकारदाता (वस्तु य सेवा का निर्माता अथवा आपूर्तिकर्ता) जिसने किसी व्यवसाय के संचालन हेतु बाह्य आकृति का विकास किया है, विशेषाधिकार प्राप्तकर्त्ता (स्वतन्त्र छोटे व्यवसायियों) को ऐसे व्यवसाय के संचालन का अधिकार देता है। साधारणतया व्यापारिक चिन्ह, पेटेन्ट्स एवं प्रमाप संचालन विधियों के प्रयोग का अधिकार भी इस विशेषाधिकार के अन्तर्गत सम्मिलित होता है।''

इस प्रकार विशेषाधिकार दुकानों का आशय ऐसी दुकानों से है जो निर्माता से उसके ब्राण्ड के माल को विक्रय करने का कार्य करती है। ये दुकानें निर्माता से यह शर्त तय कर लेती है कि वह उस क्षेत्र में अन्य किसी व्यक्ति या फर्म को माल का विक्रय नहीं करने देगा।

उपर्युकत विवेचन के आधार पर विशेषाधिकार दुकानों में निम्नलिखित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. इन दुकानों पर एक ही उत्पादक या निर्माता का माल बेचा जाता है।

2. इन दुकानों का स्वामित्व दुकान के स्वामी के पास होता है।

3. इन दुकानों पर निर्माता से उसके ब्राण्ड के माल का विक्रय किया जाता है।

4. ये दुकानें निर्माता से यह शर्त तय कर लेती है कि वह उस क्षेत्र में अन्य किसी व्यक्ति या फर्म को माल का विक्रय नहीं करने देगा।

5. इन दुकानों की विक्रय नीतियों, सजावट का ढंग, पैकिंग के तरीके तथा मूल्य आदि का निर्धारण निर्माता अथवा उत्पादक द्वारा ही किया जाता है।

6. इसमें निर्माता संस्था द्वारा सभी दुकानों को विज्ञापन सामग्री दी जाती है।

7. वैसे ये दुकानें स्वतन्त्र होती हैं किन्तु निर्माता इन पर बाह्य नियन्त्रण भी रखते हैं।

8. ये दुकानें, बहुसंख्यक दुकानों से भिन्न है। बहुसंख्यक दुकानों का स्वामित्व तो केन्द्रित होता है, जबकि विशेषाधिकार दुकानों का स्वामित्व केन्द्रित नहीं होता है।

(4) सुपर बाजार

सुपर बाजार का अर्थ एवं परिभाशाएँ–

सुपर बाजार या मिला–जुला भण्डार का अर्थ उस फुटकर व्यापारिक संस्था से है जो विभिन्न प्रकार की दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ नकद या स्वयं–सेवा के आधार पर बेचती है। अन्य शब्दों में, सुपर बाजार एक बड़े पैमाने पर विभागीय फुटकर व्यापार करने वाली संस्था है जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करती है, स्वयं–सेवा के आधार पर कम से कम ग्राहक–सेवा द्वारा चलाई जाती है, जिसमें समान मूल्य नीति अपनायी जाती है और जिसमें वाहन खड़े करने हेतु पर्याप्त स्थान करता है।

सुपर बाजार को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

1. **डिक्शनरी ऑफ बिजनेस एण्ड फाइनेन्स** के अनुसार, ''सुपर बाजार वह बडा फुटकर भण्डार है जो घर में काम आने वाली विभिन्न वस्तुओं का विक्रय करता है।''

2. **कण्डिफ एवं स्टिल** के अनुसार, ''सुपर बाजार एक दीर्घस्तरीय फुटकर व्यापार करने वाली व्यावसायिक इकाई है जो कम लागत पर मुख्यतः खाद्य पदार्थो एवं किराना वस्तुओं का व्यापार करती है, स्वयं सेवा के आधार पर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बेचती है और वस्तुओं पर विशेष ध्यान देती है।''

इस प्रकार सुपर बाजार एक बड़ा व्यापार करने वाली संस्था है जो विभिन्न प्रकार की दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं का स्वयं–सेवा के आधार पर व्यापार करती है, जैसे– फल, सब्जी, सूखे मेवे, माँस, बेकरी एवं डेयरी का सामान आदि।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सुपर बाजार में निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं–

1. सुपर बाजार वृहद्स्तरीय फुटकर व्यापार की एक संस्था है।

2. इसका संचालन स्वयं–सेवा पद्धति, जैसे– वस्तुओं को छाँटना, देखना, पसन्द करना आदि के आधार पर किया जाता है।

3. इस बाजार में क्रेताओं को खुली आलमारियों में रखी हुई वस्तुओं में से अपनी रूचि एवं पसन्द की वस्तुएँ छाँटने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।

4. सुपर बाजार में बिकने वाला सामान अनेक प्रकार का होता है, जैसे– खाद्य पदार्थ सामग्री, सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री, दैनिक एवं घरेलू उपयोग की वस्तुएँ आदि।

5. प्रत्येक वस्तु का मूल्य पूर्व निश्चित होता है, जिसके मोल–भाव की आवश्यकता नहीं है।

6. यहाँ 'दाम दो, माल लो' का सिद्धान्त लागू होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. सुपर बाजारों में पृथक्–पृथक वस्तुओं को बेचने के लिए पृथक–पृथक सामग्री विभाग स्थापित किये जाते हैं।

8. इन बाजारों में केन्द्रीय भुगतान व्यवस्था हैं। इसलिए इसके अन्तर्गत क्रेता अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ विभिन्न विभागों में से चुनकर काउन्टर पर लाता है और वहाँ बैठे कर्मचारी को मूल्य चुकाता है।

सुपर बाजार के लाभ–

सुपर बाजार से दो पक्षकारों को विशेष लाभ होता है– एक व्यवसायी, तथा द्वितीय ग्राहकों या उपभोक्ताओं को, जो निम्नलिखित हैं–

(I) व्यवसायियों को लाभ–

1. **अधिक बिक्री**– चूंकि सुपर बाजार में कम संचालन लागत एवं कम मूल्य पर अच्छी वस्तुएँ मिल जाने के कारण कम मूल्य पर बेची जानी सम्भव होती है। फलतः बिक्री की मात्रा बढ़ जाती है।

2. **बड़े पैमाने के लाभ**– यहाँ पर वस्तुओं का क्रय–विक्रय बड़े पैमाने पर किया जाता है, जिससे एक तो उत्पादकों से वस्तुएँ सस्ती दर पर मिलती है एवं अन्य व्यय भी कम हो जाते हैं। फलस्वरूप बड़े पैमाने के लाभ जो एक साधारण फुटकर व्यापारी को नहीं मिलते, वे इन्हें मिल जाते हैं।

3. **कर्मचारियों की समस्याओं से मुक्ति**– सुपर बाजार में विक्रेता न रखने के कारण बहुत कर्मचारी रखे जाते हैं। अतः इनके संचालन, विक्रेताओं की नियुक्ति एवं नियन्त्रण आदि समस्याओं से मुक्ति मिल जाती है।

4. **कम संचालन व्यय**– सुपर बाजार में विक्रेताओं की सेवाएँ न लिये जाने के कारण संचालन व्यय कम हो जाते हैं।

5. **नकद विक्रय**– सुपर बाजारों में प्रायः नकद व्यापार ही किया जाता है, फलस्वरूप ऋण डूबने का भय नहीं रहता है।

6. **अधिक लाभ**– इन बाजारों में 'कम लाभ, अधिक बिक्री' सिद्धान्त को अपनाये जाने के कारण संचालन लागत में कमी, बड़े पैमाने पर क्रय–विक्रय के लाभ होते हैं, फलस्वरूप लाभ की मात्रा बढ़ जाती है।

(II) ग्राहकों या उपभोक्ताओं को लाभ–

1. **वस्तुओं की उपलब्धि**– सुपर बाजार की व्यवस्था से ग्राहकों को सभी घरेलू वस्तुएँ एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती है। अतः ग्राहकों को इधर–उधर भटकने की आवश्यकता नहीं होती है।

2. **क्रय परामर्श का अभाव**– इन बाजारों में विक्रेता के अभाव में वस्तु के गुण तथा उसकी प्रयोग विधि आदि बातों की जानकारी नहीं मिल पाती है। वे ग्राहक जो वस्तु के चुनाव में स्वयं निर्णय नहीं ले पाते हैं, उन्हें यहाँ माल खरीदने में काफी कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त गलत वस्तु का चुनाव होने की भी सम्भावना बनी रहती है।

3. **कम मूल्य**– सुपर बाजारों की संचालन लागत कम आने से ग्राहकों को जो मूल्य देना पड़ता है, वह अन्य दुकानों से कम होता है। यहाँ पर निश्चित मूल्य पर ही विक्रय किया जाता है। अतः ग्राहकों को किसी प्रकार की सौदेबाजी नहीं करनी पड़ती है।

4. **धन व समय की बचत**– इस प्रणाली में विक्रेताओं के न होने के कारण उनसे बातचीत करने एवं वस्तु के बारे में पूछताछ करने के बारे में लगने वाला समय बच जाता है।

5. **केन्द्रीय स्थिति**– ये बाजार प्रायः नगर के केन्द्र में स्थापित किये जाते हैं, जिससे किसी भी क्षेत्र से उपभोक्ता को वहाँ पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं होती है।

6. **निश्चित मूल्य**– सुपर बाजारों में वस्तुएँ निश्चित मूल्य पर बेची जाती हैं जिससे सौदेबाजी में नष्ट होने वाला समय बच जाता है, साथ ही धोखे से भी बचा जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. **चुनाव की पूर्ण स्वतन्त्रता**– इस प्रणाली में विक्रेता कर्मचारियों का अभाव होने के कारण ग्राहकों को अपनी मनपसन्द वस्तुएँ चुनने की स्वतन्त्रता होती है।

सुपर बाजार की हानियाँ–

जहाँ सुपर बाजार के अनेक लाभ हैं, वहाँ हानियाँ भी हैं। लाभों की भाँति हानियाँ भी व्यवसायी एवं ग्राहकों दोनों वर्गों को हैं। ये हानियाँ निम्नलिखित हैं–

(I) व्यवसायियों को हानियाँ–

1. **भारी विनियोग**– चूँकि सुपर बाजार के व्यवसायी उत्पादकों या निर्माताओं से सीधे माल खरीदते हैं जिसके कारण मूल्य तुरन्त चुकाना पड़ता है और कभी–कभी अग्रिम राशि भी देनी पड़ती है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ भी पर्याप्त मात्रा में स्टॉक में रखनी पड़ती है। इन सभी कार्यों के लिए प्रारम्भ में ही भारी राशि का विनियोग करना पड़ता है।

2. **उपयुक्त स्थान की कठिनाई**– चूँकि सुपर बाजार की स्थापना शहर एवं महानगर के मध्य में ही करने के लिए विशाल भवन एवं उपयुक्त स्थान मिलने में कठिनाई होती है। ऐसी दशा में उन्हें बाजार को शहर से दूर खोलना पड़ता है, जहाँ ग्राहक कम पहुँचते हैं।

3. **तकनीकी वस्तुओं का विक्रय नहीं**– सुपर बाजार में तकनीकी वस्तुएँ बेचते समय क्रेता को सभी सूचनाएँ दी जानी आवश्यक होती है। किन्तु इस प्रणाली में इस व्यवस्था की अनुपस्थिति होने से ऐसी वस्तुएँ बेची जानी सम्भव नहीं होगी।

4. **वस्तुओं का खराब होने का भय**– सुपर बाजारों में वस्तुएँ भारी मात्रा में संग्रहित की जाती हैं। साथ ही खाद्य पदार्थ भी बेचे जाते हैं। इसके अलावा वस्तुएँ समय पर न बिकने की दशा में उनके सड़ने–गलने का भय हमेशा बना रहता है।

5. **ग्राहकों की असन्तुश्टि**– ग्राहक विक्रेता की अमूल्य निधि होता है। व्यक्तिगत सेवा एवं सहयोग के अभाव में उसे पूर्ण संतुष्टि नहीं मिल पाती है। साथ ही प्रोत्साहन के अभाव में क्रेता स्वयं अतिरिक्त वस्तुएँ नहीं खरीदते हैं।

(II) ग्राहकों या उपभोक्ताओं को हानियाँ–

1. **दूर स्थिति**– सुपर बाजार सामान्यतः शहर से दूर स्थित होते हैं, जहाँ ग्राहकों की आसान पहुँच नहीं होती है। अनेक बार तो जितनी बचत कम भावों के कारण होती है, उससे अधिक व्यय परिवहन पर हो जाता है।

2. **क्रय पराम□ा का अभाव**– विक्रेता के अभाव में वस्तु के गुण, उसकी प्रयोग विधि आदि बातों की जानकारी नहीं मिल पाती है। वे ग्राहक जो वस्तु के चुनाव में स्वयं निर्णय नहीं ले पाते हैं तो उन्हें यहाँ खरीदने में काफी कठिनाई होती है। साथ ही गलत वस्तु का चुनाव हो जाने की सम्भावना भी बनी रहती है।

3. **साख–सुविधाओं का अभाव**– चूंकि सुपर बाजारों में नकद विक्रय किया जाता है अर्थात् यहाँ साख–सुविधाओं का अभाव होता है। इससे ग्राहकों को बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ता है।

4. **अधिक समय**– इन बाजारों में जहाँ वस्तु का चुनाव कम समय में ही हो जाता है, वहीं उसका बिल बनवाने, मूल्य का भुगतान करने, पैकिंग करवाने, घर से सुपर बाजार पहुँचने एवं वापस आने में ग्राहक का बहुत समय खराब हो जाता है।

5. **सन्तुश्टि का अभाव**– सुपर बाजार में विक्रेताओं के अभाव के कारण सुपर बाजार सभी ग्राहकों को सन्तुष्टि नहीं दे पाते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी सेवा करने में कोई न कोई कमी रह ही जाती है।

(5) उपभोक्ता सहकारी भण्डार–

उपभोक्ता सहकारी भण्डार का अर्थ एवं परिभाशाएँ–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जिस पद्धति के अनुसार उपभोक्ता, सहकारी समितियों में संगठित होकर थोक व्यापारियों अथवा फुटकर व्यापारियों से अपने उपभोग की वस्तुएँ न खरीदकर सीधे उत्पादक अथवा निर्माता से ही क्रय करते हैं तो उसको 'उपभोक्ता सहकारी भण्डार' कहते हैं।

1. **पकैट एवं बीघी** के अनुसार, ''उपभोक्ता सहकारी भण्डार से आशय ऐसे भण्डार से है, जिसका स्वामित्व भण्डार के ग्राहकों के पास होता है।''

2. **प्रो. एस.बी. राव** के शब्दों में, ''उपभोक्ता सहकारी भण्डार उपभोक्ताओं का एक ऐच्छिक आर्थिक संघ है जिसका प्रबन्ध उपभोक्ताओं द्वारा उपभोक्ताओं के लिए स्वयं के घरेलू उपयोग हेतु एवं सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए प्रजातान्त्रिक ढंग से किया जाता है।''

इस प्रकार उपभोक्ता सहकारी भण्डार से अभिप्रायः उन दुकानों से है, जो मध्यस्थों के अत्याचारों (मूल्य वृद्धि, जमाखोरी, मुनाफाखोरी आदि) से बचने तथा बाजार में अनुपलब्ध एवं कठिनाई से उपलब्ध वस्तुओं को सुविधापूर्वक प्राप्त करने के लिए समानता आवश्यकता वाले उपभोक्ताओं द्वारा परस्पर मिलकर समानता के आधार पर संचालित होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर उपभोक्ता सहकारी भण्डार में निम्नलिखित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं–

1. ऐसे भण्डार की स्थापना एवं संचालन उपभोक्ताओं द्वारा किया जाता है।
2. इसकी सदस्यता के लिए कम से कम एक अंश का क्रय करना आवश्यक है।
3. प्रत्येक सदस्य को 'केवल एक मत' देने का ही अधिकार होता है, चाहे उसके पास एक से अधिक अंश क्यों न हो।
4. भण्डार में जो कुछ 'लाभ' होता है, उसका कुछ भाग सदस्यों में बाँट दिया जाता है, शेष भाग सुरक्षित कोष में रख दिया जाता है।
5. भण्डार में माल 'नकद' ही बेचा जाता है।
6. अधिकांश उपभोक्ता भण्डारों की स्थापना 'रॉकडेल अग्रगामियों के सिद्धान्तों' के आधार पर की जाती है, जैसे– खुली सदस्यता, लोकतान्त्रिक नियन्त्रण, पूँजी पर ब्याज, एक सदस्य–एक मत तथा माल के क्रयानुसार लाभांश वितरण आदि।
7. इस पद्धति में मध्यस्थों का कोई स्थान नहीं है।
8. उपभोक्ता सहकारी भण्डार के सदस्यगण प्रबन्ध की सुविधा के लिए कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करते हैं।

उपभोक्ता सहकारी भण्डार के लाभ–

उपभोक्ता सहकारी भण्डार के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. **सरल स्थापना**– उपभोक्ता सहकारी भण्डारों की स्थापना सरल एवं सुविधाजनक हो जाती है क्योंकि एक ओर अनेक औपचारिकताएँ पूरी नहीं करनी पड़ती हैं तो दूसरी ओर सहकारी विभाग आवश्यक परामर्श देता है। यही नहीं, सहकारी विभाग स्थापना सम्बन्धी अनेक बाधाएँ भी दूर करने का प्रयत्न करता है।

2. **प्रजातांत्रिक प्रबन्ध**– इन भण्डारों का प्रबन्ध एवं संचालन स्वयं सदस्यों द्वारा किया जाता है। प्रबन्ध समिति में केवल सदस्य ही होते हैं। प्रत्येक सदस्य ''एक व्यक्ति, एक मत' सिद्धान्त के स्थान पर प्रबन्ध समिति का चुनाव लड़ सकता है।

3. **सस्ती एवं श्रेश्ठ वस्तुएँ**– उपभोक्ता सहकारी भण्डार में सस्ती एवं श्रेष्ठ वस्तुएँ मिलती हैं क्योंकि उत्पादकों या निर्माताओं से सीधा माल खरीदा जाता है और वस्तुएँ उपभोक्ताओं द्वारा स्वयं के उपभोग के लिए खरीदे जाने के कारण वे गुण, किस्म एवं उपयोगिता आदि की दृष्टि से श्रेष्ठ होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **सहयोग की भावना**– यह एक ऐच्छिक संगठन हैं। इसलिए सदस्य 'एक सबके लिए, सब एक के लिए' की भावना से काम करते हैं। परिणामस्वरूप आपसी सहयोग एवं सौहार्द्र को बढ़ावा मिलता है।

5. **साधारण प्रबन्ध व्यय**– सहकारी भण्डारों से संगठन एवं प्रबन्ध का व्यय बहुत कम होता है क्योंकि छोटी भण्डारों का प्रबन्ध कार्य स्वयं सदस्यों के प्रतिनिधियों द्वारा बिना पारिश्रमिक के किया जाता है।

6. **विज्ञापन व्यय की बचत**– सहकारी भण्डारों को विज्ञापन व्यय की बचत होती है क्योंकि इनका उद्देश्य सामान्य ग्राहकों को आकर्षित करना नहीं होता है और इनके सदस्यों को भण्डार के स्थान की जानकारी भी होती है।

7. **सरकारी सहयोग**– उपभोक्ता सहकारी भण्डारों को सरकार द्वारा बहुत अधिक वित्तीय सहायता दी जाती है, जिससे इनको पूँजी का अभाव दूर करने में बहुत सहायता मिलती है।

8. **न्यूनतम मृत स्कन्ध**– ये भण्डार उसी माल का उतनी ही मात्रा में क्रय करते हैं, जो उसके सदस्यों द्वारा माँगा जाता है। परिणामस्वरूप बिना बिके माल के रूप में मृत स्कन्ध न्यूनतम रहता है।

9. **क्रय पर लाभांश**– उपभोक्ता सहकारी भण्डार अपने सदस्यों को क्रय की मात्रा के आधार पर लाभांश देते हैं। यह लाभाश सभी सदस्यों की कुल साझेदारी के अनुपात में वितरित किया जाता है।

10. **नकद बिक्री**– उपभोक्ता सहकारी भण्डार नकद बिक्री करते हैं, उन्हें उधार बेचने की अनुमति नहीं होती है। परिणामस्वरूप इन भण्डार में उधार के डूबने की जोखिम नहीं रहती है।

उपभोक्ता सहकारी भण्डार की हानियाँ–

उपभोक्त सहकारी भण्डार हानियों से भी अछूता नहीं है, जो निम्नलिखित हैं–

1. **अकुशल प्रबन्ध**– उपभोक्ता सहकारी भण्डारों का अकुशल प्रबन्ध होता है क्योंकि इनका संचालन प्रायः उपभोक्ता सदस्यों द्वारा ही किया जाता है, जिनको व्यापार एवं उसके प्रबन्ध का कोई ज्ञान एवं अनुभव नहीं होता है।

2. **सीमित ग्राहक**– भण्डार के ग्राहक सीमित होते हैं। अतः उसके ग्राहकों की संख्या उसके सदस्यों की संख्या पर निर्भर करती है, जो प्रायः सीमित होती है।

3. **मन्दीकाल में निश्क्रिय**– उपभोक्ता सहकारी भण्डार प्रायः तेजीकाल में, जबकि वस्तुएँ बाजार में सुविधा से नहीं मिलती एवं उनके मूल्य भी बहुत ऊँचे होते हैं, अधिक सक्रिय रहते हैं। मन्दीकाल में ये निष्क्रिय हो जाते हैं।

4. **सदस्यों का भोशण**– उपभोक्ता सहकारी भण्डार का पूर्ण नियन्त्रण प्रबन्ध समिति के पदाधिकारियों के हाथ में होता है क्योंकि वे ही सक्रिय रूप से भण्डार का कार्य करते हैं। अतः वे स्वहित के लोभ में सामान्य सदस्यों के हितों की अपेक्षा करते हैं। इस प्रकार वे आपस में मिल जाते हैं एवं उनका शोषण करते हैं।

5. **सीमित क्षेत्र**– इन भण्डारों में दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ ही मँगाई जाती हैं। परिणामस्वरूप उनका कार्यक्षेत्र सीमित हो जाता है। इसके अतिरिक्त इनकी वस्तुओं का मूल्य कम होने के कारण ये भण्डार धनी वर्ग की आवश्यकता को सन्तुष्ट नहीं कर पाते।

6. **गन्दी राजनीति**– उपभोक्ता सहकारी भण्डार राजनीतिक प्रभाव से परे नहीं रह पाते हैं। प्रबन्ध समिति के सदस्यों का चुनाव उसकी योग्यता, कुशलता, ईमानदारी एवं सामाजिक प्रतिष्ठा आदि पर न होकर राजनीतिक सम्बन्धों तथा प्रभावों पर आधारित होता है जिससे इनमें गंदी राजनीति घर कर जाती है।

7. **पूँजी का अभाव**– इन भण्डारों की पूँजी के प्रमुख स्त्रोत सदस्यों द्वारा खरीदी गयी अंश पूँजी होती है। लेकिन अंशों का मूल्य कम होने एवं सदस्यों द्वारा उन्हें अधिक मात्रा में न खरीदे जाने के कारण पूँजी की कमी बनी रहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप**– भारतीय उपभोक्ता भण्डार सहकारी विभाग के अत्यधिक हस्तक्षेप में पीड़ित है। इसलिए उनका पूरा समय एवं शक्ति विभिन्न सरकारी औपचारिकताओं को पूरा करने में ही नष्ट हो जाता है।

बोध प्र□न–

लघुत्तरात्मक प्र□न–

1. वितरण माध्यम क्या है? इनके कार्यो की विवेचना कीजिए?
2. थोक व्यापारी क्या है? इनकी विशेषताएँ बताइये?
3. फुटकर व्यापारियों के कार्यों एव सेवाओं की व्याख्या कीजिए।

निबन्धात्मक प्र□न–

1. वितरण के उपयुक्त माध्यम का चयन करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? विवेचना कीजिए।
2. थोक व्यापारी का अर्थ बताते हुए इनके कार्यो एवं सेवाओं की व्याख्या कीजिए?
3. फुटकर वितरण से आप क्या समझते है? भारतीय अर्थव्यवस्था में इसका क्या महत्व है?

माल का भौतिक वितरण, स्कन्ध नियन्त्रण

माल का भौतिक वितरण Physical Distribution of Goods

''भौतिक वितरण'' से आशय सही समय एवं स्थान पर सही मात्रा में उत्पादों को पहुँचाने से है। अर्थात माल या वस्तुओं के भौतिक वितरण का अर्थ उन क्रियाओं के सम्पादन से है जिनके माध्यम से माल में समय एवं स्थान उपयोगिता का सृजन करके उसे उत्पादक या निर्माता से उपभोक्ता एवं प्रयोगकर्ता तक पहुँचाया जाता है। लेकिन ऐसा तभी सम्भव है जबकि वह अपने माल के भौतिक वितरण की प्रभावी एवं मितव्ययी व्यवस्था करें इसके लिए उसे परिवहन, भण्डारण, स्कन्ध नियन्त्रण एवं आदेश प्रसंस्करण सम्बन्धी निर्णय लेने पड़ते हैं।

भौतिक वितरण को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है –

1. **मैकार्थी के भाब्दों में,** ''वैयक्तिक फर्मो के अन्दर एवं वितरण प्रणालियों के साथ–साथ उत्पादों का वास्तविक उठाना–रखना एवं संचालन करना भौतिक वितरण है।''
2. **कण्डिफ एवं स्टिल के अनुसार,** ''भौतिक वितरण से अभिप्राय माल के उत्पादन के बाद किन्तु उपयोग से पूर्व उनकी वास्तविक रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना तथा संग्रहण करने से है।''
3. **वेन्डेल एम. स्टेवार्ड** के मतानुसार, ''भौतिक वितरण व्यवसाय, सम्भरण का विज्ञान है, जिसके द्वारा सही वस्तु सही मात्रा में उस स्थान पर उपलब्ध की जाती है, जहाँ उसकी माँग विद्यमान होती है। इस दृष्टि से, भौतिक वितरण उत्पादन एवं माँग–सृजन के बीच की मुख्य श्रृंखला है।''

इस प्रकार उत्पादक से उपभोक्ता तक माल का प्रवाह भौतिक वितरण कहलाता है। इसमें न केवल तैयार माल की प्रेशण सम्मिलित है, बल्कि कच्चे–माल का भी उसके पूर्ति स्त्रोतों से उत्पादन स्थान तक प्रवाह भी भामिल है।

उपर्युक्त परिभाशाओं के आधार पर माल के भौतिक विवरण में निम्नलिखित वि□ीशताएँ (Characteristics) देखी जा सकती है।

1. भौतिक वितरण उत्पादक से ग्राहकों तक उत्पादों के संचरण एवं प्रवाह को बनाये रखने का उपाय है।
2. भौतिक वितरण व्यावसायिक सम्भरण (Business Logisties) का विज्ञान है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. यह उत्पादन/निर्माण एवं माँग सृजन के मध्य एक प्रमुख कड़ी है।

4. यह संस्था के भीतर एवं संस्था के उत्पादों की वितरण–श्रृंखलाओं के साथ–साथ माल के प्रवाह तथा प्रवाह व्यवस्थाओं का प्रबन्ध है।

5. यह एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत ग्राहकों को सही माल, सही मात्रा, सही समय एवं सही स्थान पर उपलब्ध कराया जाता है।

6. भौतिक वितरण, विपणन क्रियाओं का द्वितीय आधा भाग है। प्रथम भाग में, बाजार विश्लेषण, उत्पाद नियोजन एवं विकास, मूल्य निर्धारण तथा विक्रय संवर्द्धन आदि शामिल किये जाते हैं तो द्वितीय भाग में भौतिक वितरण सम्बन्धी कार्य, जैसे– आदेश प्रसंस्करण, स्कन्ध प्रबन्ध एवं नियन्त्रण, उत्पादों का संग्रहण एवं भण्डारण, उत्पादों का उठाना एवं रखना तथा परिवहन आदि सम्मिलित किये जाते है।

भौतिक वितरण के उद्देश्य Objectives of Physical Distributions

1. भौतिक वितरण का मुख्य उद्देश्य कुशल वितरण प्रणाली की स्थापना एवं संचालन करना है।

2. भौतिक वितरण द्वारा न्यूनतम लागत पर अधिकतम सेवा प्रदान करना है। इसमें प्रतिस्पर्द्धा का ध्यान रखा जाता है।

3. भौतिक वितरण द्वारा सेवा की लागत का निर्धारण किया जाता है। विभिन्न व्ययों का निर्धारण कर उनमें कटौती का प्रयास किया जाता है।

   इस प्रकार भौतिक वितरण द्वारा कुल लागत एवं अनुकुलम सेवा के बीच अनुकूलतम सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

भौतिक वितरण के क्षेत्र

The Scope of Physical Distribution

भौतिक वितरण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें उत्पादन के लिए सामग्री के स्त्रोतों की खोज करने से लेकर अन्तिम उपभोक्ता बाजारों में निर्मित वस्तुओं के वितरण तक की क्रियाओं को शामिल किया जाता है।

समस्त भौतिक वितरण क्रियाओं का एकमात्र उद्देश्य अधिकतम ग्राहक सेवा को बनाये रखना व वितरण लागतों को कम करना है। भौतिक वितरण क्षेत्र में एक उत्पादक को निम्नलिखित निर्णय लेने पड़ते है–

(I) आदेश प्रसंस्करण सम्बन्धी निर्णय।

(II) माल के परिवहन सम्बन्धी निर्णय।

(III) माल के भण्डारण सम्बन्धी निर्णय।

(IV) माल के उतारने–चढ़ाने सम्बन्धी निर्णय।

(IV) स्कन्ध सम्बन्धी निर्णय।

(I) आदेश प्रसंस्करण सम्बन्धी निर्णय (Order Processing Decisions)–

एक कम्पनी के प्रबन्ध को निर्णय लेना पड़ता है कि माल/उत्पादों के सम्बन्ध में प्राप्त आदेशों को वह किस प्रकार पूरा करेगी? यदि माल के आदेशों को एक निश्चित समय के भीतर पूरा कर दिया गया तो माल के संचरण एवं प्रवाह की गति बढ़ती है, माल के संग्रहण की लागत सीमित हो जाती है, कम्पनी की ख्याति बढ़ती है एवं कम्पनी के लाभों में वृद्धि होती है। अतः माल के भौतिक वितरण के सम्बन्ध में कम्पनी के द्वारा तुरन्त निर्णय लिया जाना चाहिए।

कम्पनी के वितरण प्रबन्धकों को आदेश प्रसंस्करण के सम्बन्ध में ये निर्णय लेने होते हैं–

1. माल के आदेश का न्यूनतम एवं अधिकतम आकार क्या होगा?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. माल के आदेश की प्राप्ति के लिए कोई आदेश प्रारूप निर्धारित किया जायेगा या नहीं?

3. आदेश प्राप्ति में कम्पनी के विक्रेताओं की भूमिका क्या होगी?

4. आदेश प्राप्ति के बाद उसके प्रसंस्करण प्रक्रिया में कौन–कौन से कदम होंगे एवं उन्हें किस प्रकार सम्पन्न किया जायेगा?

सामान्यतः एक कम्पनी आदेशों के प्रसंस्करण में निम्नलिखित कदम उठाती है–

1. **आदे□ा का पंजीयन** – माल के क्रय का आदेश होने के पश्चात् सर्वप्रथम आदेश का रजिस्ट्रेशन किया जाता है। इसके लिए उस आदेश की प्रविष्टि आदेश प्राप्त पुस्तिका में करके उस पर आदेश प्राप्ति संख्या लिख दी जाती है ताकि आगे सन्दर्भ में आसानी रहती है।

2. **आदे□ा–पत्र की प्रतियाँ करवाना** – माल के आदेश या रजिस्ट्रेशन करने के पश्चात उसकी दो–तीन प्रतियाँ करवा ली जाती हैं क्योंकि आवश्यक कार्यवाही हेतु आदेश भण्डारण विभाग एवं साख विभाग को भेजना पड़ता है।

3. **साख जाँच एवं उधार की स्वीकृति** – साख विभाग आदेश की प्रति प्राप्त करने के पश्चात् क्रेता की साख की जानकारी करता है कि उसे माल बेचना या नहीं बेचना, का निर्णय करता है। इसके पश्चात् यदि उसकी साख ठीक है तो इसकी सूचना वितरण विभाग को भेज दी जाती है।

4. **स्टॉक उपलब्धता की जानकारी** – क्रेता से प्राप्त आदेश की एक प्रति आदेश भण्डारण को भी भेजी जाती है, ताकि यह पता किया जा सके कि आदेशित माल उपलब्ध है या नहीं। यदि माल उपलब्ध नहीं है तो कारखाने को उत्पादन के लिए या क्रय विभाग को माल की आपूर्ति के लिए कहा जाता है। यदि गोदाम में कोई स्थानापन्न माल उपलब्ध होता है तो क्रेता को पूछ लिया जाता है ताकि उसकी स्वीकृति आने पर माल भेज दिया जाता है, अन्यथा नहीं।

5. **आदे□ा का क्रियान्वयन** – जब साख विभाग एवं भण्डारण विभाग से क्रेता की साख एवं माल की उपलब्धता का सकारात्मक उत्तर मिल जाता है या वैकल्पिक माल को भेजने की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है तो आदेश का क्रियान्वयन किया जाता है। लेकिन इसके लिए अनेक कार्य किये जाते हैं, जैसे– तीन–चार प्रतियों में बीजक तैयार करवाना, गोदाम से माल एकत्रित कर पैकिंग करना, बीजक की एक प्रति लेखा विभाग को भेजना एवं गोदाम के खातों में आवश्यक प्रविष्टियाँ करना आदि।

6. **माल भेजना एवं बीमा करवाना** – आदेशों के प्रसंस्करण प्रक्रिया के इस कदम में क्रेता के निर्देशानुसार परिवहन के उपयुक्त साधन द्वारा माल भेजा जाता है। इसी के साथ माल का बीमा भी करवा लिया जाता है ताकि क्रेता को जोखिम से बचाया जा सके।

7. **क्रेता को सूचना** – कम्पनी द्वारा माल भेजने के तुरन्त पश्चात क्रेता को मालवाहक का नाम एवं पता, जिस बैंक के माध्यम से बिल्टी या माल की रसीद भेजी जा रही है, आदि की सूचना दी जाती है। यदि क्रेता को सीधे ही माल की सुपुर्दगी दी जाती है तो इस सूचना के साथ माल का बिल, बिल्टी एवं बीमा के स्त्रोत आदि सभी प्रपत्र क्रेता को भेज दिये जाते हैं।

8. **माल की सुपुर्दगी** – सामान्यतः मालवाहक को माल की सुपुर्दगी देने से ही क्रेता को सुपुर्दगी हुई नहीं मानी जाती है। इसका कारण यह है कि जब माल साख पर बेचा जाता है तो कम्पनी (विक्रेता) बिल्टी या रसीद को किसी बैंक के पास भेजता है और क्रेता को सूचना दे दी जाती है कि अमुक बैंक को माल की राशि का भुगतान कर बिल्टी या रसीद प्राप्त कर ले। यदि वह ऐसा करता है तो मालवाहक को बिल्टी या रसीद देकर माल प्राप्त कर सकता है।

(II) माल के परिवहन सम्बन्धी निर्णय (Transport Decisions)–

भौतिक वितरण में परिवहन सेवाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इन सेवाओं की मदद से ही उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाया जाता है। अतः वितरण विभाग को परिवहन सम्बन्धी निर्णय भी करने पड़ते हैं।

परिवहन के पाँच प्रमुख साधन निम्नानुसार हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) रेल मार्ग, (ii) सड़क मार्ग, (iii) वायु मार्ग, (iv) जल मार्ग, तथा (v) पाइपलाइन

वितरण विभाग को परिवहन के इन साधनों में किसी एक या अधिक का चयन करना पड़ता है। उसे इन साधनों में से किसी का भी चयन करते समय निम्नांकित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

(i) साधन की गति, (ii) साधन की विश्वसनीयता, (iii) साधन की उपलब्धता

(iv) साधन में सुरक्षा एवं जोखिम, (v) साधन की उपयुक्ता (vi) साधन की लागत, इत्यादि।

(III) माल के भण्डारण सम्बन्धी निर्णय (Warehousing Decisions of Goods)–

भौतिक वितरण के लिए माल के भण्डारण सम्बन्धी निर्णय करना आवश्यक है, ताकि आवश्यकता के समय आदेशों को पूरा किया जा सके। इस सम्बन्ध में मुख्यतया तीन निर्णय लिये जाते हैं–

1. **भण्डारण कहाँ पर किया जाए** – माल के भण्डारण के सम्बन्ध में सबसे पहले यह निर्णय लिया जाता है कि भण्डारण कहाँ किया जाए? ऐसे निर्णयों के तीन विकल्प हो सकते हैं–

   (i) कारखाने के अन्दर या उसके आस–पास किया जाए।

   (ii) भण्डारों को बाजारों के निकट स्थापित किया जाए।

   (iii) कुछ बड़े भण्डारों को कुछ स्थानों पर स्थापित किया जाए तथा कुछ छोटे भण्डारों को बाजार के निकट स्थापित किया जाए।

   उपर्युक्त विकल्पों में से किसी भी विकल्प का चुनाव किया जा सकता है। लेकिन निर्णय ऐसा होना चाहिए जिससे एक ओर माल का संचरण तथा प्रवाह प्रभावी हो सके तो दूसरी ओर न्यूनतम लागत पर ग्राहकों को आवश्यक मात्रा में माल उपलब्ध कराया जा सके।

2. **भण्डारण कितना एवं किस स्थान पर किया जाए** – वितरण प्रबन्धक को यह भी निर्णय करना होता है कि भण्डारों की संख्या कितनी हो एवं किन शहरों में हो, शहरों में भी किन क्षेत्रों या मोहल्लों में हो? इस सम्बन्ध में निर्णय लेने के पूर्व अनेक बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है, जैसे– उत्पादों की संख्या, ग्राहकों की क्रय प्रवृत्ति, आदतें, आवश्यकता, आय, सुपुर्दगी की अपेक्षा, भाड़े की दर, परिवहन सुविधाओं की उपलब्धता एवं गति, भण्डारों की लागत, भण्डारों की सुरक्षा एवं कारखानों की स्थिति तथा उनकी लागत आदि।

3. **भण्डारण का स्वत्व किसका हो** – भण्डारण के सम्बन्ध में यह भी निर्णय महत्वपूर्ण है कि यह भण्डार संस्था के अपने हो या किराये के। प्रायः भण्डार पाँच प्रकार के होते हैं– निजी भण्डार, सार्वजनिक भण्डार, सरकारी भण्डार, बन्धक भण्डार एवं शीतल भण्डार आदि। एक वितरण प्रबन्ध को स्वत्व का निर्णय करते समय भण्डारों की संख्या, पूँजी एवं किराया, भण्डारों को स्थापित करने एवं संचालन करने की लागत, मध्यस्थों की अपेक्षाएँ एवं तुलनात्मक सुविधाएँ आदि बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(IV) माल को उतारने–चढ़ाने सम्बन्धी निर्णय (Goods Handling Decisions)–

माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए परिवहन के साधनों में माल को चढ़ाया जाता है एवं फिर वहाँ पहुँचकर उन्हें उतारा जाता है। माल के उतारने एवं चढ़ाने सम्बन्धी निम्न निर्णय लेने होते हैं–

1. माल को उतारने–चढ़ाने के लिए मानव शक्ति का उपयोग किस रूप में एवं किस सीमा तक होगा?
2. माल को उतारने–चढ़ाने के लिए यंत्रों एवं ऊर्जाओं का प्रयोग किस रूप में एवं किस सीमा तक होगा?
3. माल को उतारने–चढ़ाने के लिए कन्टेनर्स का उपयोग किस सीमा तक होगा?

यहाँ यह भी स्मरणीय हे कि माल को उतारने–चढ़ाने की विधि को माल की प्रकृति, भार, पैकेजिंग, वित्तीय स्थिति, लागत, मात्रा, लम्बाई–चौड़ाई एवं सुरक्षा आदि घटक प्रभावित करते हैं।

(V) स्कन्ध सम्बन्धी निर्णय (Inventory Decisions)–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्कन्ध का आशय सभी प्रकार के ऐसे माल से है जो किसी कम्पनी या फर्म द्वारा अपने व्यवसाय के सामान्य संचालन के लिए गोदामों में स्टॉक रखा जाता है जिसे रखने का उद्देश्य उसका विक्रय करना अथवा विक्रय के लिए उत्पादित की जाने वाली वस्तु/माल या सेवा के निर्माण में उसका उपयोग करना होता है।

स्कन्ध नियन्त्रण का अर्थ चल वस्तुओं की विवरण सूची तैयार करना एवं उनकी गणना करने से है। इससे सामग्री की मात्रा का नियमन करना, स्कन्ध को व्यवस्थित ढंग से प्राप्त करना, स्टोर करना, निर्गमन करना और अभिलेख तैयार करने का कार्य किया जाता है ताकि कार्य संचालन विभागों को उचित समय पर उचित मात्रा में स्कन्ध की पूर्ति न्यूनतम लागत पर हो सकें।

परिभाशा–

1. **प्रो. क्रीटनर** के शब्दों में, ''स्कन्ध नियन्त्रण माल के भण्डारण के समुचित स्तरों को निर्धारित करने एवं बनाये रखने की प्रक्रिया है।''
2. **गॉर्डन बी. कारसन** के अनुसार, ''स्कन्ध नियन्त्रण ऐसी प्रक्रिया है जिसमें स्कन्ध में रखी सामग्री एवं पुर्जो में विनियोग का प्रबन्ध द्वारा स्थापित स्कन्ध नीति के अनुसार पूर्व निर्धारित सीमाओं में नियमन किया जाता है।''
3. **एच.एल. चढ्ढा** के मतानुसार, ''स्कन्ध नियन्त्रण से अभिप्राय ऐसी प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सामग्रियों एवं संघटकों के रूप में रखे गये स्टॉक के विनियोग को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उत्पादन एवं विक्रय क्रियाओं के निर्बाध तथा निरन्तर संचालन के लिए सामग्रियों के प्रवाह को उचित ढंग से अनुरक्षित किया जा सकता है ताकि सामग्रियों में विनियोग की लागत को न्यूनतम सम्भावित स्तर पर रखा जा सके।''

इस प्रकार सामग्री नियन्त्रण एक ऐसा प्रबन्धकीय उपकरण है जिसके द्वारा पूर्व निर्धारित योजनानुसार पर्याप्त मात्रा में स्कन्ध के संग्रहण एवं भण्डारण के समुचित स्तरों को निर्धारित एवं सामग्रियों के प्रवाह का उचित ढंग से अनुरक्षण किया जा सके।

स्कन्ध नियन्त्रण की वि□ीशताएँ

स्कन्ध नियन्त्रण की उपर्युक्त एवं अन्य परिभाषाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण करने के पश्चात् इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं–

1. यह एक प्रबन्धकीय उपकरण है क्योंकि इसके द्वारा सामग्री के स्टॉक को समुचित स्तर पर बनाये रखकर उत्पादन को निबोध/सतत् रूप से चालू रखा जाता है।
2. यह सामग्रियों का भौतिक नियन्त्रण है।
3. इसके द्वारा न्यूनतम विनियोग लागत पर सामग्री का अनुरक्षण किया जाता है।
4. यह उत्पादन नियोजन एवं नियन्त्रण का अंग है।
5. यह एक प्रक्रिया या व्यवस्था है क्योंकि इसके अन्तर्गत किसी संस्था के लिए स्कन्ध के भण्डारण के स्तरों के निर्धारण की नीति बनाई जाती है। इसके पश्चात् स्कन्ध का भण्डारण किया जाता है।
6. यह विभागों में परस्परकारी एवं समन्वयकारी कार्य है।
7. इसमें स्कन्ध के भण्डारण के स्तरों के निर्धारण को बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।
8. यह सामग्री सम्बन्धी हानियों को न्यूनतम करते हुए उत्पादन तथा विक्रय–क्रियाओं के निर्बाध संचालन को सम्भव बनाता है।

स्कन्ध नियन्त्रण के उद्दे□य Objectives of Inventory Control

स्कन्ध नियन्त्रण के प्रमुख उद्दे□य निम्नानुसार हैं:

1. वितरण प्रक्रिया के सतत संचालन को सफल बनाना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. कार्यशील पूंजी का अनुकूलतम उपयोग करना।
3. क्रय एवं स्कन्ध लागतों में मितव्ययिता को प्रोत्साहित करना।
4. स्कन्ध की जोखिमों (चोरी, विनाश, मूल्यों में कमी आदि) को सीमित करना।
5. स्कन्ध के भण्डारण के विविध व्ययों (गोदाम किराया, बीमा, ब्याज आदि) को नियन्त्रित करना।
6. श्रेष्ठ ग्राहक सेवा उपलब्ध करना।
7. बाजार में माल की आपूर्ति को नियमित करके स्थानापन्न माल से प्रतिस्पर्धा को समाप्त करना।
8. कोषों की आवश्यकता को सीमित करना।
9. संस्था के कोषों की तरलता बनाये रखने में योगदान देना।
10. उत्पादन एवं विक्रय में संतुलन बनाये रखना।
11. वित्त, उत्पादन तथा विक्रय बजट निर्माण में सहायता करना।
12. अनिश्चतताओं एवं भविष्य के लिए माल का संग्रह करने का निर्णय करना।
13. भारी मात्रा में माल क्रय करने के निर्णय में सहयोग देकर पारिमाणिक छूट (Quantity Discount) कमाना तथा परिवहन एवं अन्य लागतों में मितव्ययिता प्राप्त करना।

भौतिक वितरण क्रियाओं को प्रभावी रूप से सम्पन्न करने के लिए स्कन्ध नियन्त्रण भी करना पड़ता है। **स्कन्ध नियन्त्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा संस्था द्वारा उत्पादों के स्टॉक के संग्रहण एवं भण्डारण के समुचित स्तरों को निर्धारित किया जाता है तथा उन स्तरों पर उत्पादों की उपलब्धता को सुनिश्चित किया जाता है।**

स्कन्ध का प्रभाव नियन्त्रण करना अति आवश्यक है ताकि **ग्राहकों को सभी प्रकार के उत्पाद मिश्रण उचित मात्रा में यथासमय** उपलब्ध हो सके तथा संस्था को अनावश्यक उत्पादों के संग्रहण की समस्या एवं उनमें निवेश की आवश्यकता से मुक्ति मिल सके।

भौतिक वितरण प्रबन्धकों को स्कन्ध नियन्त्रण हेतु निम्नांकित प्रकार के निर्णय करने पड़ते हैं:

(i) स्कन्ध की अनुकूलतम मात्रा क्या होगी?

(ii) स्कन्ध की न्यूनतम मात्रा क्या होगी?

(iii) स्कन्ध की अधिकतम मात्रा क्या हो सकती है?

(iv) स्कन्ध का पुनः आदेश (Re-order) स्तर क्या होगा?

(v) स्कन्ध की मात्रा एवं आपूर्ति के सम्बन्ध में किन नीतियों, नियमों, कार्य–विधियों आदि का पालन किया जायेगा?

(vi) स्कन्ध की अधिप्राप्ति एवं निर्गमन की कार्यविधि एवं प्रणाली क्या होगी?

स्कन्ध नियन्त्रण सम्बन्धी इन सभी निर्णयों को करते समय दो बातों को ध्यान में रखना पड़ता है :

1. बाजार की मांग, तथा
2. स्कन्ध से सम्बन्धित लागतें।

1. **बाजार की मांग (Market demand)**– स्कन्ध की मात्रा एवं स्तर का निर्धारण करते समय बाजार की मांग को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। अतः वितरण विभाग को बाजार माँग का पूर्वानुमान करना चाहिए। पूर्वानुमान करते समय ग्राहकों की पसन्द–नापसन्द, आवश्यकताओं, इच्छाओं में हो रहे परिवर्तनों का विशेष

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ध्यान रखना चाहिए। इनके अतिरिक्त बाजार प्रतिस्पर्धा, स्थानापन्न उत्पादों की आपूर्ति आदि को भी बाजार माँग का पूर्वानुमान करते समय ध्यान में रखना चाहिए।

2. **स्कन्ध से सम्बन्धित लागतें (Costs associated with inventory)**– स्कन्ध सम्बन्धी निर्णय करते समय स्कन्ध से सम्बन्धित लागतों को भी ध्यान में रखना चाहिए। इनमें प्रमुख लागतें निम्नानुसार हैं:

   (i) आदेश देने की लागतें या अधिप्राप्ति लागतें (Ordering Costs or procurement costs), अर्थात वे लागतें, जो माल क्रय कर गोदाम तक लाने में आती हैं।

   (ii) स्कन्ध संग्रह कर रखने की लागतें।

   (iii) स्टॉक समाप्त हो जाने की लागतें अर्थात स्टॉक समाप्त हो जाने पर ग्राहक अन्य प्रतिस्पर्धी व्यापारियों से माल क्रय करते हैं और संस्था को हानि होती है।

   (iv) अवसर लागतें या लाभ अर्थात् कभी–कभी अधिक माल क्रय करने के कारण छूटों या बट्टों का लाभ मिल जाता है, कभी–कभी कुछ समय बाद उत्पादों के मूल्य बढ़ जाने से अधिक क्रय करने का लाभ मिल जाता है।

   स्कन्ध सम्बन्धी निर्णय करते समय इन सभी लागतों/लाभों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

स्कन्ध नियन्त्रण की आव□यकता अथवा महत्व–

आज औद्योगिक संस्थाओं द्वारा वांछित मात्रा में स्कन्ध/सामग्री रखना ही उनकी कुशलता का द्योतक है। स्कन्ध प्रबन्ध पर किये गये अनुसंधान से पता चलता है कि अधिकांश संस्थाओं में होने वाली हानि का 50 प्रतिशत भाग प्रभावी स्कन्ध नियन्त्रण के द्वारा कम किया जा सकता है। आज उद्योगों में रोकड़ की भाँति स्कन्ध पर नियन्त्रण रखना भी आवश्यक हो गया है।

स्कन्ध नियन्त्रण की आवश्यकता अथवा महत्व निम्नलिखित हैं–

1. **वृहत् एवं जटिल व्यवसाय**– औद्योगिक संस्थाओं के बढ़ते हुए आकार एवं जटिलता के कारण स्कन्ध नियन्त्रण आवश्यक हो गया। वर्तमान समय में स्कन्ध की लागतों, अपव्यय, क्षय एवं अप्रचलन आदि की चुनौतियों ने प्रबन्धकों को ध्यान इनके प्रभावी प्रबन्ध एवं नियन्त्रण की ओर खींचा है।

2. **तरलता दबाव**– औद्योगिक संस्थानों में विनियोजित पूँजी का कम से कम 20 प्रतिशत भाग निर्मित माल में लगा होता है। अतः उन पर पूँजी की आवर्तनशीलता के लिए दबाव बना रहता है। कुशल नियन्त्रण के अभाव में इन संस्थाओं की दीवालियेपन की स्थिति का सामना करना पड़ सकता है।

3. **प्रतिस्पर्द्धा पर रोक**– स्कन्ध नियन्त्रण से यथासमय आवश्यकतानुसार बाजार में माल उपलब्ध होता है। फलस्वरूप ग्राहकों को मजबूरी में स्थानापन्न वस्तुओं को ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं हैं। इससे संस्था के उत्पादों से उत्पन्न प्रतिस्पर्द्धा पर रोक लग जाती है।

4. **उत्पादन के साधनों का अनुकूलतम उपयोग**– औद्योगिक संस्थाओं में स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था उचित होने से संस्था के उत्पादन साधनों का अनुकूलतम उपयोग किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि स्कन्ध नियन्त्रण के अन्तर्गत संयन्त्र, मशीनें, कारखाना स्थान, परिवहन, भण्डारण एवं उपकरणों आदि की उचित क्षमता स्थापित की जा सकती है और उनका पूर्ण अनुकूलतम उपयोग किया जा सकता है।

5. **उत्पाद–मिश्रण का सन्तुलन**– स्कन्ध नियन्त्रण से संस्था का उत्पाद मिश्रण, सन्तुलन में बना रहता है। इसका कारण यह है कि संस्था द्वारा बनाये एवं बेचे जाने वाले प्रत्येक उत्पाद का स्कन्ध स्तर निर्धारित करता है। इससे सभी उत्पादों का निर्माण एवं विक्रय कार्यक्रम निर्धारित रूप से चलता रहता है। परिणामस्वरूप किसी भी प्रकार से उत्पाद के निर्माण एवं विक्रय में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता होता है।

6. **परिमाणात्मक छूट का लाभ**– स्कन्ध नियन्त्रण से संस्था को माल के क्रय पर परिमाणात्मक छूट का लाभ मिल सकता है, क्योंकि–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) इस व्यवस्था में संस्था की स्कन्ध की आवश्यकता का समुचित अनुमान लगाया जा सकता है।

(ii) सामग्री प्रबन्धकों को संस्था में सम्भावित कच्चे–माल, सहायक सामग्रियों आदि की आवश्यकता का पहले

से ही ज्ञान हो जाता है।

(iii) किसी भी आपूर्तिकर्ता से सम्पूर्ण माल के क्रय का अनुबन्ध कर सकते हैं।

7. **कोशों की तरलता**– स्कन्ध नियन्त्रण से संस्था के कोषों की तरलता बनी रहती है। इसका कारण यह है कि इस विधि से स्कन्ध नियन्त्रण का स्तर वही रखा जाता है, जो संस्था के कोषों को देखते हुए उचित होता है। यही नहीं, स्कन्ध नियन्त्रण से अन्य कार्यो की आवश्यकता के समय भी नकद कोष उपलब्ध रहता है।

8. **निरन्तर उत्पादन चक्र**– स्कन्ध नियन्त्रण के माध्यम से संस्था का उत्पादन चक्र निरन्तर चलता रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि संस्था द्वारा उचित स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था के तहत प्रत्येक प्रकार की सामग्री के पुनर्आदेश स्तर के साथ–साथ न्यूनतम स्टॉक स्तर तथा खतरनाक स्टॉक स्तर का पूर्व निर्धारण कर लिया जाता है।

9. **भण्डारण लागतों में बचत**– संस्था में उत्पादित एवं खरीदे गये माल का भण्डारण भी आवश्यक होता है। उचित भण्डारण व्यवस्था के अभाव में माल के खराब होने, चोरी हो जाने, नष्ट होने आदि का भय रहता हैं माल का उचित भण्डारण करने के लिए अनेक प्रकार के व्यय करने होते हैं। स्कन्ध नियन्त्रण विधि के अन्तर्गत ऐसी भण्डारण व्यवस्था की जाती है जिससे माल की किस्म एवं सुरक्षा में कमी नहीं आती है और उसके रखरखाव की लागत भी नियन्त्रित रहती है।

10. **जोखिमों पर नियन्त्रण**– स्कन्ध नियन्त्रण तकनीक के द्वारा जोखिमों पर नियन्त्रण किया जा सकता हैं। इसका कारण यह है कि इसके अन्तर्गत सामग्री की आवश्यकता का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। इसके पश्चात् उसी अनुमान के अनुसार क्रय नीति, भण्डारण नीति एवं उपयोग नीति को लागू किया जा सकता है।

11. **साख का निर्माण**– स्कन्ध नियन्त्रण के माध्यम से उत्पादन में निरन्तरता एवं विक्रय में सुलभता दोनों की व्यवस्था बनाये रखना सम्भव हो जाता है। परिणामस्वरूप ग्राहकों को कम लागत पर अच्छी किस्म की वस्तुएँ उपलब्ध करायी जाती है। व्यवसाय में निरन्तरता एवं स्पष्टता बनी रहने से व्यक्ति एवं व्यवसाय की साख में लगातार वृद्धि होती है।

12. **लाभों में वृद्धि**– व्यवसाय लाभ कमाने के लिए किया जाता है। अतः स्कन्ध प्रबन्ध कार्यो पर इस तरह नियन्त्रण किया जाता है कि उत्पादन कार्य में कोई रूकावट नहीं आती है। इसके अतिरिक्त ग्राहकों से मधुर सम्बन्ध भी बने रहते हैं और लाभों में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

13. **ग्राहकों की सन्तुश्टि**– स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था से ग्राहक भी सन्तुष्ट रहते हैं क्योंकि एक ओर उन्हें निरन्तर माल मिलता रहता है तो दूसरी ओर अन्य प्रतिस्पर्द्धी उत्पादों पर जाने की आवश्यकता नहीं होती है।

14. **विनियोजित धन का अधिकतम उपयोग**– उचित नियन्त्रण व्यवस्था अपनाने से विनियोजित धन का अधिकतम उपयोग होता है क्योंकि आवश्यकता से अधिक पूँजी का विनियोजित नहीं करने से ब्याज का अधिक भार नहीं आता है, अत्यधिक स्कन्ध नहीं रखने से दूसरी हानियाँ नहीं बढ़ती हैं।

15. **अर्द्ध–निर्मित माल का कु□ाल उपयोग**– कुशल स्कन्ध नियन्त्रण द्वारा निर्माणाधीन माल के स्कन्ध स्तर को अनुकूलतम रखा जा सकता है अर्थात् इस विधि में उत्पादन प्रक्रिया के अन्तर्गत होने वाले विलम्ब को रोकने तथा अर्द्ध–निर्मित माल के स्तर को कम करने में सहायक होता है।

स्कन्ध नियन्त्रण की तकनीकें / विधियाँ–

स्कन्ध नियन्त्रण की विभिन्न विधियाँ या तकनीकें निम्नलिखित हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) न्यूनतम–अधिकतम तकनीक।

(ii) पुनः आदेश बिन्दु तकनीक।

(iii) वेड विश्लेषण तकनीक।

(iv) ए.बी.सी. विश्लेषण तकनीक।

(v) मितव्ययी/आर्थिक आदेश मात्रा तकनीक।

(I) न्यूनतम–अधिकतम तकनीक–

स्कन्ध नियन्त्रण की इस तकनीक में स्कन्ध की प्रत्येक मद हेतु एक अधिकतम एवं न्यूनतम स्तर निर्धारित कर दिया जाता है। इस तकनीक के अन्तर्गत अधिकतम स्कन्ध स्तर का निर्धारण माँग या आवश्यकता की तीव्रता के आधार पर किया जाता है। न्यूनतम स्तर उस स्तर पर निर्धारित किया जाता है जिस पर सामग्री क्रय आदेश देने पर आदेश अवधि में उत्पादन रूकने की सम्भावना न हो। इसलिए स्कन्ध के न्यूनतम स्तर पर सामग्री का क्रय आदेश दे दिया जाता है जिससे सामग्री के प्राप्त होने के पश्चात् सामग्री का अधिकतम स्तर प्राप्त हो जाता है।

न्यूनतम एवं अधिकतम स्तर का निर्धारण इस प्रकार किया जा सकता है–

1. **न्यूनतम स्तर का निर्धारण**– स्कन्ध की वह न्यूनतम मात्रा जो सामान्यतया सदैव भण्डार–गृह में रखी जाती हे, न्यूनतम स्कन्ध स्तर कहलाता है। यह आदेश के पश्चात् माल प्राप्ति में होने वाली सम्भावित देरी की स्थिति में उत्पादन बन्द हो जाने की जोखिम से बचने के उद्देश्य से रखा जाता है। इसे सुरक्षा स्कन्ध भी कहते हैं।

व्यवसाय में स्कन्ध के इस न्यूनतम स्तर को बनाये रखना नितान्त आवश्यक होता है क्योंकि उससे कम स्कन्ध होने पर उत्पादन कार्य/बिक्री बन्द हो सकती है। इस स्तर का निर्धारण स्कन्ध की औसत उपभोग दर, माल की सुपुर्दगी में लगने वाला समय तथा पुनः आदेश सीमा को दृष्टिगत रखकर किया जाता है। इसे सूत्र रूप में इस प्रकार बताया जा सकता है –

Minimum Level = Re-Order Level-(Normal Consumption Rate × Normal Re-Order Period)

अथवा

Safety Stock =No. of Days of Sefety × Per day Consumption of Invetory

न्यूनतम स्कन्ध स्तर का निर्धारण करते समय इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

(i) स्कन्ध की औसत उपभोग दर, (ii) स्कन्ध रखने की लागत, (iii) स्कन्ध प्राप्ति का समय, (iv) पुनः आदेश की सीमा, (v) आपूर्ति स्त्रोतों की विश्वसनीयता, (vi) स्कन्ध की प्रकृति, (vii) तैयार माल की आकस्मिक माँग एवं (viii) सुरक्षा स्कन्ध की न्यूनतम मात्रा आदि।

2. **अधिकतम स्तर का निर्धारण**– अधिकतम स्कन्ध स्तर का अर्थ उस स्तर से है जिससे अधिक मात्रा सामान्यतया भण्डार–गृह में नहीं रखी जाती है। इस स्तर से अधिक स्कन्ध रखने पर एक ओर संस्था को ब्याज की हानि होती है तो दूसरी ओर अप्रचलन का भय बना रहता है। लेकिन इस तरह का निर्धारण करते समय स्कन्ध का भण्डारण करने का पर्याप्त स्थान होना आवश्यक है। अधिकतम स्तर का निर्धारण इस सूत्र से किया जा सकता है –

Maximum Level = (Re-Order + Re-Order Quantity) – Minimum

Consumption Rate ×Minimum Re-Order Period)

अथवा

Maximum Level = Minimum/Safety Stock + Re-Order/ Economic Order Quantity

स्कन्ध का अधिकतम स्तर निर्धारित करते समय इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए– (i) भण्डार गृह की संग्रहण क्षमता, (ii) स्कन्ध की अधिप्राप्ति में लगने वाला समय, (iii) उपलब्ध कार्यशैली, (iv) स्कन्ध के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अप्रचलन की सम्भावनाएँ (v) स्कन्ध के विनाश की क्षति, (vi) रूप परिवर्तन (संकुचन और विस्तार), (vii) छीजत आदि के कारण व्यर्थ होने की सम्भावना, (viii) स्कन्ध संग्रहण की लागतें आदि।

3. **पुनः आदे□ा स्तर का निर्धारण**– स्कन्ध के पुनः आदेश स्तर का तात्पर्य भण्डार गृह में स्कन्ध की मात्रा के उस स्तर से है जिस पर पहुँचते ही सामग्री क्रय सम्बन्धी आवश्यक कार्यवाहियाँ प्रारम्भ कर दी जाती हैं ताकि सामग्री मात्रा का न्यूनतम स्तर तक पहुँचने से पूर्व ही आदेशित सामग्री प्राप्त हो जाये। इस स्तर के निर्धारण हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

Re-Order Level= Maximum Consumption ×Maximum Re-Order

अथवा

Re-Order Point/Level = Usage during Lead Time + Sefety Stock

अथवा

Re-Order Point/Level= (Lead Time ×Usage Rate) + Usage Rate ×Days of Safety

पुनः आदेश स्कन्ध स्तर का निर्धारण करते समय इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

(i) आदेश की कार्यवाही का समय, (ii) संस्था में माल की खपत, (iii) आदेश देने के पश्चात् माल प्राप्त होने की अवधि आदि।

(II) पुनः आदे□ा बिन्दु तकनीक–

पुनः आदेश बिन्दु/स्तर से तात्पर्य भण्डार गृह में स्कन्ध की मात्रा के उस स्तर से है जिस पर पहुँचते ही माल के क्रय सम्बन्धी कार्यवाही प्रारम्भ कर दी जानी चाहिए ताकि स्कन्ध के न्यूनतम स्तर तक पहुँचने से पूर्व ही आदेशित माल प्राप्त हो जाये।

पुनः आदेश बिन्दु का निर्धारण निम्नलिखित विधियों में से किसी के द्वारा किया जा सकता है –

1. **स्थिर पुनर्आदे□ा मात्रा विधि**– इस विधि को अपनाने पर आदेश की मात्रा निश्चित कर दी जाती है और स्कन्ध का स्तर पुनः आदेश बिन्दु पर पहुँचते ही पुनः आदेश दिया जाता है।

2. **पुनर्भरण आदे□ा नियन्त्रण विधि**– इस विधि को अपनाने पर पुनः आदेश समय स्थिर रहता है, लेकिन स्कन्ध के स्टॉक को ध्यान में रखते हुए आदेशित मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। आवधिक अन्तरालों पर स्कन्ध की मात्रा पर पुनर्विचार किया जाता है और स्कन्ध की मात्रा में कमी आने पर आदेश दे दिया जाता है। पुनर्विचार के समय वास्तविक स्कन्ध से स्थिर पुनर्भरण स्तर जितना अधिक होता है, उतनी ही इकाइयों का आदेश दे दिया जाता है।

किसी भी संस्था में स्कन्ध का पुनः आदेश स्तर माल के क्रय में लगने वाले समय से है। संस्था में माल की खपत तथा सुरक्षा स्कन्ध की मात्रा से प्रभावित होता है। पुनः आदेश बिन्दु स्तर की गणना को पूर्व शीर्षक में बताये सूत्रानुसार किया जा सकता है।

पुनः आदे□ा बिन्दु/स्तर की गणना हेतु निम्न बातों की आव□यकता होती है–

1. **प्रतीक्षा अवधि (Lead Time)**– यह वह अवधि होती है जो स्कन्ध के क्रय हेतु आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ करने से लेकर स्कन्ध की भण्डार–गृह में सुपुर्दगी तक लगती है। इस अवधि का निर्धारण संस्था के रिकॉर्ड तथा भूतकालीन अनुभव के आधार पर किया जाता है। प्रतीक्षा अवधि में टेण्डर माँगनें, तुलनात्मक अध्ययन करने, लिपिकीय देरी, सामग्री प्राप्ति, उसका निरीक्षण, संग्रहण भुगतान एवं पूर्तिकर्त्ताओं से सुपुर्दगी लेने आदि में लगने वाले समय को सम्मिलित किया जाता है।

2. **उपयोग दर (Usage Rate)**– व्यवसाय के अन्तर्गत उत्पादन में प्रतिदिन काम में ली जाने वाली सामग्री अथवा प्रतिदिन बिक्री की मात्रा को उपयोग दर कहते हैं। इसकी गणना इस सूत्र से की जा सकती है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$Usage\ Time = \frac{Annual\ Consumption}{Days\ in\ a\ year}$$

यदि वर्ष में दिनों की संख्या ज्ञात नहीं हो तो गणना में सुविधा की दृष्टि से वर्ष में दिनों की संख्या 360 मानकर उपयोग दर की गणना की जा सकती है।

3. **सुरक्षा स्कन्ध (Safty Stock)**– सुरक्षा स्कन्ध, स्कन्ध की वह न्यूनतम मात्रा होती है जो माल का आदेश देने की पश्चात् सुपुर्दगी मिलने में होने वाली सम्भावित देरी के कारण उत्पादन अथवा बिक्री जारी रखने के उद्देश्य से रखी जाती हैं सुरक्षा स्कन्ध की गणना इस सूत्र से की जा सकती है –

Sefety Stock = Days of Sefty × Inventary Consumption per day

यह सुरक्षा स्कन्ध कितने दिनों के बराबर रखा जाए, इसकी गणना करना कठिन कार्य है। इसके लिए उपयोग दर में उच्चावचन, स्कन्ध विहीन होने की लागत तथा स्कन्ध रखने की लागत का अनुमान लगाना पड़ता है। इन तथ्यों के बारे में उचित अनुमान ''सम्भावना सिद्धान्त'' के आधार पर लगाया जा सकता है।

(III) वेड वि□लेशण तकनीक–

वेड से अभिप्राय Vital, essential and Desirable – प्राणधार या अत्यावश्यक, मूलभूत या आवश्यक एवं वांछनीय से है। वर्गीकरण की यह तकनीक स्पेयर पार्ट्स के स्कन्ध के प्रबन्ध एवं नियन्त्रण हेतु सामान्यतः काम में ली जाती है। किन्तु यह अन्य प्रकार के स्कन्ध के नियन्त्रण के लिए भी अपनायी जा सकती है।

वेड विश्लेषण तकनीक के अन्तर्गत स्पेयर पार्ट्स को उक्त तीन वर्गों में विभक्त किया, उनका उदाहरण सहित स्पष्टीकरण निम्नलिखित है–

1. **प्राणधार या अत्याव□यक**– वे पुर्ज जिनकी कुछ समय के लिए भी अनुपलब्धि लम्बे समय तक उत्पादन को अवरूद्ध कर सकती है तथा खोये हुए उत्पादन की हानि बहुत अधिक होती है। उदाहरण के लिए, मोटरकार में कार्बोरेटर को अत्यावश्यक पद की श्रेणी में रखा जा सकता है क्योंकि इसके बिना मोटरकार नहीं चल सकती है।

2. **मूलभूत या आव□यक**– आवश्यक वर्ग में उन पुर्जों को रखा जाता है जिनकी अनुपलब्धि कुछ घण्टों या एक दिन से अधिक बर्दाश्त नहीं की जा सकती है तथा खोये हुए उत्पादन की लागत ऊँची होती है अर्थात् तो संस्था कम्पनी के परिचालन के लिए आवश्यक है। उदाहरण के लिए, मोटरकार का हॉर्न।

3. **वांछनीय**– वांछनीय वर्ग में उन पुर्जों को रखा जाता है जिनकी अनुपलब्धि को लगभग सप्ताह या अधिक के लिए बर्दाश्त किया जा सकता है, बिना कुशलतापूर्वक काम किया जा सकता है और उत्पादन भी अवरूद्ध नहीं होता है, किन्तु सौन्दर्यबोधी मूल्य अधिक होता है। उदाहरणार्थ, मोटरकार का सीट कवर।

(IV) ए.बी.सी. वि□लेशण तकनीक

ए.बी.सी. का अर्थ है, Always Better Control- सदैव बेहतर नियन्त्रण। यह स्कन्ध/सामग्री नियन्त्रण 'अपवाद द्वारा प्रबन्ध' सिद्धान्त पर आधारित एक विधि अथवा तकनीक है।

इस तकनीक में स्टॉक में रखी विभिन्न वस्तुओं का विश्लेषण कर उनके नियन्त्रण के स्तर, निरीक्षण की अभिवृत्ति तथा अलग–अलग आर्थिक मात्राओं का निर्धारण करना होता है। इसके अन्तर्गत केवल ऐसी मदों पर ही नियन्त्रण केन्द्रित करना होता है जिन पर अधिक ध्यान देना आवश्यक हो। यह इस धारणा पर आधारित है कि किसी भी उद्योग एवं व्यवसाय में प्रयुक्त की जाने वाली समस्त वस्तुओं में कुछ ही मदें ऐसी होती हैं जो अत्यन्त मूल्यवान एवं महत्वपूर्ण होती हैं और उनका मूल्य उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त सम्पूर्ण सामग्री लागत का अधिकांश भाग होता है। इसके विपरीत अपेक्षाकृत अधिकांश मदों का मूल्य सम्पूर्ण सामग्री लागत का गौण अंश होता है। अतः सामग्री की कुछ ही मदों पर सतत् एवं सरल नियन्त्रण की आवश्यकता होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्कन्ध नियन्त्रण की इस तकनीक के अन्तर्गत वस्तुओं की विभिन्न मदों का विश्लेषण उनके मूल्यों के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है। ये तीन वर्ग ए, बी एवं सी होते हैं। अतः इसे ABC Analysis कहते हैं। इसके अनुसार तीन विभिन्न वर्ग इस प्रकार बनाये जाते हैं–

A वर्ग : सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान या कीमती वस्तुएँ।

B वर्ग : अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण एवं कीमती वस्तुएँ।

C वर्ग : सबसे कम महत्वपूर्ण एवं कम कीमती वस्तुएँ।

A वर्ग में वस्तुओं की संख्या बहुत ही न्यून होती है, लेकिन ये वस्तुएँ कुल विनियोजित पूँजी के अधिकतम भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस वर्ग की मदों के क्रय करने में अधिक पूँजी लगाने के कारण उन्हें थोड़ी–थोड़ी मात्रा में बार–बार क्रय करना चाहिये।

B वर्ग में A तथा C वर्गों के मध्य श्रेणी की वस्तुएँ होती हैं, जिनको क्रय करने की व्यवस्था सुविधानुसार करनी चाहिए। इन वस्तुओं पर अपेक्षाकृत कम नियन्त्रण की आवश्यकता है।

C वर्ग में सबसे अधिक वस्तुएँ होती हैं जिनका मूल्य, कुल सामग्री लागत का न्यून अंश ही होता है। इन वस्तुओं के क्रय करने में अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं होती है। अतः ऐसी वस्तुओं को काफी मात्रा में क्रय किया जाना चाहिए जिसमें अधिक मात्रा में क्रय के सभी लाभ उपलब्ध किये जा सकें। इन वस्तुओं के नियन्त्रण पर अधिक समय तक लागत लगाना व्यर्थ ही होता है।

इस प्रकार समस्त वस्तुओं को उनके महत्व के आधार पर वर्गीकृत करने से प्रबन्ध महत्वपूर्ण वस्तुओं के नियन्त्रण पर अधिक ध्यान केन्द्रित कर सकता है और कम महत्वपूर्ण वस्तुओं पर नियन्त्रण का कार्य लिपिक वर्ग पर छोड़ सकता है। चूंकि इस विधि के अन्तर्गत चुनी गई अधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं के नियन्त्रण पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इसलिए इसे चयनात्मक स्कन्ध नियन्त्रण अथवा महत्व एवं अपवाद द्वारा नियन्त्रण भी कहते हैं।

ए.बी.सी. विश्लेषण को इस उदाहरण द्वारा भी समझाया जा सकता है–

(V) मितव्ययी या आर्थिक आदे□ा मात्रा तकनीक–

मितव्ययी आदेश मात्रा का अर्थ एक ऐसी आदर्श मात्रा से है जो एक बार में मितव्ययिता पूर्ण खरीदी जा सकती है और जिसके लिए आदेश दिया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, संस्था के लिए क्रय की जाने वाली वस्तु की उस मात्रा को आर्थिक आदेश मात्रा कहते हैं, जिस पर न्यूनतम व्यय हो। वचन एवं कोइग्सि वर्ग के अनुसार,

''मितव्ययी आदेश मात्रा, वह आदेश मात्रा है, जिस पर स्कन्ध प्रबन्ध की कुल परिवर्तनशील लागतें न्यूनतम होती हैं।''

इस प्रकार एक बार क्रय की जाने वाली सामग्रियों/वस्तुओं की मात्रा का निर्धारण इस प्रकार से करना है ताकि भण्डारण की लागत एवं आदेश देने की लागत में संतुलन स्थापित हो सके और इन दोनों प्रकार की लागतों का योग न्यूनतम हो सके। अतः सन्तुलन की इस स्थिति को आर्थिक या मितव्ययी आदेश मात्रा कहते हैं।

मितव्ययी आदेश मात्रा की गणना करने के लिए निम्नलिखित मान्यताएँ महत्वपूर्ण हैं, जिनका ध्यान रखना चाहिए–

1. **पूर्वानुमान**– इसमें माल या सामग्री का वार्षिक आवश्यकताओं अर्थात् माँग का निश्चित पूर्वानुमान किया जा सकता है एवं इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

2. **हानि पर विचार नहीं करना**– इसके अन्तर्गत स्कन्ध समाप्त होने की लागत पर ध्यान नहीं रखा जाता है अर्थात् स्कन्ध की कमी के कारण उत्पादन में देरी एवं कम बिक्री आदि से होने वाली हानि पर विचार नहीं किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **सुरक्षा स्कन्ध पर विचार नहीं करना**– इसमें सुरक्षा स्कन्ध पर भी विचार नहीं किया जाता है। इसका कारण यह है कि सुरक्षा स्कन्ध समाप्त हो जाने से होने वाली सम्भावित हानि से सुरक्षा हेतु रखी गई स्कन्ध की न्यूनतम मात्रा होती है।

4. **अनुपात में परिवर्तन**– स्कन्ध रखने की लागत, मात्रा एवं समय के अनुपात में परिवर्तन होता है।

5. **आदे□ा की मात्रा का प्रमाण**– सामग्री के प्रति इकाई मूल्य पर आदेशित मात्रा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

6. **स्कन्ध प्रबन्ध की लागत**– यह तकनीक यह मानकर चलती है कि स्कन्ध प्रबन्ध की लागत, आदेश लागत एवं रख–रखाव लागत के योग पर निर्भर करती है। इन दोनों का विवेचन इस प्रकार है–

(i) **आदे□ा लागत**– एक आदेश देने पर जो अतिरिक्त लागत आती है, उसे आदेश लागत कहते हैं। यह लागत आदेश के आकार पर निर्भर करती है। इस प्रकार की लागत में क्रय विभाग के कर्मचारियों का वेतन, स्टेशनरी, टेलीफोन एवं डाक–व्यय जो सामान्यतः टेण्डर आमन्त्रित करने, तुलनात्मक विवरण तैयार करके आदेश देने एवं उसका अनुवर्तन करने में किये जाते हैं और लेखांकन तथा भुगतान सम्बन्धी व्यय सम्मिलित होते है।

आदेश लागत समय–समय पर परिवर्तित होती है। इसमें परिवर्तन का कारण आदेशों की संख्या तथा आदेशित वस्तुओं की संख्या में परिवर्तन होता है। आदेश देने की संख्या जितनी अधिक होगी और क्रय की मात्रा जितनी कम होगी, यह लागत उतनी ही अधिक होगी। विपरीत स्थिति में आदेश लागत कम होगी।

(ii) **रख–रखाव लागत**– स्कन्ध की रख–रखाव लागत में स्कन्ध में विनियोजित पूंजी पर ब्याज, स्कन्ध भण्डारण एवं सम्भालने की लागत, बीमा कर, अप्रचलन की लागत, सामग्री क्षय की लागत एवं समंक संसाधन इत्यादि की लागतें सम्मिलित की जाती हैं। स्कन्ध की मात्रा अधिक होने से यह लागत आनुपातिक कम होगी। वस्तुओं की मात्रा कम होने से यह लागत अधिक होगी।

7. **मात्रा छूट एवं आदे□ा मात्रा**– आर्थिक आदेश मात्रा तकनीक में प्रति इकाई कीमत स्थिर रहती है। चाहे आदेशित मात्रा का आकार कितना ही क्यों न हो, परन्तु भारी मात्रा में वस्तु का क्रय करने पर मात्रा छूट उपलब्ध होती है। अतः मात्रा छूट का लाभ प्राप्त करने हेतु मितव्ययी आदेश मात्रा से अधिक मात्रा का आदेश दिया जाए या नहीं दिया जाए। ऐसा करने पर कुल आदेश देने की लागत में कमी होती है। परन्तु स्कन्ध रखने की लागत में वृद्धि होगी। अतः स्कन्ध रखने की लागत एवं आदेश देने की लागत में विशुद्ध वृद्धि की तुलना, मात्रा छूट के फलस्वरूप प्राप्त बचत से करेंगे। यदि बचत की राशि लागत में शुद्ध वृद्धि से अधिक हो तो मितव्ययी आदेश मात्रा से अधिक मात्रा का आदेश दिया जा सकता है।

मितव्ययी आदेश मात्रा का निर्धारण करते समय सबसे बड़ी समस्या स्कन्ध को प्राप्त करने की लागत एवं रखने की लागत के मध्य संतुलन स्थापित करता है। मितव्ययी आदेश की मात्रा की गणना करने की निम्नलिखित तीन विधियाँ है।

1. **सूत्र विधि**– मितव्ययी आदेश मात्रा की सूत्र विधि को 'वर्गमूल सूत्र' या 'विल्सन सूत्र' भी कहते हैं। आदेश लागत एवं रख–रखाव लागतों की गणना के बाद निम्नलिखित सूत्र की सहायता से आर्थिक आदेश मात्रा की गणना की जा सकती है–

$$\text{E.O.Q.} = \sqrt{\frac{2RO}{C}}$$

यहाँ : R = Annual requirement in Units O = Ordering Cost per order

C = Carrying Cost per unit per year

2. **वि□लेशणात्मक विधि**– इस विधि के अन्तर्गत सामग्री के वार्षिक उपयोग को अलग–अलग आकार के आदेशों में वर्गीकृत करके उन पर कुल स्कन्ध लागत या कुल परिवर्तनशील लागत जो कि भण्डारण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लागत तथा आदेश देने की लागत का योग होती है, ज्ञात की जाती है। जिस आकार के आदेश पर कुल स्कन्ध लागत न्यूनतम हो, वही आर्थिक आदेश मात्रा मानी जाती है। इस विधि को भूल एवं सुधार भी कहते हैं।

3. **रेखाचित्र विधि**– मितव्ययी आदेश मात्रा का निर्धारण रेखाचित्र विधि की सहायता से भी किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न आदेश आकारों के अनुसार भण्डारण लागत आदेश देने की लागत तथा कुल स्कन्ध लागत को ग्राम पर अंकित किया जाता है। जिस बिन्दु पर भण्डारण लागत रेखा और आदेश देने की लागत रेखा एक–दूसरे को काटती है। वही आर्थिक आदेश मात्रा होती है और इसी बिन्दु पर कुल स्कन्ध लागत न्यूनतम होती है।

स्कन्ध नियन्त्रण की प्रक्रिया–

माल के भौतिक वितरण में स्कन्ध एक महत्वपूर्ण अंश है क्योंकि बिना उचित मात्रा एवं बिना सत्यापन स्टॉक के आदेशों की पूर्ति नहीं की जा सकती है, अन्यथा स्कन्ध लागत बढ़ जायेगी और गोदाम में स्टॉक रखने की समस्या उत्पन्न हो जायेगी। अतः ऐसी समस्या उत्पन्न हो, के लिए एक निश्चित प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक है।

स्कन्ध नियन्त्रण की प्रक्रिया में निहित कदम या चरण निम्नलिखित हैं–

1. **स्कन्ध की आव□यकता का निर्धारण**– स्कन्ध नियन्त्रण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम स्कन्ध की आवश्यकता का निर्धारण मदवार किया जाना चाहिए ताकि कोई भी मद छूट न जाये, अन्यथा उत्पादन एवं वितरण कार्य करने में समस्या उत्पन्न हो सकती है, स्कन्ध की आवश्यकता का निर्धारण या पता लगाने के उद्देश्य से पुराने अभिलेखों, विवरणों, आँकड़ों, आधारित स्टॉक सूची आदि का उपयोग किया जा सकता है।

2. **स्कन्धों के क्रय की योजना बनाना**– संस्था में स्कन्ध की आवश्यकता का निर्धारण करने के पश्चात् इसके क्रय की योजना बनायी जाती है। इस हेतु स्कन्ध की न्यूनतम एवं अधिकतम मात्रा, सुरक्षा स्कन्ध की मात्रा एवं मितव्ययी आदेश मात्रा आदि का निर्धारण किया जाता है। इसके लिए प्रतिरूप स्टॉक योजना का उपयोग किया जा सकता है, जिसके प्रत्येक प्रतिरूप के रंग एवं आकार के अनुसार स्टॉक रखा जाता है।

3. **स्कन्धों के क्रय की व्यवस्था करना**– स्कन्ध नियन्त्रण की प्रक्रिया में स्कन्धों के क्रय की योजना बनाने के पश्चात उसके क्रय की व्यवस्था करने का कदम आता है। इसके लिए स्कन्ध प्रबन्धक एवं नियन्त्रक विभिन्न आपूर्तिकर्त्ताओं से टेण्डर माँगता है, उनकी तुलना करता है, उनसे विभिन्न प्रकार की शर्ते तय करता है, उनसे सौदेबाजी करता है और अन्त में आपूर्ति अनुबन्ध करता है।

4. **स्कन्धों का क्रयादे□ा करना**– स्कन्ध नियन्त्रण प्रक्रिया के इस कदम में स्कन्ध की आपूर्ति हेतु क्रयादेश बनाया जाता है एवं जिस आपूर्तिकर्त्ता से आपूर्ति अनुबन्ध हुआ है, उसे भेज दिया जाता है ताकि समय पर स्कन्धों की आपूर्ति प्राप्त की जा सके। इसके लिए परिवहन, सुपुर्दगी, स्कन्ध की जाँच, भण्डारण एवं लेखांकन आदि की समुचित व्यवस्था की जाती है।

5. **स्कन्धों के स्तर की जाँच करना**– संस्था में स्कन्धों का उचित स्तर बनाये रखने के लिए समय–समय पर प्रबन्धकों द्वारा स्कन्ध स्तर की जाँच की जानी आवश्यक है। ऐसा करने से स्कन्ध के प्रमाणित उपयोग एवं वास्तविक उपयोग की जानकारी हो जाती हैं। इसमें किसी भी प्रकार का विचलन हो तो उसको समय रहते दूर किया जा सकता है।

6. **भौतिक सत्यापन की व्यवस्था करना**– स्कन्ध नियन्त्रण की प्रक्रिया के कदमों में इस कदम में स्कन्धों के भौतिक सत्यापन की व्यवस्था करनी चाहिए। हालांकि प्रबन्धक द्वारा सभी प्रकार के स्कन्ध की न तो स्वयं द्वारा गिनती की जा सकती है, न माप–तोल। इसलिए इस कार्य को करने के लिए आन्तरिक अंकेक्षक या उपयुक्त एवं योग्य व्यक्ति को नियुक्ति किया जाना चाहिए ताकि उसे उत्तरदायी ठहराया जा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. **सामयिक प्रतिवेदन की व्यवस्था करना**– स्कन्ध नियन्त्रण की प्रक्रिया के अन्तिम कदम में प्रबन्धकों को चाहिए कि वे समय–समय पर स्कन्ध के सम्बन्ध में एक सामयिक प्रतिवेदन की व्यवस्था करें। परिणामस्वरूप स्कन्धों का क्रयादेश देते समय अलग से प्रतिवेदन तेयार करने का कार्य नहीं करना पड़ेगा। इसके लिए भण्डार अधिकारी, कारखाना नियन्त्रक या उत्पादन नियन्त्रक में से किसी को प्रभारी बनाया जा सकता है।

एक श्रेश्ठ या प्रभावी□ाली स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था के गुण अथवा तत्व–

एक श्रेष्ठ या प्रभावशाली स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था में निम्नलिखित गुणों अथवा तत्वों का होना आवश्यक है–

1. स्कन्ध नियन्त्रण का मुख्य उद्देश्य बिना किसी बाधा के उत्पादन का निर्बाध गति से होना होता है। अतः स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो न केवल निर्बाध गति से उत्पादन करने वाली हो अपितु संस्था के उद्देश्यों के अनुरूप भी होने वाली हो।
2. स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो सम्बन्धित व्यक्तियों को आसानी से समझ में आ जाये एवं उसका उपयोग भी कर सके।
3. एक श्रेष्ठ स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था के लिए लोचता या लोचपूर्ण होना आवश्यक है ताकि उसमें समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन तथा समायोजन किया जा सके।
4. स्कन्ध नियन्त्रण का उद्देश्य निर्बाध गति से उत्पादन प्रक्रिया होना है। अतः इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो इसे निरन्तर बनाये रखने में योगदान दे सके।
5. एक अच्छी स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था हेतु मितव्ययी अर्थात् कम से कम लागत वाली व्यवस्था होनी चाहिए।
6. एक श्रेष्ठ स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था हेतु आधुनिक विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए ताकि उसका अधिकतम लाभ उठाया जा सके।
7. श्रेष्ठ स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था हेतु स्कन्ध के सत्यापन की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि प्रत्येक मद का सत्यापन हो सके।
8. एक श्रेष्ठ स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था के लिए सुरक्षा व्यवस्था होनी चाहिए।
9. स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था को श्रेष्ठ या प्रभावशाली बनाये रखने के लिए जोखिमों एवं हानियों का बीमा होना चाहिए।
10. स्कन्ध नियन्त्रण व्यवस्था में सुदृढ़ निरीक्षण की व्यवस्था होना आवश्यक है ताकि स्कन्धों के दुरूपयोग को रोका जा सकें।

बोध प्र□न–

लघुत्तरात्मक प्र□न–

1. भौतिक वितरण का अर्थ व विशेषताएँ बताइये?
2. उत्पाद के आदेश प्रसंस्करण सम्बन्धी निर्णय व परिवहन सम्बन्धी निर्णय को समझाइये।
3. स्कन्ध नियन्त्रण का अर्थ व आर्थिक या ''मितव्ययी आदेश मात्रा'' से क्या आशय है।

निबन्धात्मक प्र□न–

1. भौतिक वितरण को परिभाषित कीजिए और इसके उद्देश्यों एवं क्षेत्र को समझाइये।
2. भौतिक वितरण से आप क्या समझते है। विपणन वितरण प्रबन्ध में इसका महत्व बताइये।
3. स्कन्ध नियन्त्रण के उद्देश्यों एवं विभिन्न तकनीकों को समझाइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संवर्द्धन (Promotion)

संवर्द्धन या संवर्द्धन मिश्रण शब्द एक व्यापक शब्द है। इसमें विपणन संचार की अनेक क्रियाएँ शामिल होती हैं। संवर्द्धन में विक्रय संवर्द्धन भी शामिल होता है। कोटलर तथा आर्मस्टांग के अनुसार—संवर्द्धन मिश्रण विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय, विक्रय संवर्द्धन तथा जन-सम्पर्क का एक विशिष्ट मिश्रण है, जिसमें एक संस्था अपने विज्ञापन एवं विपणन उद्देश्यों को पूरा करती है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि संवर्द्धन से आशय उन सभी क्रियाओं से होता है, जिसमें कोई संस्था अपने उत्पादों के प्रति ग्राहकों एवं भावी ग्राहकों में अनुकूल एवं सम्मोहक विचार उत्पन्न करती है। इसके अन्तर्गत विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय, विक्रय संवर्द्धन, प्रचार तथा जन-सम्पर्क आदि सभी शामिल होता है।

विक्रय संवर्द्धन के प्रकार एवं विधियाँ (Types and Methods of Sales Promotion)

अब समय बदल चुका है। आज बाजार में क्रेताओं की अपेक्षा विक्रेताओं की भीड़ ज्यादा दिखाई देती है। आज विक्रेता अपना माल बेचने के लिए अलग-अलग तरह से प्रयास कर रहे हैं। ये प्रयास अनेक रूपों में किये जा रहे हैं। इन प्रयासों को ही विक्रय संवर्द्धन के नाम से ही जाना जाता है अर्थात् विक्रय को बढ़ाने के लिए किया गया प्रयास ही विक्रय संवर्द्धन है। विक्रय संवर्द्धन की निम्न विधियाँ हैं—

I. उपभोक्ता वस्तुओं का विक्रय संवर्द्धन

उपभोक्ता के लिए विक्रय संवर्द्धन में वे सभी उपाय शामिल किये जाते हैं, जिनमें उपभोक्ता उन वस्तुओं को क्रय करने के लिए विक्रेता तक पहुंचता है। अर्थात् इसमें वे सभी विधियाँ शामिल होती हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता के साथ जुड़ी रहती हैं। इन सब प्रयासों व उपायों से उपभोक्ता को वस्तु के प्रति आकर्षित किया जाता है।

उपभोक्ता संवर्द्धन के लिए प्रायः निम्न सुविधाओं को काम में लिया जाता है—

1. मुफ्त नमूना

उपभोक्ता को नमूने के मुफ्त में पैकेट वितरण करना उपभोक्ता संवर्द्धन का एक प्रभावी उपाय है। उपभोक्ता इस नमूने का उपयोग कर स्वतः ही वस्तुओं के गुणों से प्रभावित हो जाता है और उस वस्तु का भविष्य में वह स्थायी ग्राहक बन जाता है। नमूने पैकेट घर-घर जाकर बांटे जा सकते हैं या फिर सड़क के किनारे खड़े होकर आते-जाते लोगों को दिये जाते हैं। ध्यान देने योग्य है कि मुफ्त नमूने उन्हीं वस्तुओं (उत्पादों) के दिये जाते हैं, जिनका मूल्य कम हो। जैसे—बीड़ी, सिगरेट, तेल, सर्फ, पाउडर, चायपत्ती तथा पाठ्य-पुस्तकें इत्यादि।

जब उपभोक्ता नमूने की वस्तु को काम में लेकर विश्वस्त हो जाता है तो वे माल का क्रय स्वतः ही करता है।

2. उपभोक्ता प्रतियोगिताएँ (Contest)

उपभोक्ता प्रतियोगिताओं का आयोजन भी विक्रय संवर्द्धन का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। ये प्रतियोगिताएँ कई प्रकार से करवाई जा सकती हैं, जैसे—

1. वस्तु से संबंधित वाक्य उपभोक्ता द्वारा पूरा करने के लिए दिया जाता है, जैसे—स्पराइड पीने वालों की बात ही कुछ और है। सबसे अच्छा सलोग्न बनाने वाले को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ईनाम दिया जाता है।

2. वस्तु के बारे में एक पत्र निश्चित शब्दों में लिखने को दे दिया जाता है। सबसे अच्छा पत्र लिखने वाले को ईनाम दिया जाता है।

3. वस्तु के नये-नये सुझाव मांगे जाते हैं।

4. पहेलियों का हल पूछा जाता है।

5. पद्य पूरा करने के लिए दिया जाता है।

प्रतियोगिता का आयोजन करने वालों को कुछ बातों का विशेष ध्यान देना चाहिए—

1. प्रतियोगिता की अन्तिम तिथि प्रारम्भ से ही निश्चित कर देनी चाहिए।
2. प्रतियोगिता का आयोजन पूर्व निश्चित नियमों के आधार पर ही किया जाना चाहिए।
3. नियमों का प्रकाशन पूर्व में ही कर देना चाहिए।
4. पुरस्कार की सूची पहले ही निश्चित कर लेनी चाहिए।
5. प्रतियोगिता आयोजन कराने से पहले देश के नियम व कानूनों को भी ध्यान में रख लेना चाहिए।

3. प्रीमियम (Premium)

यह भी विक्रय संवर्द्धन का एक प्रभावी उपाय है, जो आधुनिक युग में बहुत प्रचलित है। प्रीमियम वस्तु के रूप में दिया जाता है, जिसका मूल्य कम होता है। प्रीमियम के रूप में दी जाने वाली वस्तु को विक्रय की जाने वाली वस्तु के पैकेट के अन्दर पैक कर दिया जाता है और उस पैकेट पर लिख दिया जाता है कि पैकेट में अमुक वस्तु है, जैसे-नेशकेफे कॉफी के साथ फ्री मग, सर्फ के बड़े पैकेट के साथ बाल्टी फ्री। कभी-कभी प्रीमियम की सूचना पैकेट के ऊपर भी लगा दी जाती है तो कभी विक्रय की जाने वाली वस्तु के साथ खूबसूरत ढंग से ऊपर ही प्रीमियम की वस्तु चिपका दी जाती है, जिससे उपभोक्ता उस प्रीमियम की वस्तु को देखकर वस्तु खरीदने के लिए लालायित हो जाता है।

5. छूट या रिबेट—छूट देकर भी ग्राहक को माल खरीदने के लिए आकर्षित किया जाता है। इसमें ग्राहक को एक निर्धारित अवधि के लिए छूट दी जाती है। ग्राहक इस छूट का लाभ उठाने के लिए उस निर्धारित अवधि में माल खरीदता है। यह छूट विशेष अवसर—होली, दीपावली, राखी आदि पर दी जाती है।

6. बदली प्रस्ताव—वर्तमान में इस विधि का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। इसमें कुछ निर्माता किसी पुराने उत्पाद के बदले नया उत्पाद देने का प्रस्ताव करते हैं। इसे ग्राहकों द्वारा कुछ अतिरिक्त धन देने पर उसे नया उत्पाद मिल जाता है, जैसेर—पुराना स्कूटर, टी.वी., वाशिंग मशीन, रेडियो के बदले नया देने का प्रस्ताव दिया जाता है।

7. धन-वापसी प्रस्ताव—इस विधि द्वारा भी ग्राहकों से सीधा सम्पर्क बनाया जा सकता है तथा उनमें अनुभव इकट्ठे किये जा सकते हैं। इसमें निर्माता यह प्रस्ताव करता है कि उन ग्राहकों को वह एक निश्चित धनराशि वापिस करेगा जो उसके माल खरीदने का प्रमाण-पत्र संस्था को भेजेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

II. व्यापार संवर्द्धन विधियाँ (Trade Promotion Method)

उत्पादक की सफलता मध्यस्थों पर निर्भर करती है। अर्थात् उत्पादक थोक विक्रेताओं व फुटकर व्यापारियों का सहयोग प्राप्त कर सफलता के गगन को चूम सकता है। अतः विक्रय संवर्द्धन का कार्य करते समय थोक विक्रेता का फुटकर विक्रेता को भी ध्यान रखना चाहिए। विक्रय संवर्द्धन की ऐसी योजना बनाई जानी चाहिए, जिसका प्रमुख उद्देश्य अधिक विक्रय के के लिए थोक तथा फुटकर विक्रेता को प्रोत्साहित करे। इस प्रकार की विक्रय संवर्द्धन योजना में निम्नलिखित विधियों को शामिल किया जाता है—

1. विज्ञापन—थोक विक्रेता व फुटकर विक्रेता दोनों चाहते हैं कि उनका विक्रय बढ़े। इसके लिए वे वस्तु का विज्ञापन करना चाहते हैं परन्तु अधिक खर्चा होने के कारण वे ऐसा नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में कई बार उत्पादक अपने थोक व फुटकर व्यापारियों के नाम से समाचार-पत्रों या फिर बाह्य विज्ञापन (जैसे-पोस्टर, होल्डर, साइन बोर्ड) करवाते हैं। ऐसा करने पर एक ओर तो उत्पादक की वस्तु का विज्ञापन हो जाता है, दूसरी ओर थोक एवं फुटकर व्यापारियों का भी विज्ञापन होता है।

2. क्रियात्मक प्रदर्शन—कभी-कभी उत्पादक अपने विक्रयकर्त्ता को वस्तु का प्रदर्शन करने हेतु व्यापारियों की दुकानों पर भेज देते हैं। ये विक्रयकर्त्ता दुकानों पर जाकर वस्तु की प्रकृति व उसका प्रयोग ग्राहकों को बताते हैं। इससे विक्रयकर्त्ता के विशिष्ट ज्ञान का लाभ उपभोक्ता को मिल जाता है।

3. विक्रय प्रतियोगिताएँ—ऐसी प्रतियोगिताएँ थोक व्यापारियों, फुटकर व्यापारियाँ तथा विक्रयकर्त्ता के मध्य सर्वाधिक विक्रय के लिए रखी जाती है। सबसे अधिक विक्रय करने वाले व्यक्ति को ईनाम दिया जाता है। ये प्रतियोगिताएँ सभी के लिए अलग-अलग रखी जाती हैं।

4. व्यापारिक प्रीमियम—कभी-कभी उत्पादकों द्वारा व्यापारियों को प्रीमियम भी दिया जाता है। यह प्रीमियम थोक व्यापारी फुटकर व्यापारी तथा विक्रयकर्त्ता को दिया जाता है। ऐसी प्रीमियम प्रायः वस्तुओं के रूप में होता है, जैसे-दीवार घड़ी, हाथ घड़ी, बैग, पैन, बैट्री आदि। कभी-कभी यह प्रीमियम वस्तु विशेष की निर्धारित मात्रा को एक साथ खरीदने पर भी दिया जाता है, जैसे—आसाम टी कम्पनी ने व्यापारी संवर्द्धन के लिए एक योजना बनाई। इस योजना के अनुसार 2 बैग एक साथ खरीदने पर चांदी का सिक्का, 5 बैग एक साथ खरीदने पर 3 सिक्के दिये जायेंगे। इस प्रकार यह व्यापारी संवर्द्धन एक अच्छी विधि है।

5. वित्तीय सहायता—कभी व्यापारी अपने मध्यस्थों को साख प्रदान करके भी सहायता देते हैं अर्थात् उन्हें कम अवधि के लिए माल भी उधार दे दिया जाता है।

6. मूल्यों में अल्पकालीन छूट—कभी-कभी उत्पादक द्वारा किसी विशेष अवसर, जैसे—राखी, होली, दीपावली, नववर्ष, पन्द्रह अगस्त, दुर्गा पूजा आदि पर मूल्यों में अपने व्यापारियों को एक विशेष छूट देते ही देते हैं।

7. अन्य उपाय—एक उत्पादक द्वारा विक्रय संवर्द्धन के लिए निम्न उपायों को भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अपनाया जाता है—

(1) विक्रय उपरान्त सेवाएँ प्रदान करके,

(2) विक्रयस्थलों पर फैशन-शो करवाकर,

(3) प्रबंध में सहायता,

(4) स्टोर व वातायन सजावट के लिए अनेक प्रकार की सामग्री, जैसे—पोस्टर, होर्डिंग्स, बोर्ड, फ्रीज, कलैण्डर आदि सामान देकर विक्रय संवर्द्धन को अपनाते हैं।

III. उपभोक्ता-व्यापारी संयुक्त संवर्द्धन विधियाँ (Consumer Trader Combined Promotion Methods)

ऐसे में जब कोई उत्पादक एक तरफ अपने उपभोक्ता ग्राहकों तथा दूसरी तरफ व्यापारियों को ध्यान में रखकर विक्रय संवर्द्धन की विधि अपनाता है। उत्पादक को अधिक माल बेचने के लिए एक पक्ष पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। उत्पादक को एक ओर अपने व्यापारी को अधिक माल बेचने के लिए प्रेरित करना चाहिए तो दूसरी ओर उपभोक्ता को भी अधिक माल खरीदने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अतः उत्पादक को चाहिए कि इसके लिए ऐसी विक्रय संवर्द्धन योजना बनाई जाये जो दोनों पक्षों को प्रोत्साहित करे। इसे एक उदाहरण द्वारा समझाया जा रहा है—जयपुर की एक चिप्स बनाने वाली कम्पनी ने एक साथ तीन प्रकार की योजना रखी। प्रथम योजना उपभोक्ता के लिए थी जो चिप्स के पैकेट खरीदते थे। प्रत्येक चिप्स के पैकेट के साथ एक कूपन निकलता था। 10 कूपन लाने पर एक चिप्स का पैकेट उपभोक्ता को फ्री दिया जायेगा। दूसरी योजना फुटकर व्यापारी के लिए थी। जो व्यक्ति चिप्स के 10 कार्टून एक साथ खरीदेगा, उसे एक कार्टून फ्री दिया जायेगा। तीसरी योजना थोक व्यापारी के लिए थी। जो थोक व्यापारियों में सर्वाधिक बिक्री करेगा, उसे विदेश में परिवार के साथ तीन दिन की यात्रा फ्री करवाई जायेगी। इस प्रकार एक साथ ही तीनों को अर्थात् थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी तथा उपभोक्ता तीनों को प्रोत्साहित किया गया। निश्चित रूप से ऐसी कम्पनी को सफलता हासिल हुई।

विज्ञापन (Advertising)

विज्ञान शब्द का अंग्रेजी भाषा में Advertising कहते हैं। इस अंग्रेजी भाषा शब्द Advertising की उत्पत्ति लेटिन के Advertere शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'मोडने' (to turn is) से होता है। आज व्यावसायिक जगत् में Advertising का अर्थ ग्राहकों को विशेष वस्तुओं एवं सेवाओं के बारे में जानकारी देकर उन वस्तुओं एवं सेवाओं की ओर मोड़ने से है। इस प्रकार यह एक ऐसी संचार प्रक्रिया है, जिसके द्वारा नये ग्राहकों को जोड़ा जा सकता है और पुराने ग्राहकों को स्थायी बनाया जा सकता है।

परिभाषाएँ (Definitions)

एस.आर. हॉल (S.R. Hall) के अनुसार—''विज्ञापन लिखित, मुद्रित या चित्रित विक्रय-कला है अथवा लिखित एवं मुद्रित शब्दों या चित्रों के माध्यम से सूचना प्रसारण है।

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार—एक निश्चित विज्ञान द्वारा अवैयक्तिक रूप

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

से विचारों, वस्तुओं या सेवाओं को प्रस्तुत करने तथा संवर्द्धन करने का एक प्रारूप है, जिसके लिए विज्ञापक द्वारा भुगतान किया जाता है।''

व्हीलर के अनुसार—विज्ञापन लोगों को क्रय करने के उद्देश्य से विचारों, वस्तुओं, सेवाओं का अवैयक्तिक प्रस्तुतीकरण है, जिसके लिए भुगतान किया जाता है।

फ्रेंक प्रेसब्री के अनुसार—मुद्रित, लिखित, मौद्रिक अथवा रेखाचित्रित विक्रयकला विज्ञापन है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विज्ञापन से आशय ऐसे दृश्य, लिखित या मौखिक अवैयक्तिक संदेशों से है जो जनता को क्रय करने के लिए प्रेरित करने हेतु पत्र-पत्रिकाओं, रेड़ियो, टेलीविजन, ट्रक, बस, रेलगाड़ी व अन्य साधनों द्वारा सामान्य जनता तक पहुंचाये जाते हैं, जिसके लिए विज्ञापनकर्त्ता को भुगतान करना पडत्रता है।

विज्ञापन की विशेषताएँ (Characteristics of Advertising)

1. विज्ञापन जनता के सामने सार्वजनिक रूप से सन्देश प्रस्तुत करने का साधन है।
2. विज्ञापन एक व्यापक सन्देश पहुंचाने का व्यापक माध्यम है, जिसके द्वारा सन्देश को बार-बार दोहराया जाता है।
3. विज्ञापन द्वारा एक ही सन्देश को विभिन्न प्रकार के रंगों, चित्रों, शब्दों, वाक्यों तथा लाइट से सुसज्जित कर सन्दीश जनता तक पहुंचाये जाते हैं, जो ग्राहक को स्पष्ट एवं विस्तृत जानकारी देता है।
4. विज्ञापन सदैव अव्यक्तिगत होता है। कभी कोई व्यक्ति आमने-सामने विज्ञापन नहीं करता।
5. विज्ञापन मौखिक, लिखित, दृश्य तथा अदृश्य हो सकता है।
6. विज्ञान के लिए विज्ञानकर्त्ता द्वारा भुगतान किया जाता है।
7. विज्ञान के विविध माध्यम से जिसमें विज्ञापनकर्त्ता अपनी सुविधानुसार उपयोग कर सकता है।
8. विज्ञापन का उद्देश्य नये ग्राहकों को जोड़ना तथा विद्यमान ग्राहकों को बनाये रखना होता है।
9. जबकि गैर-व्यावसायिक विज्ञापनों का उद्देश्य सामान्यत: सूचना देना होता है।

आधुनिक युग में विज्ञापन एक व्यावसायिक क्रिया है, जिसे प्रत्येक व्यवसाय को किसी-न-किसी रूप में नित्य करना पड़ता है ताकि व्यवसाय को बढ़ाया जा सके।

विज्ञापन के माध्यम (Advertising Media)

आधुनिक वैज्ञानिक युग में विज्ञापन के माध्यम भी समयानुसार बदल गये हैं। आज विज्ञापन के माध्यम आधुनिक व वैज्ञानिक हो रहे हैं। अब विज्ञापन के नये-नये माध्यमों का विकास हो रहा है।

विज्ञापन के माध्यम का अर्थ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विज्ञापन के माध्यम से आशय उन साधनों से है, जिनके माध्यम से विज्ञापनकर्त्ता अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं या विचारों के बारे में एक विशाल जन-समुदाय को संदेश पहुंचाते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि विज्ञापन माध्यम एक ऐसा साधन है, जिसमें निर्माता अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं के बारे में उपभोक्ता को जानकारी उपलब्ध करवाता है।

नाइस्ट्रॉम के अनुसार—''विज्ञापन का माध्यम वह साधन या वाहन है, जिसके द्वारा विज्ञापन का संदेश किसी व्यक्ति या समुदाय को प्रभावित करने की आशा से पहुंचाया जाता है।''

विज्ञापन के माध्यमों के प्रकार (Types of Advertising Media)

विज्ञापन के माध्यम के निम्न प्रकार हैं—

I. प्रेस विज्ञापन (Press Advertising)

विज्ञान का यह माध्यम सर्वाधिक पुराना व प्रचलित है। प्रेस विज्ञापन का अर्थ ऐसे विज्ञापन से है, जिन्हें विज्ञानकर्त्ता अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं के बारे में समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाता है।

इन्हें हम मोटे रूप से निम्नलिखित रूपों में बांट सकते हैं—

(1) समाचार पत्र,

(2) पत्रिकाएँ।

(1) समाचार पत्रीय विज्ञापन (Newspaper Advertising)

आज समाचार-पत्र गांवों तथा शहरों, सभी स्थानों पर लोगों द्वारा समाचार-पत्रों को पढ़ा जाता है। समाचार-पत्र विज्ञापन का एक अच्छा साधन है। समाचार-पत्र सभी प्रकार के व्यवसायियों के लिए उपर्युक्त है। समाचार-पत्र में वस्तुओं एवं सेवाओं की विस्तृत जानकारी विज्ञापन द्वारा दी जाती है।

समाचार पत्रा दैनिक, साप्ताहिक अथवा पाक्षिक होते हैं। हमारे देश में दैनिक समाचार-पत्रों में हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इण्डिया आदि राष्ट्रीय स्तर के समाचार-पत्र हैं। प्रादेशिक स्तर के समाचार-पत्रों में दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका, दैनिक नवज्योति आदि मुख्य समाचार पत्र हैं। समाचारपत्रीय विज्ञापन दो प्रकार के होते हैं—

(अ) वर्गीकृत विज्ञापन (Classified Advertising)—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है ऐसे विज्ञापन जो विभिन्न वर्गों, जैसे—नियुक्तियाँ, निविदाएँ, बिकाऊ, निलामी, विवाह आदि में बंटे होते हैं। ये विज्ञापन साधरण, स्पष्ट तथा सीमित शब्दों में होते हैं। इस तरह के विज्ञापन का सबसे बड़ा फायदा यह है कि खर्च कम आता है और इसका नुकसान यह है कि ऐसे विज्ञापन पढ़ने से चुक जाते हैं।

(ब) सुज्जा विज्ञापन (Display Advertizing)—इन्हें हम अवर्गीकृत विज्ञापन भी कहते हैं। ये विज्ञापन विभिन्न रंगों, तस्वीरों, चित्रों से सुसज्जित होते हैं। विज्ञापन का खर्चा स्थान घेरने के अनुसार लिया जाता है। इस प्रकार के विज्ञापन प्रथम पृष्ठ से अंतिम पृष्ठ तक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पाये जाते हैं।

समाचार-पत्रीय विज्ञापन के लाभ

1. समाचार-पत्र की लागत कम होने के कारण एक सामान्य व्यक्ति आसानी से क्रय कर सकता है।
2. लागत कम आने से लगातार प्रचार-प्रसार संभव है, जिससे विज्ञापन का असर पाठकों पर लम्बे समय तक रहता है।
3. विज्ञापन का तत्काल प्रदर्शन संभव है। कई दैनिक समाचार-पत्र सुबह व शाम संस्करणों में प्रकाशित होते हैं।
4. समाचार-पत्र राष्ट्रीय, प्रादेशिक एवं स्थानीय स्तर के होते हैं, इसलिए क्षेत्र में विज्ञापन करना होता है। उसी क्षेत्र के समाचार-पत्र में विज्ञापन दे दिया जाता है।
5. समाचार-पत्रों में दिये जाने वाले विज्ञापनों में छोटे-बड़े, उदाहरणयुक्त, चित्रात्मक ढंग तथा विभिन्न रंगों और शब्दों के साथ दिये जा सकते हैं।
6. समाचार-पत्रों में सरकारी विज्ञापन दिये जा सकते हैं।
7. समाचार-पत्रीय विज्ञापन सम्पूर्ण परिवार को प्रभावित कर सकते हैं, क्योंकि समाचार-पत्रों को पूरा परिवार पढ़ता है।
8. विश्वसनीय समाचार-पत्रों में विज्ञापन देने से जनता में सरलता से विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है।
9. समाचार-पत्र छोटे व्यापारियों के लिए विज्ञापन का उपर्युक्त साधन होता है।
10. समाचार-पत्र के माध्यम से ग्राहकों को जानकारी हो जाती है कि कौन-कौन-सी वस्तु उपलब्ध होती है।
11. समाचार-पत्रों में से विज्ञापनों को काटकर अपने पास रख लेते हैं, उस कटिंग से वस्तु खरीदते समय ग्राहक को मदद करती है।
12. समाचार-पत्रों के समाचार में वस्तुओं व सेवाओं के गुण व दोषों का भी वर्णन किया जा सकता है।

समाचार-पत्रीय विज्ञापन के दोष

समाचार-पत्रों में विज्ञापन देने के जहाँ फायदे हैं, वहाँ दूसरे कुछ दोष भी हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. इनमें दिये विज्ञापनों का जीवनकाल बहुत ही छोटा है अर्थात् 'सुबह से शाम तक' का जीवन-काल होता है।
2. कई बार पाठक इनमें दिये गये विज्ञापनों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिससे विज्ञापन का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता।
3. समाचार-पत्रों में दिये गये विज्ञापन ज्यादा आकर्षित नहीं होते, क्योंकि एक तो समाचार-पत्रों का कागज घटिया होता है, दूसरा विज्ञापन में सज्जा बहुत कम होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. इसमें स्थान व शब्दों का सीमित उपयोग करना पड़ता है अन्यथा इसकी लागत बढ़ जाती है।
5. ज्यादातर समाचार-पत्र प्रादेशिक होते हैं, जिससे इनका क्षेत्र सीमित हो जाता है।
6. अशिक्षितों के लिए उपर्युक्त नहीं होते हैं।
7. इनका जीवनकाल अल्प होता है अतः विज्ञापन बार-बार देना पड़ता है, जिससे खर्च बढ़ जाता है।

(2) पत्रिकाएँ (Magazines)

पत्रिकाएँ एक निश्चित समयान्तर (जैसे साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक या वार्षिक) से प्रकाशित होती हैं। इन पत्रिकाओं में कहानियाँ, कविताएँ, लेख, ब्यूटी टिप्स, खाना-खजाना आदि-आदि होते हैं। अर्थात् रुचि व सामग्री के अनुसार ये पत्रिकाएँ साहित्यिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा वाणिज्यिक होती हैं। इन्हें अपनी रुचि अनुसार सभी वर्ग के बच्चे, युवा एवं वृद्ध अपने मनोरंजन के लिए पढ़ते हैं। इन पत्रिकाओं में जो विज्ञापन दिये जाते हैं, उन्हें पत्रिका विज्ञापन कहते हैं।

पत्रिका विज्ञापन के लाभ

1. इनमें दिये विज्ञापन की आयु समाचार-पत्र की अपेक्षा लम्बी होती है। एक ही पत्रिका को कई बार पढ़ा जाता है। एक सर्वेक्षण से पता चला कि 'Reader Digest' को एक ही व्यक्ति द्वारा तेरह बार उठाया एवं पढ़ा जाता है।
2. पत्रिकाएँ प्रायः ध्यानपूर्वक पढ़ी जाती हैं।
3. विज्ञापनों को खूबसूरत ढंग से दिया जा सकता है।
4. पत्रिकाएँ कई प्रकार की होती हैं—धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, औद्योगिक। अतः संबंधित विज्ञापन को संबंधित पत्रिका में दिया जा सकता है।
5. पत्रिकाओं का आदान-प्रदान कई घरों में होता है अतः पत्रिकाएँ कई हाथों से गुजरती हैं। इससे विज्ञापन को कई लोगों द्वारा देखा जा सकता है।
6. कई पत्रिकाएँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की होती हैं अतः ऐसी पत्रिकाओं में विज्ञापन देने से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति बनती है।

दोष—

1. पत्रिका का क्षेत्र विस्तृत होता है। यदि वस्तु के प्रयोग का क्षेत्र विस्तृत न हो तो पत्रिका में विज्ञापन देना महंगा पड़ता है।

2. पत्रिकाएँ प्रायः उच्च वर्ग के लोगों के द्वारा ही क्रय की जाती है। निम्न आय वर्ग के लोगों द्वारा प्रायः ऐसी पत्रिकाएँ नहीं खरीदी जाती हैं।

3. इसमें लोच का अभाव होता है। एक बार विज्ञापन देने के बाद अन्तिम क्षण तक परिवर्तन करना कठिन है।

6. प्रत्येक पत्रिका समान आकार की नहीं होती अतः अलग-अलग पत्रिकाओं के लिए अलग-अलग आकार के विज्ञापन देने पड़ते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

II. बाह्य विज्ञापन (Outdoor Advertizing)

बाह्य विज्ञापन का अर्थ दीवारों, गलियों के कोनों, सड़कों के किनारों, चलती-फिरती गाड़ियों, खम्भों, चार-दिवारियों, रेलवे-स्टेशनों, बस-स्टैण्डों आदि पर विज्ञापन करने से है। ऐसे विज्ञापनों का उद्देश्य राह चलते लोगों का ध्यान आकर्षित करने से है। ऐसे विज्ञापन अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी होते हैं। राह चलते सैकड़ों लोगों का ध्यान आकर्षित होता है।

बाह्य विज्ञापन के साधन

बाह्य विज्ञापन के प्रमुख साधन निम्नलिखित हैं—

1. पोस्टर्स—पोस्टर्स से आशय उन लिखित तथा चित्रित विज्ञापनों से होता है, जिन्हें गलियों के कोने, सड़क के किनारे, कार्यालयों या दुकानों, बस स्टैण्ड, रेलवे स्टेशन पर चिपकाये जाते हैं। जिन्हें आते-जाते लोग आसानी से देख व पढ़ सकते हैं। इन्हें कागज, लकड़ी की तख्तियों, लोहे की चादरों व धातु की प्लेटों पर बनाये जाते हैं। इनमें विभिन्न रंगों व चित्रों का प्रयोग किया जाता है। ये चित्रकार द्वारा बनाये जाते हैं।

2. दीवार-लेखन—यह बाह्य विज्ञापन का प्राचीन साधन है। इसमें विज्ञापनकर्त्ता अपने सन्देश को दीवार पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख देता है। ये विभिन्न रंगों एवं चित्रों द्वारा सुसज्जित होते हैं। गांवों, कस्बों में इस प्रकार के विज्ञापन प्रायः देखने को मिलते हैं। ऐसे विज्ञापन राह चलते व्यक्ति द्वारा देखे जा सकते हैं। इनमें प्रायः चायपत्ती, औषधियों, साबुन, गुटखा, पान-मसाला आदि के देखे जाते हैं।

3. विद्युत साइ बोर्ड—आजकल शहरों में विद्युत साइन बोर्ड का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। विद्युत साइन बोर्ड में सन्देश शब्दों व चित्रों को विद्युत बल्बों या आधुनिक प्रकार की गैस से बनी एक ट्यूब द्वारा प्रकाशमान किया जाता है, जिसकी रोशनी बहुत ही आकर्षण होती है। ये रात के अंधेरे में भी व्यक्ति को संदेश देते हैं। हालांकि ये विज्ञापन काफी महंगे होते हैं। छोटी व्यावसायिक संस्थाओं के लिए उपर्युक्त नहीं होते हैं। इस प्रकार विज्ञापन में सन्देश संक्षिप्त होना चाहिए।

4. सैण्डविचमैन विज्ञापन—इस प्रकार के विज्ञापन में व्यक्ति विशेष से विशेष प्रकार से सजाया जाता है। उसके शरीर के चारों ओर विज्ञापन का सन्देश पोस्टर्स या अन्य माध्यम से चिपका दिया जाता है। आकर्षक रूप सजाकर गाँव व शहर में घुमाया जाता है ताकि लोगों का ध्यान उस पर जाये। लोग उसे देखें, इससे वस्तुओं का विज्ञापन स्वतः ही हो जाता है।

5. यातायात विज्ञापन—ये वे विज्ञापन हैं, जो यातायात वाहनों के भीतरी तथा बाहरी भागों में किये जाते हैं। ये प्रायः कार, रेल, बस आदि के भीतरी भागों, शीषों व दीवारों पर किये जाते हैं तो इन्हें कारकार्डस (Car Cards) कहते हैं और विज्ञापन बाहरी सतह पर किये जाते हैं, इन्हें यातायात प्रदर्शन (Travelling Display) कहा जाता है। यातायात वाहन में सैकड़ों व्यक्ति यात्रा करते हैं तथा इन्हें सड़क पर आते-जाते देखते हैं, इससे इनमें लिखा सन्देश आते-जाते व्यक्तियों द्वारा पढ़ा जाता है। ऐसे विज्ञापन का सन्देश संक्षिप्त तथा आकर्षक होना चाहिए। साथ ही मोटे अक्षरों, चित्रों व रंगों का प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि व्यक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आसानी से पढ़ सके।

यातायात विज्ञापनों के लाभ

1. विज्ञापन का यह माध्यम स्थाई आकर्षण होता है। एक बार पोस्टर्स, विद्युत साइन बोर्ड आदि लगाने के बाद लम्बे समय तक जनता का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं।
2. इनमें विभिन्न रंगों, चित्रों आदि का प्रयोग भी किया जा सकता है, जिससे आकर्षित बनाया जा सकता है।
3. यह माध्यम लोचदार होता है। जब चाहो जहाँ चाहो विज्ञापन के लिए होलडिंग पोस्टर्स लगा सकते हैं।
4. ये विज्ञापन लोगों द्वारा बार-बार पढ़े जा सकते हैं।
5. यह माध्यम सरल है।
6. इस तरह के विज्ञापन द्वारा उन लोगों तक भी संदेश पहुंचाया जाता है, जो पत्र-पत्रिकाएँ नहीं पढ़ते।

दोष—

1. इस प्रकार के विज्ञापन में परिवर्तन करना आसान नहीं होता।
2. विज्ञापन में इस माध्यम द्वारा शहर की सुन्दरता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी अश्लील पोस्टर्स द्वारा देश की संस्कृति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
3. यह प्राय: खर्चीला होता है।
4. राष्ट्रीय स्तर पर इस तरह का विज्ञापन करना महंगा होता है।
5. लोग इन्हें पढ़ने में लग जाते हैं। इसके कारण सड़क दुर्घटनाओं की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।
6. इन विज्ञापनों का प्रभाव मापना कठिन होता है।

III. डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन (Direct Mail Advertising)

डाक द्वारा विज्ञापन में विज्ञापक अपने संभावित ग्राहकों को मुद्रित, लिखित या चित्रित सामग्री भेजता है ताकि उसे मात्र क्रय करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। विज्ञापन में प्राय: गश्ती-पत्र, मूल्य-सूची, सामान्य जानकारी संबंधी पत्र तथा आदेश फॉर्म शामिल होते हैं। ऐसे में सर्वप्रथम अपने संभावित ग्राहकों की टेलीफोन डायरेक्ट्री, ट्रेड डायरेक्ट्री तथा अन्य विभागों की सहायता से एक डाक-सूची तैयार करते हैं, जिसमें ग्राहकों के नाम लिखे होते हैं। उन्हें डाक द्वारा गश्ती-पत्र, मूल्य-सूची, केटलॉग आदि भेजे जाते हैं।

डाक द्वारा विज्ञापन के साधन

1. विक्रय-पत्र—ये अपने कुछ निश्चित संभावित ग्राहकों को लिखे जाते हैं। जिन ग्राहकों को विक्रय-पत्र भेजना होता है, उनके नाम डाक सूची में से छांट लिये जाते हैं। विक्रय-पत्र प्रत्येक संस्था तथा व्यक्ति को अलग-अलग दिये जाते हैं। इनकी भाषा भी अलग-अलग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होती है। परन्तु ये बहुत ही प्रभावशाली भाषा में लिखे होते हैं, जिससे ग्राहक संस्था की वस्तुओं के प्रति आकर्षित हो जावें।

2. गश्ती-पत्र—ये भी अपने संभावित ग्राहकों को विक्रय-पत्र की तरह ही लिखे जाते हैं। गश्ती-पत्रों की विषय-सामग्री व भाषा एक-सी होती है। इन्हें कई ग्राहकों को एक साथ भेजा जाता है। गश्ती-पत्र में आन्तरिक पते के अतिरिक्त सब कुछ छपा रहता है। गश्ती-पत्र तथा विक्रय में अन्तर इतना होता है कि गश्ती-पत्र की विषय-वस्तु एक-सी रहती है जबकि विक्रय-पत्र की विषय-वस्तु अलग-अलग होती है। गश्ती-पत्र भेजते समय गश्ती-पत्र के साथ क्रय-आदेश-फॉर्म तथा जवाबी कार्ड भी भेज देने चाहिए।

3. केटलॉग—सूची-पत्र (केटलॉग) में वस्तु का मूल्य तथा विशेषताओं के बारे में लिखा होता है, साथ ही क्रय संबंधी कुछ सामान्य नियम भी दिये होते हैं। इन्हें भी संभावित ग्राहकों को डाक द्वारा भेजा जाता है।

4. मूल्य सूची—इसमें केवल वस्तुओं के मूल्य दिये होते हैं। केटलॉग की भांति वस्तुओं का विस्तृत विवरण नहीं होता।

5. पुस्तिकाएँ—यह भी विज्ञापन का एक माध्यम है। पुस्तिकाएँ (Booklets) वस्तु के संबंध में विस्तृत जानकारी देती है। इन पुस्तिकाओं को पढ़कर क्रय की जाने वाली वस्तु के संबंध में सब कुछ जान सकते हैं।

6. पत्रक तथा फोल्डर—पत्रक में वस्तु के संबंध में संक्षिप्त विवरण तथा प्रयोग की विधि होती है। जब इन पत्रों को मोड़ दिया जाता हे तो ये फोल्डर कहलाते हैं।

लाभ

1. डाक द्वारा विज्ञापन में वस्तुओं के संबंध में विस्तृत जानकारी दी जा सकती है।
2. इस माध्यम द्वारा सही समय पर सही ग्राहक को संदेश भेजा जा सकता है।
3. सूची-पत्र, पुस्तिकाएँ, पत्रिकाओं आदि से ग्राहकों को विस्तृत जानकारी व शिक्षा प्रदान की जाती है।
4. इससे व्यक्तिगत रूप से जुड़ जाता है।
5. यह माध्यम लोचशील है। विज्ञापनकर्त्ता जब चाहे आसानी से बदल सकता है।
6. सभी प्रकार की संस्थाओं के लिए उपयुक्त होता है।
7. विभिन्न रंगों, चित्रों का प्रयोग कर प्रभावशाली साहित्य बनाकर भेजा जा सकता है।
8. इस माध्यम द्वारा विज्ञापन करने पर गोपनीयता बनी रहती है।
9. यह कम खर्चीली विधि है।
10. इस माध्यम से विज्ञापन करने पर इसके परिणामों का मापना सरल हो जाता है। अर्थात् किन-किन व्यक्तियों को विज्ञापन का प्रभाव हुआ, किन को नहीं।

दोष—

1. कभी-कभी बिना पढ़े ही सामग्री को फाइल कर दिया जाता है या रद्दी की टोकरी में डाल देते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. ऐसे विज्ञापन का जीवन अल्प होता है।

3. डाक सूची बनाने में कठिनाई आती है।

4. सीमित लोगों के सम्पर्क में आ पाते हैं।

5. छल-कपट की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

IV. क्रय-केन्द्र विज्ञापन (Purchase Point Advertising)

विज्ञापन का यह माध्यम प्राय: फुटकर व्यापारियों द्वारा अपनाया जाता है। फुटकर व्यापारी अपनी दुकान को अपनी दुकान को चारों ओर से वस्तुओं से सजा देते हैं। ऐसे क्रय-केन्द्र विज्ञापन के दो प्रमुख साधन हैं—

1. काउण्टर सजावट—फुटकर व्यापारी दैनिक उपभोग की वस्तुओं को काउण्टर पर इस प्रकार सजाकर रखते हैं कि ग्राहक को वस्तु देखते ही अपनी आवश्यकता का स्मरण हो जाता है और वे अधिक क्रय करने के लिए अग्रसर होते हैं, जिससे ग्राहक अधिक वस्तुएँ क्रय करता है। इससे दुकान पर आये ग्राहक प्रभावित होते हैं और बिक्री बढ़ती है।

2. वातायन सजावट—वातायन सजावट भी एक प्रकार का विज्ञापन है, जो राह चलते व्यक्ति को दुकान में प्रवेश करने के लिए मजबूर कर देती है। ये सभी वस्तुएँ यह बताती हैं कि ये बिक्री के लिए उपलब्ध हैं। वातायन सजावट के लिए लगी वस्तुओं को समय-समय पर साफ करते रहना चाहिए, साथ ही बदलते रहना चाहिए। सजावट में रखी वस्तुओं को मौसम के अनुसार तथा प्रकाशयुक्त रखा जाना चाहिए।

V. मनोरंजन-विज्ञापन (Entertainment Advertising)

इसमें हम निम्न विज्ञापन माध्यमों को शामिल करते हैं—

1. रेडियो—विज्ञापन का यह साधन काफी पुराना, प्रतिष्ठित व लोकप्रिय है। अधिकांश घरों में रेडियो पाये जाते हैं। रेडियो देश-विदेश के समाचार, संगीत एवं अन्य कार्यक्रम जनता के सम्मुख दिन-रात प्रस्तुत करते रहते हैं। रेडियो द्वारा संगीत, नाटक, समाचार, चुटकुले आदि के कार्यक्रमों के पहले, बाद में तथा बीच में विज्ञापन प्रसारित किये जाते हैं। अब देश के विविध भारती के लगभग 60 केन्द्रों से विज्ञापन प्रसारित किये जाते हैं। इस माध्यम द्वारा दिये जाने वाला सन्देश काफी रोचक, संगीत कथाओं के रूप में होना चाहिए। यह ग्रामीण व शहरी दोनों के लिए उपयुक्त है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जहाँ श्रोता पहुंच सकता है, वहाँ रेडियो द्वारा सन्देश पहुंचाया जा सकता है।

2. टेलीविजन—आधुनिक समय में टी.वी. विश्व में विज्ञापन का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है। हमारे देश में टी.वी. विज्ञापन का श्रीगणेश 1976 में हुआ। टी.वी. एक ऐसा यंत्र है, जो शब्दों व चित्रों को एक साथ दर्शकों के सामने प्रस्तुत करता है। इसके द्वारा विज्ञापन सन्देशों को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। टी.वी. में विज्ञापन देना हालांकि खर्चीला है परन्तु प्रभावी माध्यम है। सुनी व देखी बातें काफी समय तक याद रहती है।

3. सिनेमा—सिनेमा मनोरंजन का सर्वाधिक सस्ता एवं लोकप्रिय साधन है। सिनेमा में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विज्ञापन के लिए स्लाइडों का प्रयोग किया जाता है। ये स्लाइडें फिल्म प्रारम्भ होने से पहले या मध्यान्तर या फिर अन्त में दिखाई जाती हैं। इन विज्ञापनों को अनेक व्यक्ति एक साथ देखते हैं और प्रभावित होते हैं। इस माध्यम का प्रयोग करके विज्ञापन को स्मरणकारी बनाया जा सकता है।

4. नाटक एवं संगीत कार्यक्रम—ग्रामीण जनता को प्रभावित करने के लिए नाटक व संगीत कार्यक्रम के द्वारा भी विज्ञापन दिया जाता है। धार्मिक नाटक, लोकगीतों को गाकर नाटक मण्डलियों द्वारा नाटक दिखाकर विज्ञापन किये जाने लगे हैं। विज्ञापन का यह रूप अभी अधिक प्रचलन में नहीं है।

5. मेले एवं प्रदर्शनियाँ—मेले एवं प्रदर्शनियाँ हमारी संस्कृति का अंग बन गई हैं। हमारे देश में प्रयाग, पुष्कर, रामदेव अनेक मेले लगते रहते हैं। प्रदर्शनियां भी आयोजित होती हैं। अनेक बार सरकार व व्यापारियों द्वारा भी मेले का आयोजन होता है। इन मेले एवं प्रदर्शनियों को देखने के लिए दूर-दूर से व्यक्ति आते हैं और इनमें वस्तुओं का विज्ञापन आसानी से हो जाता है।

लाभ—

1. मनोरंजन विज्ञापन में एक साथ सैकड़ों व्यक्तियों को वस्तुओं की जानकारी दी जा सकती है।
2. रेडियो एवं टेलीविजन विज्ञापनों के संदेश को तत्काल बदला जा सकता है।
3. ऐसे विज्ञापनों में भाषा की मधुरता के साथ प्रयोग कर जनता का ध्यान आकर्षित किया जाता है।
4. टी.वी., सिनेमा द्वारा विज्ञापन को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति अधिक प्रभावी होते हैं।
5. उपभोक्ता वस्तुओं के लिए ऐसे माध्यम उपयोगी होते हैं।
6. मनोरंजन साधनों द्वारा विज्ञापन करने पर संस्था की ख्याति स्वत: ही बढ़ जाती है।

दोष—

1. ये औद्योगिक वस्तुओं के विज्ञापन का उचित माध्यम नहीं हैं।
2. विज्ञापन का यह माध्यम अधिक खर्चीला है। छोटी संस्थाओं के लिए उपयुक्त नहीं है।
3. रेडियो विज्ञापन को प्राय: लोग ध्यान से नहीं सुनते।
4. रेडियो विज्ञापन में वस्तु की बैंकिंग तथा ट्रेडमार्क को नहीं दिखाया जाता।

VI. अन्य माध्यम (Other Media)

1. लाउडस्पीकर (Loud-Speaker) विज्ञापन—ऐसे विज्ञापन में व्यक्ति रिक्शा, तांगे या कार में बैठकर लाउडस्पीकर यंत्र द्वारा मौखिक रूप से व्यक्ति वस्तुओं के बारे में विज्ञापन करता है। यह माध्यम अधिकतर शहरों में प्रयोग किया जाता है। यह एक सस्ता, सरल एवं लोकप्रिय माध्यम है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. विशिष्ट या अभिनव विज्ञापन—विशिष्ट विज्ञापन में संभावित ग्राहकों को भेंट स्वरूप कोई उपयोगी वस्तु दी जाती है, जिस पर विज्ञापन संदेश लिखा रहता है। इसमें मुख्यतया निम्नलिखित वस्तुएँ होती हैं, जैसे–चाबी छल्ला, पेपरवेट, डायरी, कलैण्डर्स, सिगरेट-केस, पैन, ऐश-ट्रे तथा ताश आदि शामिल होती हैं।

3. प्रोग्राम विज्ञापन—वे विज्ञापन जो विभिन्न अवसरों पर दिये जाते हैं, प्रोग्राम विज्ञापन कहलाते हैं, जैसे—पन्द्रह अगस्त, छब्बीस जनवरी, होली, दीपावली आदि पर दिये जाते हैं। इन विज्ञापनों का प्रचलन आजकल बढ़ रहा है।

4. आकाश-लेखन विज्ञापन—विज्ञापन का यह साधन नया है। इसमें आकाश के तले वस्तुओं के नाम धुएँ से हवाई जहाज की सहायता से लिखा जाता है। या फिर रंग-बिरंगे गुब्बारों को शब्दों एवं चित्रों द्वारा भरकर आकाश में उड़ाया जाता है। व्यक्ति इन्हें देखता है, स्वतः ही उस तक सन्देश पहुंच जाता है। यह खर्चीला होता है, इसलिए इसका प्रयोग कम होता है।

प्रभावी विज्ञापन की विशेषताएँ/आवश्यक तत्त्व

विज्ञापन के माध्यम का चुनाव करते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। विज्ञापन की अपील जितनी प्रभावी होगी, विज्ञापन अपने उद्देश्य को पूरा करने में उतना ही कामयाब होगा। विज्ञापन को लोग देखते हैं, पढ़ते हैं या नहीं पढ़ते, सुनते हैं या नहीं सुनते, यह सब विज्ञापन की प्रति अर्थात् ढाँचे, या प्रस्तुतीकरण पर निर्भर करता है अतः विज्ञापन देते समय कुछ विशेष बातों/तत्त्वों का ध्यान रखना चाहिए—

1. ध्यानाकर्षण—यदि विज्ञापन के प्रति आकर्षित नहीं है तो विज्ञापन देना लाभप्रद नहीं होगा। अतः विज्ञापन के प्रति आकर्षित होनी चाहिए। विज्ञापन की प्रति को आकर्षित बनाने के लिए विभिन्न रंगों, विभिन्न चित्रों, जैसे-प्राकृतिक दृश्यों, सुन्दर युवतियों के चित्रों का प्रयोग किया जाना चाहिए। महत्त्वपूर्ण तथ्यों को रेखांकित किया जाना चाहिए। विज्ञापन के चारों ओर खूबसूरत चारदीवारी बनाई जा सकती है। टाईप आकर्षित तरीके से की जानी चाहिए। टी.वी., रेडियो में विज्ञापन देते समय संगीत धुनों, कार्टूनों तथा चलचित्रों का उपयोग कर आकर्षित बनाये जा सकते हैं, जैसे—कोक के विज्ञापन में आमीरखान को दिखकर लोगों का ध्यान आकर्षित किया गया है।

2. विश्वास तत्त्व—लोगों को विज्ञापन की सत्यता पर विश्वास होना चाहिए। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है तब तक ग्राहक वस्तु नहीं खरीदता जब तक उसे विश्वास न हो जाए। अतः विज्ञापन देते समय झूठे व दिखावटी वादे नहीं करने चाहिए। अन्यथा विज्ञापन पर लगाया गया धन व्यर्थ चला जायेगा। विज्ञापन में वस्तुओं के विशिष्ट गुणों का वर्णन करके पाठकों को विश्वास दिलाया जाना चाहिए।

3. स्मरण तत्त्व—विज्ञापन प्रति में स्मरण तत्त्व भी होना चाहिए, जिससे लोग विज्ञापन को लम्बे समय के लिए याद रख सकें। विज्ञापन ऐसा होना चाहिए, जो आसानी से याद रह सके, जैसे—वस्तुओं के ट्रेडमार्क में भी स्मरण तत्त्व पाया जाता है, जैसे सफेदी के साथ सर्फ, स्वाद के साथ MDH मसाला इत्यादि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. भावनात्मक तत्त्व—विज्ञापन का निर्माण करते समय इस बात विशेष का ध्यान रहना चाहिए कि किसी जाति, वर्ग, धर्म के लोगों की भावनाओं को ठेस न पहुंचे। सभी धर्मों, वर्गों के प्रति समानता का व्यवहार प्रदर्शित करने वाला प्रतीत होना चाहिए। विज्ञापन प्रति में प्यार या स्नेह भावना को भीर महत्त्व देना चाहिए।

5. शिक्षा तत्त्व—विज्ञापन प्रति में शिक्षा तत्त्व भी होना चाहिए। विज्ञापन की प्रति में शिक्षा तत्त्व होने से वस्तु के विक्रय को बढ़ाया जा सकता है, जैसे—आजकल रसोईघर के यंत्रों, जैसे—ओवन के साथ बुकलेट में अनेक प्रकार के व्यंजनों को बनाने की बुकलेट साथ दी जाती है। इसी तरह कपड़े धोने के पाउडर के उपभोग की विधि पाउडर के पैकेट के ऊपर लिखी रहती है।

6. पुनरावृत्ति—विज्ञापन को बार-बार दोहराया जाना चाहिए। कई बार देखा गया है। एक दिया गया विज्ञापन ग्राहक का साथ छोड़ देता है। अतः बार-बार विज्ञापन देने से उसकी स्मरण शक्ति पर छाप छोड़ ही देता है।

7. सुझाव का सिद्धान्त—प्रभावी विज्ञापन प्रति में सुझाव सिद्धान्त का पालन अवश्य किया जाना चाहिए। कई बार ग्राहक विज्ञापन पढ़ने, देखने-सुनने के बाद यह नहीं समझ पाते कि उसे क्या करना चाहिए, वस्तु उसे कैसे, कहाँ मिल सकती है? इसलिए विज्ञापन देते समय उसे इस बात का उल्लेख कर देना चाहिए कि ग्राहक निम्न नम्बर पर सम्पर्क कर कसते हैं। साथ ही अपना पता भी दे देना चाहिए।

8. रुचि तत्त्व—विज्ञापन की प्रति तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विज्ञापन ग्राहकों में स्वाभाविक रुचि पैदा कर दे। विज्ञापन में प्रयोग की जाने वाली भाषा, शैली, कहने का तरीका, प्रस्तुत करने का तरीका इस तरह का होना चाहिए कि ग्राहक में वस्तु के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाए, जैसे—अब पेश है नया लायबॉय जो कीटाणुओं को धो डालता है, लायबॉय है जहाँ, तन्दुरुस्ती है वहाँ। इस तरह के वाक्य ग्राहकों में रुचि पैदा करने में सक्षम भी होते हैं, साथ ही उन समस्याओं के प्रति ग्राहकों को सचेत भी करते हैं।

9. अन्य तत्त्व—विज्ञापन बनाते समय अन्य तत्त्वों का भी ध्यान रखना चाहिए, जैसे—विज्ञापन संक्षिप्त, स्पष्ट व गौरवशाली होना चाहिए। भारत सरकार ने विज्ञापनकर्त्ता तथा विज्ञापन देने वाले दोनों के लिए आचार-संहिता का निर्माण किया है, उसे भी ध्यान में रखना चाहिए। विज्ञापन बनाते वक्त शालीनता को ध्यान रखना चाहिए।

व्यक्तिगत विक्रय (Personal Selling)

व्यक्तिगत विक्रय वह है, जिसमें क्रेता व विक्रेता का व्यक्तिगत सम्पर्क होता है। उसे विक्रेता क्रेता के सामने वस्तुएँ प्रस्तुत करता है तथा उसे अपने विचारों, भावनाओं से प्रभावित कर वस्तुएँ बेचने का प्रयास करता है। इसमें क्रेता व विक्रेता आमने-सामने होते हैं। भौगोलिक दूरी नहीं होती।

रिचर्ड बसर्किक के अनुसार—''व्यक्तिगत विक्रय वह विक्रय है, जिसमें वस्तु के संभावित क्रेताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया जाता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार—यह एक अथवा संभावित क्रेताओं के साथ बातचीत में विक्रय करने के उद्देश्य से की गई मौखिक प्रस्तुती है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि व्यक्तिगत विक्रय विपणन संचार की वह सतत् प्रक्रिया होती है, जिसमें क्रेता और विक्रेता आमने-सामने होकर प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क स्थापित करते हैं। विक्रेता संभावित ग्राहक को अपनी भावनाओं, विचारों तथा धारणाओं से प्रभावित कर अपनी वस्तुएँ क्रय करने हेतु प्रेरित एवं प्रोत्साहित करता है।

जीवनवृत्ति के रूप में विक्रयकार्य (Selling as a Career)

इसमें कोई सन्देश नहीं है कि आज के युग में विक्रय कार्य एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, जो आज के युवा अर्थात् लड़के व लड़कियां इसे बहुत पसन्द करते हैं। आज के युवा विक्रय कार्य को अपनी जीवनवृत्ति या जीविकोपार्जन के रूप में अपनाते हैं।

विक्रयकार्य में जीवनवृत्ति के लाभ

विक्रय कार्य को जीवनवृत्ति के रूप में अपनाने पर युवाओं को अनेक लाभ होते हैं। इसमें न केवल अच्छा पारिभाषिक मिलता है बल्कि सर्वांगीण विकास का सुअवसर भी मिलता है तथा कार्य-संतुष्टि का भी अहसास होता है। संक्षेप में विक्रय-कार्य को जीवनवृत्ति के साधन के रूप में स्वीकार करने के रूप में कुछ प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं—

(1) सेवा की सुरक्षा (Job Security)

विक्रय के बिना कुछ भी संभव नहीं है। विक्रय नहीं होगा तो उत्पादन व उत्पादन क्रिया कैसे संभव है। अतः हम कह सकते हैं कि अगर विक्रयकर्त्ता नहीं होगा तो माल का विक्रय कैसे होगा। विक्रय कार्य विपणन का प्रथम कार्य है। विक्रय कार्य अधिक सुरक्षित नौकरी या कार्य उपलब्ध करवा सकता है।

(2) अधिक आय

अक्सर कहा जाता है कि सभी क्षेत्रों की औसत आय की तुलना में विक्रय कार्य में संलग्न लोगों की औसत आय अधिक होती है। विक्रय कार्य से अधिक आय प्राप्त की जा सकती है अतः विक्रय कार्य को जीवनवृत्ति का एक आकर्षित साधन माना जाता है।

(3) जीवन में आनन्द, रोमांच

इसमें कोई शक नहीं है कि विक्रय कार्य चुनौतीपूर्ण कार्य है। फिर भी विक्रयकर्त्ता का जीवन आनन्द व रोमांच से भरा रहता है। उसके जीवन में सफलता-असफलता, उतार-चढ़ाव चलता रहता है। रोज नये-नये ग्राहकों से मिलते रहते हैं। उत्तरोत्तर विकास की संभावनाएँ बनी रहती हैं। जीवन में रोमांचक बना रहता है।

(4) विस्तृत क्षेत्र व दृष्टिकोण

विक्रयकर्त्ता का कार्यक्षेत्र विस्तृत होता है, क्योंकि विक्रय कार्य करने वाला व्यक्ति भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों का भ्रमण करता है। अलग-अलग तरह के लोगों से सम्पर्क होता है। नई-नई वस्तुओं तथा स्थानों को देखने का मौका मिलता है। इससे उसका दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है और मानसिक सोच भी विस्तृत होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(5) भ्रमण का आनन्द

विक्रयकर्त्ता को अलग-अलग स्थानों पर माल बेचने के लिए जाना होता है। इस दौरान उसे अनेक ऐतिहासिक, भौगोलिक स्थानों को देखने का मौका मिलता है, जिससे विक्रयकर्त्ता वहां की सांस्कृतिक, सामाजिक गतिविधियों को भी जानने का मौका मिलता है। इस प्रकार विक्रयकर्त्ता अपने कार्य के साथ-साथ भ्रमण का भी लाभ उठाता है।

(6) व्यक्तित्व का विकास

विक्रयकार्य एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसमें लगा व्यक्ति अपने सम्पूर्ण चातुर्य का प्रयोग करता है। अलग-अलग तरह के लोगों से मिलता है तो वह नये-नये तरीके से जनता, ग्राहकों व अन्य सहयोगियों से व्यवहार करने में दक्ष हो जाता है। कार्य में लगे व्यक्तियों का विकास अन्य कार्यों में लगे व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक होता है।

(7) कार्य की स्वतन्त्रता

विक्रयकार्य में लगा व्यक्ति (विक्रयकर्त्ता) अपने अनुसार कार्य करता है। विक्रयकर्त्ता अपनी सुविधा व इच्छा से अपना कार्यक्रम बना सकता है। किन-किन ग्राहकों से मिलना है, संभावित ग्राहकों की सूची स्वयं तैयार करता है। अर्थात् विक्रयकर्त्ता का अपने कार्य तथा समय पर अधिक नियंत्रण रहता है। अर्थात् कहने का तात्पर्य यहां यह है कि विक्रयकर्त्ता अपनी इच्छा अनुसार अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपनी सुविधा अनुसार अपने कार्यक्रम, नीतियां तथा कार्यक्षेत्र का निर्धारण कर सकता है।

(8) कार्य संतुष्टि

आज के समय में प्रत्येक व्यक्ति कार्य-संतुष्टि चाहता है। अर्थात् अपने कार्य को करने पर पैसे के अलावा भी अतिरिक्त संतुष्टि चाहता है। यह संतुष्टि उसे विक्रय-कार्य को करने से भी प्राप्त होती है। वह अनुभव करता है कि वह समाज का एक बहुत बड़ा कार्य कर रहा है। अर्थात् जहाँ जो वस्तु नहीं मिल रही, वहाँ तक विक्रयकर्त्ता उस वस्तु को पहुंचाने में मदद करता है। विक्रय कार्य में लगा व्यक्ति यह सब कुछ महसूस करता है।

(9) उत्तरदायित्व की भावना का विकास

विक्रयकर्त्ता अपना कार्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है और उसका अधिकारी उससे दूर रहता है। अतः उसे दिये गये टारगेट का निर्देश का उसकी अनुपस्थिति में पूरा करना होता है अगर विक्रयकर्त्ता उसे सतर्कता से पूरा नहीं कराता तो उसका विश्वास खत्म हो जायेगा। अतः धीरे-धीरे उसमें उत्तरदायित्व की भावना पनपने लगती है।

(10) गौरव की अनुभूति

जब विक्रयकर्त्ता कोई कार्य करता है तो वह अपनी संस्था का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने आपको संस्था का प्रतिनिधि समझता है। इसी व्यवहार पर वह बाहरी लोगों, जनता तथा ग्राहकों को संतुष्ट करने का वायदा करता है। सारे काम जिम्मेदारी से करता है तो उसे गौरव की अनुभूति होती है।

हानियाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विक्रयकार्य को जीवनवृत्ति के रूप में अपनाने पर इसके दोष भी हैं—

1. सामान्य जीवन का अभाव—सामान्यत: एक विक्रयकर्त्ता अपने बाजार क्षेत्र में भ्रमण करने चला जाता है। इससे वह अपने परिवार, बीवी-बच्चों से दूर हो जाता है। अपने परिवार को ज्यादा समय नहीं दे पाता। उसका खाना-पीना, सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने में कठिनाइयां होती हैं अत: उसका पारिवारिक जीवन उतना सफल नहीं हो पाता, जितना एक सामान्य व्यक्ति का होना चाहिए।

2. कार्य में नीरसता—विक्रयकार्य में लगे व्यक्तियों के कार्य में नीरसता आ जाती है। उसे एक ही प्रकार के ग्राहकों से बार-बार मिलना पड़ता है। उसे उसी वस्तु के बारे में बार-बार बताना पड़ता है। ग्राहकों से मिलने के लिए कभी-कभी घंटों इंतजार भी करना पड़ता है। इस प्रकार विक्रयकर्त्ता के कार्य में कभी-कभी निरसता आ जाती है।

3. भूतकालीन विकृत अवधारणाएँ—कुछ लोग विक्रयकर्त्ताओं की ख्याति अच्छी न होने के कारण तथा भूतकालीन अनुभवों के कारण उन्हें धोखेबाज, लूटेरे व ठग समझते हैं। विक्रयकर्त्ता ऐसे लोगों से मिलता है तो एक सामान्य विक्रयकर्त्ता के आत्म-सम्मान को चोट पहुंचती है।

4. आय में अनिश्चितता—जब कभी विक्रयकर्त्ता को अपने कार्य में सफलता नहीं मिलती या फिर अपेक्षित टारगेट पूरा नहीं हो पाता तो उसकी आय भी कम हो जाती है, जिससे उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है।

5. सीमित अधिकार—विक्रय कार्य में लगे सभी व्यक्तियों को अधिकार सीमित मिले होते हैं। कभी-कभी ये अपने ग्राहकों से बात करते हैं या फिर अनुबंध करते हैं तो अपने अधिकारों की सीमा के कारण अनुबंध नहीं कर सकते। इस कारण कई अच्छे अवसर उनके हाथों से मिल जाते हैं।

6. तिरस्कार का भय—कभी-कभी कुछ ग्राहक विक्रयकर्त्ताओं से मिलना ही नहीं चाहते। विक्रयकर्त्ता के बार-बार आग्रह करने पर भी वे उनसे नहीं मिलते। ऐसी स्थिति में कभी-कभी वे असत्य एवं कड़वी बातें भी विक्रयकर्त्ता को कह देते हैं परन्तु विक्रयकर्त्ता उन्हें जोर से जवाब नहीं देता बल्कि वे उसे विनयपूर्ण टाल देते हैं। परन्तु हकीकत है उन्हें कभी-कभी तिरस्कार का भी सामना करता है।

7. कठिन कार्य—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि विक्रय कार्य एक कठिन कार्य है, जिसमें घंटों-घंटों इंतजार करना पड़ता है, कई किलोमीटर की यात्राएँ करनी पड़ती हैं, लगातार ग्राहकों से बातचीत करना, उसी वस्तु को बार-बार दिखाना, वस्तु के बारे में बताना। ये सभी काम में बहुत श्रम करना पड़ता है।

हमने विक्रयकार्य के लाभ व दोष दोनों को देखा। हालांकि इसकी अपनी कुछ कठिनाइयाँ हैं, फिर भी लाभ को देखते हुए इसकी कठिनाइयों को सहा भी जा सकता है।

सफल विक्रयकर्त्ता के गुण (Qualities of a Successful Sales Person)

एक विद्वान् ने कहा है कि ''एक सफल विक्रयकर्त्ता में बिल्ली के समान उत्सुकता,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बन्दर की भाँति चातुर्य, गंगाजल के समान सरलता एवं पवित्रता, शिशु की भांति मैत्री, फुटबाल के खिलाड़ी की भांति सक्रियता तथा एक स्त्री की भाँति धैर्य होना चाहिए। एक सफल विक्रयकर्त्ता में अनेक गुण पाये जाते हैं, जिन्हें हम अध्ययन की सुविधानुसार निम्न भागों में बाँट सकते हैं—

(अ) शारीरिक गुण

1. कहा भी गया है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। अतः विक्रयकर्त्ता का स्वास्थ्य उत्तम होना चाहिए।
2. विक्रयकर्त्ता दिखने में अच्छा होना चाहिए।
3. विक्रयकर्त्ता फुर्तीला होना चाहिए।
4. प्रसन्नचित्त होना चाहिए, अगर विक्रयकर्त्ता खुद खुश होगा तो ग्राहकों को भी खुश रखेगा।
5. बातचीत के अनुरूप ही विक्रयकर्त्ता के हावभाव होने चाहिए। अनावश्यक रूप से मुँह पिचकाना, हंसना, अंग खुजलाना आदि विक्रयकर्त्ता के व्यक्तित्व पर विपरीत प्रभाव डालते हैं।
6. स्वच्छता का भी विक्रयकर्त्त को विशेष ध्यान देना चाहिए। उसके बाल, दाढ़ी तथा नाखुन कटे हुए होने चाहिए। महिला विक्रयकर्त्ता को सीमित सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करना चाहिए।
7. वस्त्र साफ-सुथरे तथा दिखने में अच्छे होने चाहिए। ज्यादा चमकीले, भड़कीले वस्त्र नहीं पहनने चाहिए।

(ब) बातचीत के गुण

1. विक्रयकर्त्ता की वाणी मधुर होनी चाहिए ताकि ग्राहक उसकी बात को रुचि से सुन सके।
2. शब्दों को नाप-तोल कर बोलना चाहिए तथा स्पष्ट उच्चारण होना चाहिए।
3. बातचीत करने का तरीका प्रभावी होना चाहिए।
4. विक्रयकर्त्ता में अपनी बात को विश्वास के साथ दूसरे तक पहुँचाने की योग्यता होनी चाहिए।

(स) नैतिक गुण

1. विक्रयकर्त्ता का व्यवहार ईमानदार होना चाहिए। झूठ बोलकर या अनैतिक तरीके से विक्रय नहीं करना चाहिए।
2. विक्रयकर्त्ता को अपने मालिक (नियोक्ता), पेशा तथा ग्राहकों के प्रति निष्ठावान रहना चाहिए।
3. विक्रयकर्त्ता को चरित्रवान होना चाहिए। प्रो. हाकिन्स ने लिखा भी है कि ''चरित्रवान व्यक्ति अपनी आंखों, वाणी, हाव-भाव तथा तथ्यों के द्वारा अपने लोगों में अपना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मन डाल देता है।

(द) सामाजिक गुण

1. एक सफल विक्रय के लिए जरूरी है कि वह मिलनसार हो, वह सभी ग्राहकों के साथ सम्पर्क बनाये रखे, सबके दु:ख-सुख में शामिल हो।
2. विक्रयकर्त्ता के अनेक लोगों के साथ मिलकर कार्य करता है, उसे चाहिए कि सबके साथ सहयोगपूर्ण भावना से कार्य करे।
3. विक्रयकर्त्ता का व्यवहार अच्छा होना चाहिए।
4. विक्रयकर्त्ता में बड़ी एवं गूढ़ बात को संक्षेप में कहने की कला होनी चाहिए।
5. विक्रयकर्त्ता में धैर्य होना चाहिए। दूसरे की बात सुनने वाला होना चाहिए। दूसरों द्वारा कही गई आलोचनात्मक बात सुनकर आवेश में नहीं आना चाहिए।

(य) मानसिक गुण

1. विक्रयकर्त्ता को आशावादी होना चाहिए। किसी कार्य में सफलता न मिलने पर निरन्तर उसे प्रयास करना चाहिए।
2. विक्रयकर्त्ता में कुछ कर गुजरने की लालसा होनी चाहिए अर्थात् महत्त्वाकांक्षी होना चाहिए। इस गुण से विक्रयकर्त्ता सदैव अपनी क्षमता एवं योग्यता को रचनात्मक कार्यों में लगा सकेगा।
3. विक्रयकर्त्ता के विचारों में परिपक्वता होनी चाहिए, जिससे वह अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों को समझ सके।
4. विक्रयकर्त्ता में पहलपन का गुण भी होना चाहिए। पहलपन के गुण के कारण वह नये बाजार में प्रवेश कर सकेगा, नयी वस्तु बेच सकेगा तथा फर्म के नये ग्राहक बना पायेगा।
5. विक्रयकर्त्ता को युक्ति-सम्पन्न होना चाहिए। युक्ति-सम्पन्न व्यक्ति वह होता है, जो नवीन परिस्थितियों एवं घटनाओं को समझ सके व उसके अनुरूप व्यवहार कर सके।
6. विक्रयकर्त्ता को प्रखर बुद्धि वाला होना चाहिए, जिससे वह ग्राहक की बात को भलीभांति सुन सके। उनकी समस्याओं, शंकाओं का समाधान कर सके।
7. विक्रयकर्त्ता की स्मरण-शक्ति अच्छी होनी चाहिए ताकि उसे अपने ग्राहकों से हुई मुलाकात, प्रतिस्पर्धियों, माल, ग्राहक आदि के बारे में याद रख सके।

(र) व्यावसायिक गुण

1. आधुनिक युग में विक्रयकर्त्ता तभी सफल हो सकता है, जब वह शिक्षित एवं प्रशिक्षित दोनों हो।
2. विक्रयकर्त्ता को अपने द्वारा बेची जाने वाली वस्तु के बारे में पूर्ण जानकारी होनी।
3. विक्रयकर्त्ता को संस्था के बारे में तथा संस्था की नीतियों के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. विक्रयकर्त्ता की विक्रयकार्य में रुचि होनी चाहिए।
5. विक्रयकर्त्ता को अपने ग्राहकों की भी पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। अर्थात् उनकी आयु, लिंग, मानसिकता सबके बारे में जानकारी होनी चाहिए।
6. सफल विक्रयकर्त्ता में सम्प्रेषण क्षमता भी होनी चाहिए अर्थात् उसमें ऐसी क्षमता में होनी चाहिए चाहे वो लिखित, मौखिम, सांकेतिक किसी भी माध्यम का प्रयोग कर संदेशों का आदान-प्रदान कर सके।
7. एक सफल विक्रयकर्त्ता वही है, जो ग्राहकों से अच्छे संबंध बना सके, उनके साथ किये वायदों तथा गारण्टी को पूरा कर सके।
8. एक सफल विक्रयकर्त्ता को व्यापारिक व आर्थिक सन्निधियों की भी जानकारी होनी चाहिए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक सफल विक्रयकर्त्ता में उपरोक्त सभी गुणों का पाया जाना चाहिए। अगर इनमें अधिकांश गुण भी हैं तो वह एक सफल विक्रयकर्त्ता होगा।

विक्रयकर्त्ताओं के कार्य (Function of Sales Person)

विक्रयकर्त्ता को अनेक कार्य करने पड़ते हैं। उनमें से कुछ कार्य निम्नलिखित हैं—

1. सभी स्तरों पर प्रभावी संबंध बनाना—विक्रयकर्त्ता को प्रतिदिन नये-नये संभावित ग्राहकों की खोज करनी होती है तथा पुराने ग्राहकों से संबंध बनाये रखना होता है। साथ ही ग्राहक के सभी स्तर के लोगों से सम्पर्क भी स्थापित करना चाहिए, क्योंकि विक्रयकर्त्ता को इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि वस्तु खरीदते समय व्यक्ति के साथ उसके और भी लोगों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। जैसे—किसी ने LCD खरीदनी है तो उसमें उसके बच्चों तथा पत्नी का भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहेगी। अतः विक्रयकर्त्ता को चाहिए कि वह सभी स्तरों पर अच्छे सम्पर्क बनाये।

2. प्रभावशाली संचार व्यवस्था स्थापित करना—विक्रयकर्त्ता को ग्राहकों तथा अपनी संस्था के साथ प्रभावशाली संचार व्यवस्था बनाये। ऐसा करने से विक्रयकर्त्ता हमेशा अपने ग्राहकों से जुड़ा रहेगा, साथ ही संस्था से भी जुड़ा रहेगा।

3. ग्राहकों की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को समझना—विक्रयकर्त्ता का एक कार्य यह है कि वह ग्राहक की आवश्यकताओं व समस्याओं को समझे तथा उनका समाधान कर उन्हें संतुष्ट करे। विक्रयकर्त्ता को ग्राहक की समस्याओं को ठीक से समझने के लिए मनोविज्ञान का सहारा लेना चाहिए। मनोविज्ञान के द्वारा ही ग्राहकों के क्रय के उद्देश्यों, प्रेरणाओं तथा ग्राहकों की प्रकृति को ज्ञात करना चाहिए और उसके बाद उसकी आवश्यकता के बारे में निष्कर्ष निकालना चाहिए।

4. आवश्यकता को इच्छा में बदलना—विक्रयकर्त्ता ग्राहक की समस्याओं एवं आवश्यकता को समझ कर उसकी इच्छा में परिवर्तित रहता है। विक्रयकर्त्ता उसे यह अनुभव कराता है कि जो वस्तु विक्रयकर्त्ता द्वारा विक्रय की जा रही है, वह वस्तु उसकी आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. आदेश प्राप्त करना—जब विक्रयकर्त्ता ग्राहक में इच्छा जाग्रत कर देता है तो उसका कर्त्तव्य है कि उससे उस वस्तु का आदेश प्राप्त करें।

6. ग्राहक की सन्तुष्टि उत्पन्न करना—जब ग्राहक माल का आदेश देता है तो माल उसे प्राप्त हो जाता है। विक्रयकर्त्ता का यह भी फर्ज बनता है कि प्राप्त माल के उपभोग से क्रेता को सन्तुष्टि होनी चाहिए।

7. समय का नियोजन करना—सफल विक्रयकर्त्ता को चाहए कि वह अपने समय का सही से नियोजन करे ताकि अधिकतम सदुपयोग किया जा सके। कहा भी गया है जो अपने समय का सही उपयोग करता है, वह अपने काम में सफलता प्राप्त करता है।

8. ग्राहकों से मिलना—विक्रयकर्त्ता का कर्तव्य होता है कि वह अपने ग्राहकों से समय-समय पर मिलते रहे। ताकि पुराने ग्राहकों से लगातार जुड़ाव बना रहे और नये ग्राहकों को जोड़ा जा सके। अत: विक्रयकर्त्ता को अपने ग्राहकों के घर, कार्यालय, कारखाने आदि पर जाकर मिलना चाहिए।

9. ग्राहकों को वस्तुओं की जानकारी देना—विक्रयकर्त्ता का कर्त्तव्य होता है कि वह वस्तुओं के बारे में ग्राहक को विसतृत जानकारी दे। उस वस्तु को प्रयोग में लाने की विधि तथा उसे काम में लेने पर बरती जाने वाली सावधानियों को बताये।

10. ख्याति का निर्माण करना—विक्रयकर्त्ता यदि अपना माल बेचने में सफल हुआ है तो उसे चाहिए कि वह क्रेता को सन्तुष्टि प्रदान कर ख्याति का निर्माण करे। यदि माल का विक्रय न भी किया जा सके तो भी विक्रयकर्त्ता को ग्राहक के मस्तिष्क में अपनी तथा संस्था की छाप छोड़ देनी चाहिए ताकि भविष्य में क्रय आदेश मिलने की संभावना बनी रहेगी।

11. ग्राहकों की शिकायतों को दूर करना—विक्रयकर्त्ता का कर्त्तव्य होता है कि वह ग्राहकों की समस्याओं तथा शिकायतों का निवारण करे। ग्राहकों की शिकायतें माप-तौल, मरम्मत तथा मूल्य संबंधी हो सकती है। अत: इस ओर विक्रयकर्त्ता को विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि ग्राहक की शिकायतों को दूर कर उन्हें संतुष्टि प्रदान की जा सके।

12. व्यापारियों को आवश्यक सलाह एवं सहयोग देना—विक्रयकर्त्ता को अपने व्यापारी ग्राहकों को विभिन्न मामलों में सलाह भी देनी चाहिए। उसे काउण्टर सजाने, शोरूम की सजावट आदि अन्य कार्य में भी सहयोग करना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun